HINDI HISTORICAL SERIES No. 1.

मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त का

प्राचीन भारतवर्ष की

सभ्यता का इतिहास

पहिला भाग

जिसे

गोपाल दास नें

सरल हिन्दी में अनुवाद किया

और

इतिहास-प्रकाशक-समिति काशी ने
प्रकाशित किया ।

1905.

TARA PRITING WORKS,

BENARES.

निवेदन ।

इस बात को कई वर्ष हुए कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने मिस्टर रमेशचन्द्रदत्त से उनके प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता के इतिहास के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की आज्ञा प्राप्त की थी और उसे छापने का भार प्रयाग के इण्डियन प्रेस के स्वामी ने लिया था। पहिले तो इस ग्रन्थ के अनुवाद होने में ही बहुत विलम्ब हुआ फिर जब यह अनुवाद प्रस्तुत हुआ तो इण्डियन प्रेस में वह पड़ा रहा। अन्त में सभा ने इस अनुवाद की हस्तलिखित प्रति इण्डियन प्रेस से लौटा ली और उसके स्वयं छपवाने का विचार किया। इसी बीच में हिन्दी समाचारपत्रों में इस ग्रन्थ के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और वे लोग यह सम्मति देने लगे कि सभा द्वारा इस ग्रन्थ का हिन्दी में छपना सर्वथा अनुचित होगा। अस्तु इस झगड़े को शान्त करने के अभिप्राय से बाबू श्यामसुन्दरदास ने सभा से प्रार्थना की कि उन्हें यह अनुवाद अपने व्यय से छापने के लिये दे दिया जाय। सभा ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया और यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में दे दिया गया। इधर अनेक मित्रों ने बाबू श्यामसुन्दरदास को यह सम्मति दी कि हिन्दी में ऐतिहासिक ग्रन्थों का पूरा अभाव है अतएव ऐसा उद्योग होना चाहिए कि जिसमें केवल यही नहीं वरन और भी ऐतिहासिक ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित होते रहें। निदान इस सम्मति के अनुसार उद्योग करने पर यह इतिहास-प्रकाशक-समिति स्थापित हुई कि जिसकी नियमावली आदि इस ग्रन्थ के अन्त में दी गई है। इसी समिति की ओर से यह ग्रन्थ अब छाप कर प्रकाशित किया जाता है।

कोई भी ग्रन्थ हो उसके विषय में यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि इसमें जो कुछ लिखा है सब ठीक है, कहीं किसी प्रकार का मतान्तर नहीं है। जब यह अवस्था सब ग्रन्थों की है तो यह

इतिहास उस श्रेणी से कदापि अलग नहीं हो सकता, परन्तु अब तक जितने ग्रन्थ प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास के लिखे गए हैं उनमें मिस्टर दत्त का ग्रन्थ सब से श्रेष्ठ माना जाता है। यही कारण है कि यह प्रकाशित किया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस ग्रन्थ में निर्धारित विषयों के सम्बन्ध में मतभेद होगा और यह मतभेद पुरातत्व सम्बन्धी विषयों में सदा बना रहेगा। इस अवस्था में यह समिति इस बात की आशा करती है कि वे लोग जो जाने वा अनजाने इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के विरोधी थे अब इस पर पूर्णतया विचार करेंगे और पक्षपात रहित होकर सत्य और असत्य का निर्णय करेंगे। यदि कोई महाशय प्रमाणों सहित इस ग्रन्थ की भूलों को दिखलावेंगे तो यह समिति उनकी सम्मति को आनन्दपूर्वक इस ग्रन्थ के चौथे भाग के साथ छाप कर प्रकाशित करदेगी। इस समिति को कदापि इस विषय में आग्रह नहीं है। इसकी केवल यही इच्छा है कि भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास हिन्दी मे हो जाय और भारतवासी अपने देश और समाज की वास्तविक प्राचीन अवस्था को जान जांय अथवा उसके जानने के उद्योग में लग जांय तथा इस विषय मे दूसरे लोग क्या कहते हैं सो जान जांय क्योंकि वास्तव में ऐसी बातों का उचित निर्णय इस देश के पण्डित विद्वान ही कर सकते हैं जो देश की चाल व्यवहारों के जानकार और संस्कृत के ग्रन्थों का मूलतत्त्व समझ सकते हैं, परन्तु अंगरेजी न जानने के कारण उन पर अपना मत प्रकाशित नहीं कर सकते। समिति को विश्वास है कि इस देश के पण्डितों के हाथ से समालोचित होने से ऐसे विषयों में अनेक भ्रम दूर हो जांयगे। आशा है कि समिति अपने मनोरथ में सफल हो।

दिसम्बर १९०४ }

अध्यायों की सूची।

वैदिक काल।

ऐतिहासिक काव्य काल।

ग्रन्थकार की भूमिका।

———:o:———

प्रोफ़ेसर मेक्समूलर कहते हैं कि "यदि मुझसे पूछा जाय कि उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में सब से अधिक आवश्यक कौनसी बात विदित हुई है तो इसका उत्तर मैं नीचे लिखी हुई पंक्ति में दूंगा।

" संस्कृत, द्यौश पितर=युनानी, ज़िउस पेट=लेटिन, ज़ुपिटर =ओल्ड नोर्स, टिर"

और वास्तव में योरप के विद्वानों ने पिछले सौ वर्षों के भीतर प्राचीन आर्यभाषा से, जो कि अब तक भारतवर्ष में रक्षित है, जिन बातों का पता लगाया है वे मानवी विद्या की उन्नति के इतिहास में अत्यन्त सुन्दर अध्याय हैं।

मेरा अभिप्राय यहां पर उस इतिहास को वर्णन करने का नहीं है। परन्तु थोड़ी सी बातें जो कि भारतवर्ष के पुरातत्त्व से सम्बन्ध रखती हैं उनका उल्लेख यहां पर मनोरञ्जक होगा।

इस बात को लगभग एक सौ वर्ष हुए कि सर विलियम जोन्स ने शकुन्तला का अनुवाद करके योरप के विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। यह शकुन्तला जैसा कि उन्होंने अपनी भूमिका में कहा है " एशिया के साहित्य में एक बड़ी भारी अद्भुत वस्तुओं में से है जो कि अब तक प्रगट की गई हैं और वह मनुष्य की कल्पना शक्ति की उन रचनाओं में सब से कोमल और सुन्दर है जो कि किसी युग या किसी देश में कभी की गई हो।

योरप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत के साहित्य के माहात्म्य और उत्तमता की ओर आकर्षित हुआ और आज कल के सब से बड़े ग्रन्थकर्ता ने इस हिन्दू नाटक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति निम्न-

लिखित पंक्तियों में दी है जो कि इतनी अधिकता से उद्धृत की जाती हैं।

" Wouldst thou the life's young blossoms and the
fruits of its decline,
And by which the soul is pleased, enraptured,
feasted, fed,—
Wouldst thou the earth and heaven itself in one
sweet name combine ?
I name thee, O Sakuntala, and all at once is said.'
–Göethe

सर विलियम जोन्स साहब ने मनु का अनुवाद किया, उन्होंने एशियाटिक सोसायटी को स्थापित किया और संस्कृत साहित्य के भण्डार की खोज करके उसमें से अमूल्य बातों का पता लगाया। परन्तु वे जो भारतवर्ष के " प्राचीन इतिहास को कि जिसमें कल्पित कथा का कुछ भी मेल न हो " ढूंढते थे उसकी कुंजी न पासके। इसका कारण यह है कि उन्होंने केवल पीछे के समय के, अर्थात् बुद्ध के समय के उपरान्त के संस्कृत ग्रन्थों ही में परिश्रम किया और इसके पहिले के ग्रन्थों पर ध्यान नहीं दिया जिनमें कि खजाना भरा हुआ है।

कोलब्रूक साहब ने भी सर विलियम जोन्स के ही ढंग पर काम किया। वे गणित के विद्वान थे और योरप में संस्कृत के सब से बड़े दक्ष और अप्रमत्त पण्डित थे। प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थों में कोई बात ऐसी नहीं थी जो कि उनसे छिपी हो। उन्होंने हिन्दू वेदान्त का बड़ा अच्छा और सच्चा वृत्तान्त लिखा, हिन्दू बीजगणित और गणित पर पुस्तकें लिखीं और सन् १८०५ में उन्होंने पहिले पहिल योरपवासियों को आर्यजाति के सब से प्राचीन ग्रन्थ अर्थात् वेदों से परिचित किया। परन्तु कोलब्रूक साहब यह न जान सके कि उन्होंने कितनी अनमोल वस्तु प्राप्त की है। उन्होंने कहा है कि वेदों के पढ़ने से "अनुवादकर्ता के श्रम का फल तो दूर रहा पर पाठकों को भी उनके श्रम का फल कठिनता से मिलेगा।"

डाक्टर एच० एच० विलसन साहब ने कोलब्रूक का अनुकरण किया। और यद्यपि उन्होंने ऋग्वेद संहिता का अंगरेजी में अनुवाद किया है परन्तु वे अधिकतर पीछे के समय के संस्कृत साहित्य ही में अपना समय लगाते थे। उन्होंने संस्कृत के उत्तमोत्तम नाटकों तथा कालिदास के सुन्दर काव्य 'मेघदूत' का ललित अंगरेजी में अनुवाद किया। उन्होंने विष्णुपुराण का भी अनुवाद किया और हिन्दुओं के उत्तर काल के इतिहास को ठीक करने का यत्न किया और बहुत सी बातों का सन्तोषदायक रीति से निर्णय भी किया।

इसी समय में फ़ान्स में एक बड़े विद्वान हुए। उनसे बढ़कर पूर्वदेशीय विषयों के विद्वानों में और कोई नहीं हुआ। उनका नाम बर्नफ़ साहब है। उन्होंने ज़न्द और वैदिक संस्कृत के परस्पर सम्बन्ध का पता लगाया और अपने लिये एक तारतम्यात्मक व्याकरण बनाया। जर्मनी के विद्वानों ने इनके उपरान्त तारतम्यात्मक व्याकरण बनाए हैं। इस प्रकार उन्होंने ज़न्द भाषा और लेखों को पढ़ कर स्पष्ट किया, ऋग्वेद की व्याख्या की और यह दिखलाया कि आर्यजाति के इतिहास में उसकी क्या स्थिति है। उन्होंने सीरिया के शङ्कुरूपी लेखों को भी पढ़ कर स्पष्ट किया और इस प्रकार से वे योरप में अपना चिरस्मरणीय नाम छोड़ गए। और फिर उन्होंने अपनी "बुधिज़्म" नामक पुस्तक की भूमिका में पहिले पहिल इस बड़े धर्म्म का दार्शनिक और स्पष्ट वर्णन दिया है। उनकी शिक्षा ने योरप में लगभग २५ वर्षों तक (१८२५-१८५२) बड़ा आन्दोलन उत्पन्न किया और पेरिस नगर के अनुरागी और उत्साही शिष्यों पर इसका बड़ा असर पड़ा और इनमें से राथ साहब और मेक्समूलर साहब की नाईं कुछ लोग हमलोगों के समय में वेदों के बड़े पण्डित हुए हैं।

इसी बीच में जर्मनी के विद्वानों ने भी परिश्रम करना आरम्भ किया और जब उन्होंने इस विषय में कार्यारम्भ किया तो शीघ्र ही भारतवर्ष के पुरातत्त्व की खोज करनेवालों में वे सब से बढ़ गए। रोजन साहब ने, जो कि राजा राममोहन राय के समकालीन थे

ऋग्वेद के पहिले अष्टक को लेटिन भाषा में अनुवाद सहित प्रकाशित किया था परन्तु उनकी अकाल मृत्यु ने इस कार्य को रोक दिया।

परन्तु उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों ने इससे भी अधिक कार्य करना आरम्भ किया और बॉप, ग्रिम और हमबोल्ट ऐसे ऐसे विद्वानों की बुद्धि और उनके दृढ़ परिश्रम से शीघ्र ही ऐसा फल प्राप्त हुआ कि जो उस शताब्दी की नवीन आविष्कृत बातों में सब से प्रथम श्रेणी में गिने जाने योग्य है। उन लोगों ने सारे इण्डो-आर्यन भाषाओं अर्थात् संस्कृत, जन्द, ग्रीक, लेटिन, स्लेव, टयूटन, और केल्टिक भाषाओं में परस्पर सम्बन्ध का पता लगाया। उन्हों ने यह स्थिर किया कि ये सब भाषाएं किसी एक ही भाषा से निकली हैं और उन्होंने उन नियमों का भी पता लगा लिया जिनसे कि एक भाषा से दूसरी भाषा में जाते हुए शब्द का रूप बदल गया है। उस समय के साहित्य के विद्वान जिनका कि यह मत था कि सब उन्नति और सभ्यता का प्रारम्भ ग्रीक और लेटिन से हुआ है, पहिले पहिल इस सिद्धान्त पर हँसते थे परन्तु फिर वे लोग आश्चर्यित हुए और अन्त में उन्हें सत्य के आगे क्रोध और दुःख के साथ हार माननी पड़ी।

इस प्रकार विद्वान लोग जैसे जैसे संस्कृत की पूरी पूरी कदर को जानने लगे वैसे ही वैसे उनमें प्राचीन हिन्दू साहित्य और इतिहास की व्याख्या करने की रुचि बढ़ती गई। अतएव उस शताब्दी के बड़े भारी पण्डित रॉथ साहब ने यास्क को अपनी बहु मूल्य टिप्पणी के साथ सम्पादित किया। इसके पीछे उन्हों ने व्हिटनी साहब के साथ अथर्व वेद को सम्पादित किया और बॉटलिंक साहब के साथ संस्कृत भाषा का एक सर्वोत्तम और पूर्ण कोष तयार किया। इसके उपरान्त लेसन साहब ने अपना वृहद् ग्रन्थ Indische Alterthumskunde प्रकाशित किया जिसमें उन्हों ने ऐसी विद्वत्ता और योग्यता दिखलाई है कि जिसकी समता बहुत कम लोग कर सके हैं। वेबर साहब ने शुक्ल यजुर्वेद और उसके ब्राह्मणों और सूत्रों को प्रकाशित किया, अपने Indische

Studien में बहुत से संदिग्ध विषयों की व्याख्या की और उसमें हिन्दू साहित्य के इतिहास में प्रथम बेर संस्कृत साहित्य का स्पष्ट और पूर्ण वृत्तान्त प्रकाशित किया। बेनफी साहब ने सामवेद के एक बहु मूल्य संस्करण को प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद सहित एक संस्करण स्टिवेन्सन और विल्सन साहब पहिले निकाल चुके थे। और म्योर साहब ने संस्कृत साहित्य में से अत्यन्त रोचक और ऐतिहासिक पाठों का एक संग्रह पांच भागों में प्रकाशित किया जो कि उनके परिश्रम और विद्या का अब तक चिन्ह है।

और अन्त में प्रोफ़ेसर मेक्समूलर साहब ने समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य को समय के क्रम से सन् १८५६ में ठीक किया।

परन्तु इस बृहद् ग्रन्थ से कहीं बढ़ कर अमूल्य—विद्वान प्रोफ़ेसर साहब के भाषा, धर्म और देवताओं के सम्बन्ध की असंख्य पुस्तकों और लेखों से—हिन्दुओं के लिये उनका ऋग्वेद संहिता का संस्करण है *जिसे कि उन्हों ने सायन की टिप्पणी के साथ* प्रकाशित किया है। इस पुस्तक का भारतवर्ष में कृतज्ञता और हर्ष के साथ आदर किया गया। यह बृहद् और प्राचीन ग्रन्थ जो कि गिनती के कुछ विद्वानों को छोड़ कर और लोगों के लिये सात तालों के भीतर बन्द था उसका मार्ग अब हिन्दू विद्यार्थियों के लिये खुल गया और उसने उन लोगों के हृदय में भूत काल का इतिहास जानने की, अपने प्राचीन इतिहास और प्राचीन धर्म्म को जानने की अभिलाषा उत्पन्न कर दी।

भारतवर्ष में जोन्स, कोलब्रूक और विल्सन साहब के उत्तराधिकारी योग्य हुए परन्तु उनमें से सर जेम्स प्रिन्सेप साहब सब से बढ़ कर हुए। भारतवर्ष में स्तूपों और चट्टानों पर अशोक के जो लेख खुदे हुए हैं वे लगभग १००० वर्ष तक लोगों की समझ में नहीं आए और सर विलियम जोन्स साहब तथा उनके उत्तराधिकारी लोग भी उनका पता नहीं लगा सके। जेम्स प्रिन्सेप साहब ने जो कि उस समय एशियाटिक सोसायटी के मंत्री थे, इन शिलालेखों को पढ़ा और इस प्रकार से बौद्ध पुरातत्व और प्राचीन बौद्ध इतिहास प्रगट किया गया। यह

प्रिन्सेप साहब ही थे कि जिन्हों ने प्राचीन समय के बौद्ध राजाओं के सिक्कों से जो कि सारे पश्चिमी भारतवर्ष में पाए जाते हैं बहुत सी बातों का अत्यन्त पाण्डित्य के साथ वर्णन किया। उनके पीछे बहुत से योग्य विद्वानों ने इस कार्य को किया। डाक्टर हांग साहब ने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद किया और पार्सियों का इतिहास प्रगट किया। डाक्टर बर्नेल साहब ने दक्षिणी भारतवर्ष की प्राचीन लिपि विषय में लिखा। डाक्टर बुहलर साहब ने प्राचीन धर्म्मशास्त्र के विषय में बड़ी योग्यता से लिखा है और गतवर्ष में डाक्टर थीबो साहब ने प्राचीन हिन्दू रेखागणित को प्रकाशित किया है।

हमारे स्वदेशियों में से दो बड़े सुधारकों अर्थात् राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन संस्कृत साहित्य की ओर ध्यान दिया। राजा राममोहन राय ने तो कई उपनिषदों का अंगरेज़ी में अनुवाद किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद संहिता का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित किया। सर राजा राधाकान्त देव ने संस्कृत विद्या पर विशेष ध्यान दिया और उन्होंने एक बहुत ही उत्तम और पूर्ण कोष 'शब्दकल्पद्रुम' के नाम से प्रकाशित किया। डाक्टर भाऊदाजी और प्रोफ़ेसर भण्डारकर, डाक्टर के० एम० बेनर्जी और डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र ने भी पुरातत्त्व के सम्बन्ध में अच्छा काम किया है। मेरे योग्य मित्र पण्डित सत्यव्रत समश्रमी ने सायन की व्याख्या के सहित सामवेद का एक अच्छा संस्करण प्रकाशित किया है। उन्हों ने महीधर की व्याख्या के सहित शुक्ल यजुर्वेद को भी सम्पादित किया है और अब वे यास्क के निरुक्त का एक विद्वत्तापूर्ण संस्करण निकाल रहे हैं। और अन्त में, मेरे विद्वान मित्र, मिस्टर आनन्दराम बरुआ ने जो कि बङ्गाल सिविल सर्विस में थे एक छोटा और बहुत उत्तम अंगरेज़ी-संस्कृत का कोष प्रकाशित किया है और वे संस्कृत का बहुत भारी और विद्वत्तापूर्ण एक व्याकरण बना रहे हैं।

जेनरल कनिंघाम साहब ने पुरातत्त्व तथा भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के सम्बन्ध में जो कुछ परिश्रम किया है वह बहुमूल्य

है। इसी प्रकार बरगेस और फर्गुसन साहब ने भारतवर्ष की बट बनाने की विद्या पर लिखा है। इस विषय में फर्गुसन साहब के ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं।

योरप में डाक्टर फॉसबोल साहब पाली भाषा के अध्ययन की जड़ डालने वाले कहे जा सकते हैं। उन्होंने सन् १८५५ में धर्म्मपद को सम्पादित किया था और उसके उपरान्त जातक की कथाओं को प्रकाशित किया है। डाक्टर ओडनबर्ग ने विनय के पाठों को सम्पादित किया है। और इन विद्वानों ने तथा हाइज़ डेविड्स और मेक्समूलर ने 'सेक्रेड बुक्स आफ़ दी इस्ट' नाम की अमूल्य ग्रन्थावली में बौद्ध ग्रन्थों के सब से मुख्य मुख्य भागों का अंगरेज़ी में अनुवाद हम लोगों के सामने उपस्थित किया है।

मैं इस ग्रन्थावली के विषय में कुछ कहा चाहता हूं क्योंकि मैं इसका विशेष अनुग्रहीत हूं। प्राचीन हिन्दू साहित्य और इतिहास को स्पष्ट करने के विषय में प्रोफ़ेसर मेक्समूलर साहब ने जीवित विद्वानों में सब से अधिक उपकार किया है। उनका यह विचार बहुत ही उत्तम है कि अंगरेज़ी जानने वाले पूर्वदेशीय मूल ग्रन्थों के अक्षरानुवाद से सहायता ले सकें।

संस्कृत, जन्द, पहलवी, पाली, अर्बी आदि के ३० से अधिक ग्रन्थ इसमें छप चुके हैं तथा और ग्रन्थों के छपने की आशा की जाती है। यहां पर मैं यह कह देना चाहता हूं कि इस ग्रन्थावली का मैं बड़ा ऋणी हूं। मैंने इन ग्रन्थों में से बहुत से वाक्य उद्धृत किए हैं और कहीं कहीं पर उनमें एकाध शब्द का अदल बदल कर दिया है और जिन मूल संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद इस ग्रन्थावली में दिया है उन्हें देखने की मुझे विरलेही कहीं आवश्यकता पड़ी है।

अब मैं इस अपनी पुस्तक के विषय में दो चार शब्द कहूंगा। मैंने अपने मन में कई बेर यह प्रश्न किया है कि अब तक हम को जो सहायता मिल सकती है उससे क्या प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का एक छोटा स्पष्ट ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखा जा सकता है जो कि

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर हो और जो इतनी सरल रीति से लिखा जाय कि उसे सर्वसाधारण उसे समझ सकें । मैं ऐसे ग्रन्थ के लिखे जा सकने में कोई सन्देह नहीं करता था पर मैं प्रायः यही चाहता था (जब मैंने इस ग्रन्थ का लिखना प्रारम्भ कर दिया था उस समय भी) कि यह किसी योग्य विद्वान द्वारा और ऐसे महाशय द्वारा लिखा जाता जो कि मेरी अपेक्षा इस कार्य में अधिक ध्यान और समय दे सकता ।

जिन विद्वानों ने अपना जीवन भारतवर्ष के पुरातत्त्व के अध्ययन में बिताया है और जिन्होंने इस अमूल्य भण्डार से बहुमूल्य रत्न प्राप्त किए हैं वे लोग उन रत्नों के आभूषण बनाकर उन्हें सर्वसाधारण के काम के लिये उपस्थित करने में जी लगाते हुए नहीं दिखाई देते । अतएव यह स्पृहारहित कार्य कम योग्यता के लोगों द्वारा ही किया जाना चाहिए ।

सर्वसाधारण के लिये ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता है, इस बात को कोई अस्वीकार नहीं करेगा । हिन्दू विद्यार्थी के लिये भारतवर्ष के इतिहास का समय, सच पूछिये तो मुसलमानों के आक्रमण से आरम्भ होता है । हिन्दुओं के राज्य के समय से वे लोग पूरे अनभिज्ञ हैं । स्कूल के उस विद्यार्थी को जो कि महमूद के बारहो आक्रमणों को अच्छी तरह जानता है उन आर्य लोगों के आक्रमणों और विजयों का बहुतही थोड़ा वृत्तान्त मालूम होगा जिन्होंने कि महमूद के ३००० वर्ष पहिले पंजाब को जीता था और वहां आकर बसे थे । वह शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का दिल्ली और कन्नौज के जीतने का वृत्तान्त पढ़ता है परन्तु उसे उन्हीं देशों में कुरु और पांचाल लोगों की प्राचीन राजधानी का कुछ भी ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मालूम होगा । वह जानता है कि शिवा जी के समय में दिल्ली में कौन बादशाह राज्य करता था परन्तु जिस समय में गौतम बुद्ध अपने धर्म पर व्याख्यान देता था उस समय मगध में कौन राज्य करता था इसका पता उसे नहीं होगा । वह अहमदनगर, बीजापुर और गोलकण्डा के इतिहास से अभिज्ञ होगा पर उसने अन्ध्र, गुप्त और चालुक्य राजाओं के विषय में नहीं सुना

होगा । वह नादिरशाह के भारतवर्ष पर आक्रमण करने की तिथि अच्छी तरह जानता होगा परन्तु उसे यह नहीं मालूम होगा कि इस घटना के पूर्व ५०० वर्ष के भीतर ही शक लोगों ने भारतवर्ष पर कब आक्रमण किया और उनको विक्रमादित्य ने हरा कर कब भगा दिया। वह आर्यभट्ट अथवा भवभूति के समय की अपेक्षा फ़िरदौसी और फ़रिश्ता की तिथियों को भली भांति जानता है। वह बतला सकता है कि ताजमहल को किसने बनाया पर इस बात का उसे ध्यान भी नहीं होगा कि सांची के स्तूप, कर्ली और एजेण्टा की गुफाएं, एलोरा, भुवनेश्वर और जगन्नाथ के मन्दिर कब बने।

यह भाग्य का फेर जान पड़ता है कि ऐसे देश के प्राचीन समय के इतिहास के पृष्ठ कोरे रहें कि जिसमें हजारों वर्ष तक प्राचीन ऋषी लोगों ने दन्तकथाओं और बड़ी बड़ी रचनाओं को हमें क्रमशः प्राप्त कराया है और जहां कि एक पीढ़ी के पीछे दूसरी पीढ़ी ने इनको बराबर कंठाग्र रख कर संरक्षित रक्खा है। यदि उन रचनाओं से प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास का साधारण वृत्तान्त विदित न हो जाय तो इन हजारों प्राचीन समय के विद्यार्थियों और विद्वानों का परिश्रम करके इन्हें संरक्षित रखना व्यर्थ ही हुआ। और फिर पिछली शताब्दी में योरप के जिन प्रख्यात विद्वानों और पुरातत्त्व वेत्ताओं ने जो कार्य किया है उनकी विद्वत्तापूर्ण खोजों का फल यदि हम अब भी शृङ्खलाबद्ध इतिहास के रूप में इस प्रकार से न रख सकें कि वह सर्वसाधारण और साधारण विद्यार्थी की समझ में आसकें तो उन विद्वानों का परिश्रम ही व्यर्थ हुआ।

परन्तु हर्ष का विषय है कि ऐसी बात नहीं है। यद्यपि भारतवर्ष के इतिहास के बहुत से भाग अब तक भी संदिग्ध हैं, यद्यपि बहुत सी बात अब तक विवाद योग्य है परन्तु हिन्दू राज्य के समय का एक साधारण इतिहास तयार करना अब कोई असम्भव कार्य नहीं है। और यद्यपि मैं इस कार्य के लिये अपने को अयोग्य पाता हूं तथापि मैं इस आशा से इस कार्य को आरम्भ करदेने का साहस करता हूं कि योग विद्वान लोग मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे, मेरी अनि-

वार्ये भूलों को सुधारेंगे और जिन बातों को मैं ने अनाड़ीपन से किया हो अथवा जिन्हें मैं छोड़ गया होंऊं उन्हें वे योग्यता पूर्वक भली भांति करेंगे।

इस बड़े कार्य को करने में मैं यह प्रगट कर देता हूं कि पूर्व देश सम्बन्धी विद्याओं के विद्वानों ने खोज कर जो बातें जानी है उनके सिवाय मैंने अपनी ओर से किसी नई बात का पता नहीं लगाया है। इस विषय में मेरा परिमित ज्ञान मुझे यह बहाना करने से रोकेगा। और इस ग्रन्थ के उद्देश्य का ख्याल करके भी यह बात असम्भव है कि इसमें किसी नई बात का पता लगाया जा सके। मैंने केवल यह उद्योग किया है कि योग्य विद्वानों के परिश्रम से जो बातें विदित हुई हैं उन सब को सिलसिलेवार मिलाकर सर्वसाधारण के लिये एक पढ़ने योग्य ग्रन्थ बन जाय। और इस उद्देश्य की पूर्ति करने में यदि मैं ने कहीं कहीं पर अपनी ओर से कुछ अनुमान अथवा कल्पना करदी है तो उसके लिये मैं पाठकों से प्रार्थना करता हूं कि वे उन्हें अनुमान और कल्पनाही समझें, उन्हें ऐतिहासिक आविष्कार न समझें।

आज दस वर्ष हुए कि मैं ने अपनी देशभाषा में स्कूल के विद्यार्थियों के लिये एक छोटी पुस्तक बनाने के अभिप्राय से उस समय मुझे जो मसाले मिले उनका सिलसिलेवार संग्रह करदिया था। और वह बङ्गाल के बहुत से स्कूलों में पाठ्य पुस्तक रही है। तब से मैं अपने अवकाश के अनुसार इस कार्य को बराबर करता रहा। इसके तीन वर्ष के उपरान्त मैं बङ्गाल गवर्मेण्ट की उदारता से ऋग्वेद संहिता का एक पूरा बङ्गला अनुवाद अपने स्वदेशियों के सम्मुख उपस्थित कर सका। उस समय से मेरी यह इच्छा बहुत ही प्रबल होगई कि हमारे प्राचीन साहित्य में जो ऐतिहासिक मसाले मिलते हैं उन्हें स्थायी रूप में फिर से श्रेणी बद्ध करूं। इस अभिप्राय से मैं ने कलकत्ता रिव्यू में समय समय पर कुछ लेख प्रकाशित किए हैं। और इन लेखों को तथा इस विषय में और जो कुछ मसाले मैं ने इकट्ठे किए हैं उन्हीं को मैं ने इस ग्रन्थ में सिलसिलेवार वर्णन किया है।

जिस ढंग पर यह ग्रन्थ लिखा गया है वह बहुत ही सरल है इसमें मेरा मुख्य अभिप्राय सर्वसाधारण के सामने भारतवर्ष का एक उपयोगी और छोटा ग्रन्थ उपस्थित करने का रहा है, भारतवर्ष के पुरातत्व के विवाद का वृहद् ग्रन्थ बनाने का नहीं। ऐसे ग्रन्थ का स्पष्टता और अविस्तार के साथ अध्ययन करना कुछ सहज काम नहीं है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय में जिन विषयों का वर्णन है उनके सम्बन्ध में बहुत सी छान बीन हुई है और भिन्न भिन्न सम्मतियां लिखी गई हैं। मुझे सन्तोष होता यदि मैं पाठकों के लिये प्रत्येक वादविवाद का इतिहास, पुरातत्व के सम्बन्ध में जो बातें जानी गई हैं, उनमे से प्रत्येक का वृत्तान्त और प्रत्येक सम्मति के पक्ष और विपक्ष की बातों को लिख सकता। परन्तु ऐसा करने में इस ग्रन्थ का आकार तिगुना वा चौगुना बढ़ जाता और जिस अभिप्राय से यह ग्रन्थ लिखा जाता है उसकी पूर्ति न होती। अपने प्रथम उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये मैं ने अनावश्यक वादविवाद को बचाया है और प्राचीन समय की हिन्दू सभ्यता और हिन्दू जीवन की प्रत्येक अवस्था का जितना स्पष्ट और अविस्तृत वर्णन मुझसे हो सका है, दिया है।

परन्तु यद्यपि इस ग्रन्थ में मेरा मुख्य उद्देश्य अविस्तृत वर्णन देने ही का है तथापि मैंने यह उद्योग किया है कि इस पुस्तक को समाप्त कर लेने के उपरान्त भी पाठकों के हृदय पर उसका स्पष्ट प्रभाव बना रहे। इस हेतु मैंने विस्तृत वर्णनों को जहां तक हो सका बचाया है और प्रत्येक काल के मुख्य मुख्य विषयों को स्पष्ट रूप और पूरी तरह से वर्णन करने का उद्योग किया है। उन मुख्य मुख्य घटनाओं को—अर्थात् हिन्दू सभ्यता की कथा की प्रधान बातों को-अपने पाठकों के हृदय पर अङ्कित करने के लिये जहां कहीं पुनरुक्ति की आवश्यकता पड़ी है वहां मैंने पुनरुक्ति को बचाया नहीं है।

संस्कृत ग्रन्थों के अनुवादों से जो बहुत से वाक्य मैंने उद्धृत किए हैं वे पहिले पहिल मेरे अविस्तृत वर्णन के सिद्धान्त के विरुद्ध जान पड़ेंगे। परन्तु इन उद्धृत वाक्यों का देना बहुत ही उचित था

क्योंकि पहिले तो ऐसे विषय में जिसमें कि बहुत सी भिन्न भिन्न सम्मतियां हो सकती हैं, यह नितान्त आवश्यक है कि हम अपने पाठकों के सम्मुख उन मूल पाठों को उपस्थित कर दें कि जिनके आधार पर मैंने अपनी सम्मति स्थिर की है जिसमें कि पाठक लोग उस पर स्वयं विचार कर सकें और यदि मैंने जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं उनमें भूल हो तो उसे सुधार सकें। दूसरे, हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों के मूल ग्रन्थों से पाठकों को परिचित कराना ऐतिहासिक विद्या के लिये लाभ दायक होगा। यह आशा नहीं की जा सकती कि कार्य-व्यग्र विद्यार्थी इन प्राचीन और कठिन ग्रन्थों के मूल पाठों को अथवा उनके पाण्डित्य पूर्ण अनुवादों को पढ़ने का समय निकाल सकेगा और वह इतिहासकार जो अपने पाठकों का इन प्राचीन ग्रन्थों के कम से कम कुछ भागों से परिचय कराया चाहता हो वह इस विषय में अपने पाठकों की विज्ञता बढ़ावेगा। और अन्त में, यह ठीक कहा गया है कि विचार ही भाषा है और भाषा ही विचार है। अतः यदि कोई इतिहासकार प्राचीन समय के विचारों को प्रगट किया चाहता हो—यदि वह यह बतलाया चाहता हो कि प्राचीन समय के हिन्दू लोगों के विचार और विश्वास कैसे थे—तो उसके लिये इससे अच्छी कोई बात नहीं होगी कि वह उन शब्दों को उद्धृत करे जिनके द्वारा कि प्राचीन समय के लोगों ने अपने विचार प्रगट किए हैं। अतः इन थोड़े से वाक्यों को उद्धृत कर देने से पाठकों को प्राचीन हिन्दू समाज, उनके चाल व्यवहार और उनके विचारों का जितना ज्ञान हो सकता है उतना यदि मैं उसका पूरा विस्तृत वर्णन लिखूं तो उससे भी नहीं होगा। मैंने इसी अभिप्राय से अपने पाठकों से रिचाओं और सूत्रों के बनाने वालों का सामना करा देने का और उन्हें अपनी सम्मति स्थिर कर लेने का अवसर दिया है कि जिसमें वे प्राचीन हिन्दुओं के स्वभाव और आन्तरिक जीवन को जान सकें।

प्राचीन लोगों के विचारों और आन्तरिक जीवन से इस भांति पूरी तरह से विज्ञ होना ही सच्चे ऐतिहासिक ज्ञान की जड़ है और मैंने इन प्राचीन लोगों के शब्दों को छोड़ कर और किसी प्रकार से

इसका सच्चा और अविस्तृत वर्णन देने में अपने को असमर्थ पाया है। इसी मुख्य कारण से तथा विस्तार न बढ़ाने ही की इच्छा से मैंने अधिकता से प्राचीन ग्रन्थों के वाक्य उद्धृत किए हैं।

अन्त में पाठकों से मेरी यह प्रार्थना है कि वे मुझे उन त्रुटियों के लिये क्षमा करेंगे जो कि निस्सन्देह इस ग्रन्थ में हैं क्योंकि एक तो मैंने इसे उस समय में लिखा है जिसे कि मैं सर्कारी कामों से कठिनता से बचाता था और दूसरे यह ऐसे स्थानों पर लिखा गया है जहां कोई उत्तम पुस्तकालय नहीं था। परन्तु ऐसी क्षमा बहुत कम प्रदान की जाती है। और पाठक लोग यह पूछते हैं कि जब किसी ग्रन्थकार के पास ग्रन्थ लिखने के लिये सब प्रकार की सामिग्री ही प्रस्तुत नहीं थी तो उस ग्रन्थ के लिखने में हाथ ही क्यों लगाना चाहिए। परन्तु मैं इन बातों को इस लिये लिखता हूं कि जिस से इस ग्रन्थ की त्रुटियों का यदि बचाव नहीं तो उनका कारण अवश्य विदित होजाय। इस पुस्तक के लेखक का समय उसका नहीं है। उसके ऊपर बंगाल के एक जिले का भार है जिस का क्षेत्रफल ६ हजार वर्ग मील के ऊपर है और जिसमें तीस लाख से अधिक मनुष्यों की बस्ती है। इससे उसको और कामों के करने का बहुतही कम समय मिलता है। इन अवस्थाओं में इस पुस्तक को सिलसिलेवार लिखना मेरे लिये एक कठिन काम रहा है और मैं अपने विचारवान पाठकों से केवल यही प्रार्थना कर सकता हूं कि वे उन भूलों और त्रुटियों के लिये जो कि इस पुस्तक में रह गई हों कृपा कर मुझे क्षमा करें।

जिला- मैनसिंघ- बंगाल। र. च. दत्त।
१२ अगस्त-१८८८

प्रस्तावना।

युग और समय।

प्राचीन आर्यावर्त का इतिहास पिछली ३० शताब्दी में मनुष्यों की उन्नति का इतिहास है। यह इतिहास कई कालों में बांटा गया है जिनमें से हर एक काल की अवधि आज कल की बहुत सी जातियों के पूरे इतिहास की अवधि के बराबर है।

दूसरी जातियां भी हिन्दुओं के बराबर वा उनसे भी अधिक पुरानी होने का घमंड करती हैं। मिस्र के विद्वान लोग कहते हैं कि वहां ईसा के ४००० वर्ष प्रथम पहिला राज्यवंश स्थापित हुआ था। पहिले सौरागन का समय, जिसने सेमेटिक राज्य के समय सुमिर और अकद में मेल कराया था. असीरिया के विद्वान लोग ईसा के ३००० वर्ष पहिले बतलाते हैं और सेमेटिक लोगों के चल्डिया जीतने के पहिले की अकद की तूरानी सभ्यता को इस से भी पहिले का कहते हैं। चीन के रहनेवाले अपने यहां के राज्यवंशों और और बातों का प्रामाणिक इतिहास ईसा से २००० वर्ष पहिले का मानते हैं। आज कल के विद्वान ऋग्वेद के सूक्तों का समय २००० वर्ष से पहिले का नहीं समझते। पर इन सूक्तों के संग्रह होने के समय हिन्दुओं की सभ्यता कई सौ वा कई हजार वर्ष पुरानी होगी।

पर हिन्दुओं के इतिहास की सामिग्री दूसरी जातियों के इतिहास की सामिग्री के ऐसी नहीं है। मिस्र के पुराने वासियों के जीवाक्षरों से राजाओं और पिरमड बनाने वालों के नाम, तथा राज्यवंशों और युद्धों के हाल के सिवाय और कुछ पता नहीं लगता। बेबिलन और असीरिया के पत्थर के शिलालेखों से भी इतनाही पता लगता है और चीन की सामग्री से भी वहां के आदमियों की सभ्यता और बुद्धि की धीरे धीरे उन्नति होने का कुछ हाल नहीं जाना जाता।

पुराने समय के हिन्दुओं की पुस्तकें दूसरे तरह की हैं। उनमें कुछ दोष बेशक पाए जाते हैं पर ये दोष राज्यवंशी युद्धों और बातों में हैं जिन्हें ऐतिहासिक कहते हैं। लेकिन साथ ही इसके इन पुस्तकों में सभ्यता के बढ़ने और बुद्धि की उन्नति होने का ऐसा पूरा सिलसिलेवार और साफ़ हाल मिलता है कि ऐसा दूसरी किसी पुरानी जाति के इतिहास में ढूंढ़े नहीं मिलता। हर समय के साहित्य में उस समय की हिन्दू सभ्यता का मानो एक अच्छा चित्र वा फ़ोटो पाया जाता है और हर एक समय की पुस्तकों में सिलसिलेवार तीन हज़ार वर्षों का ऐसा साफ़ और पूरा इतिहास पाया जाता है कि जिसके जानने के लिये अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं है।

पत्थर, ताम्रपत्र और पपिराई के लेख उस समय की बातों की यादगारी के लिये बनाए गए थे। किसी जाति के गीत, भजन और धार्मिक उद्गार उस जाति की सभ्यता और विचारों का सच्चा और स्वाभाविक पता लगाते हैं। हिन्दुओं के सब से पुराने उद्गार लेख द्वारा नहीं प्रगट किए गए और इसी कारण वे पूर्ण और अविरुद्ध हैं। वे इस जाति के विचारों और भावों के स्वाभाविक और सच्चे बचन हैं। वे पत्थरों पर नहीं खोदे गए पर केवल कंठ करके बचाए गए हैं। और जिन लोगों ने इसे कंठ करके बचा रक्खा उन्होंने ऐसी अच्छी तरह से ज्यों का त्यों बचा रक्खा है कि जो आज कल एक करामात समझी जा सकती है।

जिन विद्वानों ने वेदों के सूक्तों को इतिहास की दृष्टि से पढ़ा है वे जानते हैं कि उनसे सामाजिक इतिहास तयार करने के लिये जो सामिग्री मिलती है वह पत्थर या पत्रों के लेखों से अधिक और ठीक है। और जिन लोगों ने हिन्दुओं के पुराने इतिहास के हर एक समय की पुस्तकों को पढ़ा है वे भी जानते हैं कि इनमें हिन्दुओं की सभ्यता, विचार और धर्म के तीन हज़ार वर्ष तक बढ़ने और बदलने का पूरा पूरा हाल है और आदमियों की सभ्यता के इतिहास जाननेवालों को यह देखने के लिये हिन्दू ही होना जरूरी नहीं है कि हिन्दुओं ने इतिहास लिखने के लिये पूरी, सरल और सच्ची बातें बचा रक्खी हैं।

हमारी बातों का मतलब आप कहीं और का और न समझ लें। हमने ऊपर जो बातें लिखी हैं वह खाली इस भ्रमयुक्त विश्वास को दूर करने के लिये लिखी हैं कि भारतवर्ष का कोई भी पुराना इतिहास पढ़ने लायक नहीं है। पुराने समय का कोई भी सिलसिलेवार और विश्वास के लायक वृत्तान्त ऐसा नहीं है कि जो आज कल के पढ़ने वालों को रोचक वा शिक्षा देने वाला हो।

पुराने आर्यावर्त का भी सिलसिलेवार इतिहास है जिसमें सब से बड़ी बात यह है कि रूखा होने के बदले वह बहुत ही रोचक है। इस पुराने इतिहास से यह जाना जाता है कि एक गुणसम्पन्न आर्य जाति ने संयोगवश बाहरी दुनिया से अलग होकर, अपनी अनुकूल प्राकृतिक अवस्था में अपनी सभ्यता किस तरह से बनाई। हम उनके युगयुगान्तर के मानसिक आविष्कारों को देखते हैं, उनकी एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी में जो धर्म में उन्नति और वृद्धि हुई उसको निरखते हैं, उनके राजनीति के व्यवहार को देखते हैं कि जब वे धीरे धीरे भारत में फैलते हैं और नए राज्य और राज्यवंश स्थापन करते हैं। हम पुरोहितों के बल के मुकाबले में उनकी कोशिशों को, उनकी जीत और हार को जांचते हैं। हम उनके समाज के और धर्म के उलट फेरों को और उनके प्रभावोत्पादक फलों को मन लगा कर पढ़ते हैं और एक जाति के मानसिक जीवन की यह बड़ी कहानी जो शाह अरज़दी की कहानियों से भी अधिक रंजक है—कहीं नहीं टूटती और न उसका सिलसिला ही कहीं भङ्ग होता है। जिन सब कारणों से समाज और धर्म के बड़े बड़े उलट फेर हुए वे सब पाठकों को मालूम हो जाते हैं और वे देखने लगते हैं कि हिन्दुओं की पुरानी सभ्यता ने ईसा के २००० वर्ष पहिले से ईसा के १००० वर्ष पीछे तक तीस शताब्दियों में धीरे धीरे किस तरह से उन्नति की।

हिन्दुओं की सभ्यता में जो दोष हैं उनसे यदि यूनान और रोम के पीछे की सभ्यता से मिलान किया जाय तो इस समय के पढ़ने वालों को शिक्षा मिलती है। हमारे गुणों के हाल से ऐसी शिक्षा नहीं मिलती जैसी हमारे दोषों से। विश्वामित्र के सूक्तों, कपिल के

तत्त्वदर्शन और कालिदास के काव्यों के पढ़ने से उतनी शिक्षा नहीं होती जैसी हमारे राजनैतिक जीवन के गिरने और पुरोहितों के प्रभुत्व से। गौतम बुद्ध और अशोक के नायक होने में लोगों के धर्म की उन्नति के हाल में उतनी शिक्षा नहीं मिलती जितनी कि सर्व-साधारण में स्वतंत्रता के लिये यत्न करने के बिलकुल अभाव से। दुनिया के मानसिक जीवन के आरम्भ में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की बुद्धि जो बढ़ी चढ़ी थी उससे इतनी बात नहीं सूझती और इतनी शिक्षा नहीं मिलती जितनी कि मामूली काम काज और व्यापार में, यंत्र और समुद्र की विद्या की नई बातों का पता लगाने में, संग-तराशी, शिल्प विद्या, और कलाकौशल में, जातीय जीवन के प्रादुर्भाव और जातीय सबलता में।

प्राचीन हिन्दुओं के मानसिक और धार्मिक जीवन का इतिहास अनुबन्धता, पूर्णता और गम्भीर भावों में अनुपम है। परन्तु वह इतिहासवेत्ता जो इस मानसिक जीवन का केवल चित्र उतारता है, अपने कर्तव्य को आधा करता है। हिन्दू इतिहास का एक दूसरा और अधिक खेदजनक भाग भी है और कथा के इस भाग को भी ठीक ठीक कह देना आवश्यक है।

हम पहिले कह चुके हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास कई एक विशिष्ट और लम्बे कालों अथवा युगों में विभाजित होता है। प्रत्येक काल का जुदा जुदा साहित्य है और प्रत्येक की सभ्यता में दूसरे कालों के महान राजनैतिक और सामाजिक कारणों से बड़ा भेद हो जाता है। हमारी इच्छा है कि पहिले हम इन ऐतिहासिक युगों का और जो बड़ी बड़ी घटनाएं हों उनका संक्षेप में वर्णन कर दें जिससे हमारे पाठकों को इस ग्रन्थ का उद्देश्य विदित होजाय और जब हम इन कालों का सविस्तार वृत्तान्त लिखें तो शायद उनको प्रत्येक युग की सब बातों के समझने में सरलता होगी। हम सब से पहिले के काल से आरम्भ करते हैं अर्थात उस समय से जब कि आर्यों ने पंजाब देश में आकर निवास किया था। इस काल के इतिहास का पता ऋग्वेद के सूक्तों से मिलता है।

प्रथम युग ।

इस अमूल्य ग्रन्थ अर्थात् ऋग्वेद में हमलोग आर्यों को सिन्ध और उसकी पांचो सहायक नदियों के तट की भूमि को विजय करते हुए और उसमें बसते हुए पाते हैं और सतलज के परे की भूमि से वे प्रायः अनभिज्ञ थे। ये लोग विजय करने वाले थे और इनमें कार्यदक्षता के प्रबल प्रेम और उत्साह युक्त आमोद प्रमोद के साथ साथ तरुण जातीय जीवन का पुरुषार्थ और आत्मगौरव भरा हुआ था। इस विषय में उनसे और उनके पीछे के समय के चिन्ताशील और कार्यक्षम हिन्दुओं मे बड़ा अन्तर था। वे धन पशुसमूह और खेतों से आनन्दित होते थे। उन्होंने अपने बाहुबल से नए अधिकार और नए देश को यहां के आदि निवासियों से छीन लिया और ये आदि निवासी व्यर्थ इन अजय विजयी लोगों के विरुद्ध अपना स्वत्व रखने की कोशिश करते थे। निदान यह युग इन लोगों का आदि निवासियों के साथ युद्ध और विजय करने का था और ये आर्य-वीर अपनी जय का अभिमान हर्ष के साथ भजनों में करते थे और देवताओं से प्रार्थना करते थे कि वे उन्हें धन और नए अधिकार दें और असभ्यों का नाश करें। प्रकृति में जो उज्ज्वल आनन्दमय और तेजस्वी था उसकी आर्य लोग प्रशंसा करते थे और वह सब उनके हर्ष का कारण था। प्रकृति की ऐसी विभूति की वे लोग पूजा करते थे और उनको देवता मान कर उनका आवाहन करते थे।

इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि उस समय आर्य लोग एक ही जाति के थे और जाति का भेद केवल आर्यों और आदि निवासियों में था। उस समय व्यवसाय का भेद भी स्पष्ट नहीं था। कोई एकड़ भूमि का अधिकारी जो शान्ति के समय खेती करता था और पशुओं को पालता था वही युद्ध के समय अपने प्राण की रक्षा करता था, आदि निवासियों को लूटने के लिये बाहर जाता और, बहुधा भक्ति में आकर युद्ध के देवताओं की स्तुति में ओजस्वी भजन बनाता। उस समय न मन्दिर थे न मूर्तियां। कुल में जो बड़ा होता वह अपने अग्नि कुण्ड में यज्ञ की अग्नि जलाए रखता और अग्नि का हवन दूध और चावल या मांस अथवा सोम-

दस से करता और अपने बच्चों के कुशल, स्वास्थ्य और धन के के लिये देवताओं का आवाहन करता। प्रत्येक दल का एक प्रधान राजा होता और उसकी ओर से यज्ञ करने और भजन करने के लिये प्रोहित होने परन्तु न तो प्रोहितों की ही कोई जाति थी और न राजाओं ही की। लोग स्वतन्त्र थे और स्वतन्त्र और उत्साही पशु रखने वालों और खेती करने वालों में जो आनन्द होता है उस को वे भोगते थे।

अब आर्यों के पंजाब में बसने का समय क्या है ? हम समझते हैं कि यदि हम इसको ईसा से २००० वर्ष पहिले से १४०० वर्ष पहिले तक रक्खें तो हम प्रायः सब लोगों से सहमत रहेंगे। इस समय का नाम हम सुबीते के लिये वैदिक युग रक्खेंगे।

दूसरा युग।

अब हिन्दू आर्य लोग सतलज तक आ पहुंचे और उनको सतलज पार करके गंगा की घाटी में पहुंचने में कुछ देर न लगी। गंगा और यमुना का नाम ऋग्वेद में बहुत कम आया है। इससे जान पड़ता है कि प्रथम अर्थात् वैदिक युग में ये नदियां उस समय तक जानी नहीं गई थीं यद्यपि कुछ साहसी अधिवासी पंजाब से निकल कर इन नदियों के तट पर आ बसे होंगे। दूसरे युग में इन बस्तियों की संख्या बढ़ी होगी, यहां लों कि कुछ शताब्दी में गंगा की सारी घाटी आज कल के तिरहुत तक प्रबल राजधानियों और जातियों का निवास स्थान होगई। इन जातियों ने विद्या और साहित्य की वृद्धि की और नवीन रूप से धर्म और सभ्यता को संस्थापित किया जो कि वैदिक समय से बिलकुल ही भिन्न होगए।

उन जातियों में से जो गंगा की घाटी में रहती थीं विख्यात के नाम भारतवर्ष के महाकाव्यों में अब तक वर्तमान हैं। कौरवों की राजधानी वर्तमान दिल्ली के निकट कहीं पर थी। पांचाल लोग दक्षिण पूरब की ओर वर्तमान कन्नौज के समीप बसे। गंगा और

गंडक के बीच की विशाल भूमि में जिसके अन्तर्गत वर्तमान अवध है कोशल लोग बसे। गंडक के पार उस भूमि में जिसे आज कल तिरहुत कहते है विदेह लोग रहने लगे और काशी जाति वर्तमान बनारस के आस पास स्थित हुई। दूसरे युग में येही बड़ी विख्यात जातियां थीं। पर इनसे कम बलवान जातियां भी समय समय पर हुईं और अपना अधिकार बढ़ाती रहीं।

जब प्रथम कुरु और पांचाल लोग द्वाब में ठहरे उस समय उनके एक प्रतापशालिनी जाति होने के चिन्ह मिलते हैं। उनके परस्पर युद्ध का वृत्तान्त आर्यवर्त के प्रथम जातीय महाकाव्य अर्थात् महाभारत में दिया है और यद्यपि यह ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में पीछे के समय का वा यों कहिए कि पीछे के कई भिन्न भिन्न समयों का बना हुआ है, पर इसमें भी गंगा की घाटी के प्राचीन विजयी लोगों के उद्धत और कट्टर वीर्य और वीरोचित ईर्षाद्वेष के चिन्ह मिलते हैं। परन्तु इस घाटी की नरम आबहवा में हिन्दू लोग बहुत शताब्दियों तक नहीं रहे थे कि वे अपना उत्साह और पुरुषार्थ खो बैठे। परन्तु विद्या और सभ्यता में उन्होंने उन्नति की। ज्यों ज्यों ये लोग इस नदी की ओर बढ़ने लगे त्यों त्यों उनमें वह तत्परता कम होने लगी जो कि विजयिनी जातियों में होती है। विदेह और काशी लोगों की राजसभा के लोग विद्वान और व्युत्पन्न थे परन्तु उस समय के ग्रन्थों में उन लोगों में वीरोचित गुणों के प्रमाण नहीं मिलते। कोशल लोग सुसभ्य थे परन्तु इस जाति की कथा से जो कि आर्यवर्त के दूसरे महाकाव्य अर्थात् रामायण में दी हुई है, (जो वर्तमान रूप में पीछे के समय का बनी हुई है) इन लोगों में सांसर्गिक कर्तव्य और कुलाचार से प्रेम होने का, और ब्राह्मणों के आज्ञापालन तथा धर्म में बाहरी आडम्बरों पर अधिक ध्यान करने का परिचय महाभारत के कठोर पराक्रम और तीक्षण उत्साह की अपेक्षा अधिक मिलता है।

इस प्रकार धीरे धीरे हिन्दुओं की शक्ति हीन होने के कारण धार्मिक और सामाजिक नियमों में बड़े बड़े अदल बदल हुए। धर्म ने दूसरा ही रूप धारण किया। गंगा तट के उत्साहहीन और आडम्बरप्रिय हिन्दुओं को पंजाब के पराक्रमी योधाओं के वीरोचित

और सीधे सादे भजन रुचिकर न हुए। उन भजनों का पाठ तो अब भी होता था परन्तु उनके भाव और आशय लुप्त होगए और सीधी सादी विधियों के स्थान पर बड़े बड़े आडम्बर प्रचलित हो गए, पुजारियों की संख्या और उनका प्रभुत्व बढ़ने लगा, यहां तक कि उनकी परम्परागत एक जाति होगई। गंगा तट के राजा और योद्धा उज्ज्वल भवनों में रहने लगे और उनके चारो ओर पंजाब के सीधे खेती करने वाले योधाओं की अपेक्षा अधिक चमक दमक थी और ये राजा लोग समाज से तुरन्त जुदे हो गए और उन्होंने अपनी एक जाति बनाली। सर्वसाधारण अर्थात् वैश्य-अथवा ऋग्वेद के अनुसार विस-अपने पंजाब निवासी पुरुषाओं से निबल हो गए थे और उन लोगों ने बिना विरोध के उन बन्धनों को स्वीकार करलिया जिनसे पुरोहितों और योधाओं अर्थात् ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने उन्हें बाँधा। परन्तु आधीनता से आचारभ्रष्टता आती है इस कारण हिन्दू शासन में लोग फिर अभी वैसे न हुए जैसा कि योरप के लोगों ने प्राचीन और वर्तमान समय में होने की चेष्टा की है। अन्त में आदिनिवासी जो आर्यों के आधीन हो गए थे और जिन्होंने आर्यों की सभ्यता स्वीकार करली थी, नीच जाति अर्थात् शूद्र हो गए और उनको आर्यों के धार्मिक संस्कारों को करने और धर्म सम्बन्धी विद्या उपार्जन करने का निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार से हिन्दू इतिहास के दूसरे युग में आर्यवर्त में जातिभेद की उत्पत्ति हुई। यह रीति लोगों में उत्साहहीनता और निर्बलता से उत्पन्न हुई और किसी अंश में इसने इन दोषों को सदा के लिये स्थायी कर दिया है।

निदान दूसरा युग ऐसा था कि जिसमें लोग ब्राह्मण और क्षत्रियों के आधीन हो गए और क्षत्रियों ने भी ब्राह्मणों की आधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु इस युग के अन्त में कुछ प्रत्याघात सा होने लगा और अभिमानी क्षत्री भी विद्या और धर्म में अपने को ब्राह्मणों के समान सिद्ध करने लगे। प्रोहितों की निरर्थक रीतियों और संस्कारों से खिन्न होकर क्षत्रियों ने भी सत्य की खोज में नए विचार और निर्भय अनुसन्धान आरम्भ कर दिए।

पर यह प्रयत्न अकारथ गया। प्रोहितों की बढ़ी चढ़ी ही रही परन्तु क्षत्रियों के ये ओजस्वी विचार ही इस समय के रसशून्य और निर्जीव साहित्य को रोचक बना देते हैं। और ये विचार जाति में पैतृक धन की नाईं रहे और पिछले वर्षों में हिन्दू दर्शनशास्त्र और धार्मिक परिवर्तनों की जड़ हुए।

इसी समय में जब कि आर्य लोग गंगा की घाटी में फैले ऋग्वेद और तीनों दूसरे वेद अर्थात् साम, यजुर और अथर्व, भी संग्रहीत और सम्पादित हुए। तब एक दूसरे प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई जो 'ब्राह्मण' नाम से पुकारे जाते हैं। इन ग्रन्थों में यज्ञों की विधि लिखी है। यह निस्सार और विस्तीर्ण रचना सर्वसाधारण के क्षीण शक्ति होने और ब्राह्मणों के स्वमताभिमान का परिचय देती है। संसार छोड़ कर बनों में जाने की प्रथा, जो पहिले नाम को भी नहीं थी, चल पड़ी और ब्राह्मणों के अन्तिम भाग अर्थात् आरण्यक में बन की विधि क्रियाओं का ही वर्णन है। अन्त में क्षत्रियों के निर्भय विचार जो उपनिषदों के नाम से प्रख्यात है, आरम्भ हुए और वे इस युग के साहित्य के अन्तिम भाग हैं और इन्हीं से भारत के उस साहित्य का अन्त होता है जिन्हें ईश्वरकृत कहते हैं।

विद्वानों का मत है कि इस युग के सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों में कम से कम चार या पांच सौ वर्ष लगे होंगे। इतने समय में गंगा की घाटी के उपवन तिरहुत तक साफ किए गए और बसाए गए और हिन्दू आचार व्यवहार प्रचलित हुए और यहां प्रतापशालिनी राजधानियां स्थापित हुईं। धार्मिक रीति बहुत ही बढ़ गई, सामाजिक नियम बदल गए, जाति भेद का प्रचार हुआ, पुरोहितों का प्रभुत्व स्थापित होकर दृढ़ हुआ और अन्त में क्षत्रियों ने उसमें शंका की। इसी समय में विविध और विस्तीर्ण ग्रन्थ भी रचे गए। इस कारण इस युग का समय लगभग ईसा से १४०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक नियत कर सकते हैं।

यहां एक दो बात जो इस काल निर्णय को दृढ़ करती है लिख देनी चाहिए। इस समय की मुख्य ऐतिहासिक बात कुरु और पांचालों का युद्ध है जिसका वर्णन महाभारत में है और जिस

के विषय में हम आगे चल कर कुछ कहेगें। इस समय की सा-हित्य सम्बन्धी मुख्य बात वेदों का संग्रह करना है। पुराणों और महाभारत से भी पता लगता है कि वेदो के संग्रहकर्ता इस युद्ध के समय में हुए हैं परन्तु इस बात को चाहे हम माने अथवा न माने। हम इन दोनों बातों पर अलग अलग विचार करेंगे। दन्तकथा-ओं में लिखा है कि जब वेद संग्रहीत किए गए तो उसकी तिथि नियत करने के हेतु अयनान्त का स्थान निश्चय कर के लिख लिया गया था। ज्योतिष के जिस ग्रन्थ में निश्चित स्थान लिखा मिलता है वह पीछे का ग्रन्थ है अर्थात् ईसा से ३०० वर्ष के पहिले का नहीं है पर यह विचार निस्सन्देह पहिले का है और बेंटले और आर्क-डीकन प्रेट दोनों विद्वान गणितज्ञों ने इसको जांच कर ईसा से ११८१ वर्ष पहिले बतलाया है।

इस आविष्कार के विरुद्ध इन दिनों योरप, एमेरिका और भारतवर्ष में बहुत कुछ लिखा गया है परन्तु इन विवादों में हमें कोई बात भी ऐसी नहीं मिली कि जिससे हमें इस विचार की सत्यता में सन्देह हो। हम इसे ही वेदों के अन्तिम संग्रह का समय मानते हैं और कई पीढ़ी तक कितने ही आचार्यों ने संग्रह का काम किया होगा इस कारण हम अनुमान कर सकते हैं कि वेद ईसा से १४०० अथवा १३०० वर्ष पहिले सम्पादित किए गए और यही काल हमने दूसरे युग का निश्चय किया है।

कुरु पांचालों के युद्ध के विषय में भारतवर्ष की भिन्न भिन्न राजधानियों के इतिहासों में इस युद्ध का नाम आया है और इनमें से बहुत से इतिहास विश्वास योग्य भी हैं। बौद्ध धर्म के आचार्य ईसा से ६०० वर्ष पहिले हुए और देश के दूसरे इतिहासों से पता लगा है कि कुरु पांचाल युद्ध के समय से बुद्ध तक ३५ राजाओं ने राज्य किया। यदि प्रत्येक राज्य का २० वर्ष मान लें तो महाभारत का समय ईसा से १३०० वर्ष पहिले निकल आता है। फिर हमको सिक्कों से मालूम होता है कि कनिष्क ने काश्मीर में ईस्वी की पहिली शताब्दी में राज्य किया और उसके उत्तराधिकारी अभि-मन्यु ने शायद उस शताब्दी के अन्त के लगभग। काश्मीर देश का इतिहासवेत्ता लिखता है कि कुरु पांचाल युद्ध से अभिमन्यु के

समय तक ५२ राजाओं ने १२६६ वर्ष तक राज्य किया। इससे युद्ध का समय ईसा से १२०० वर्ष पहिले निर्धारित होता है।

हम अपने पाठकों से यह नहीं कहते कि ऊपर दी हुई तिथियों में से वे किसी को मान ही लें। भारतवर्ष के इतिहास में सिकन्दर के यहां आने के पहिले की किसी बात का काल निर्णय करना प्रायः असम्भव सा है और जब ज्योतिष की गणना भी कोई वर्ष विशेष बतावे अथवा कोई ऐतिहासिक बात किसी शताब्दी विशेष में प्रगट करे तब भी हम उसके मानने में भली प्रकार संकोच कर सकते हैं। हम केवल यही कहते हैं और इसके कहने का हमको अधिकार भी है कि अब पाठकों का यह मानना सम्भव है कि वेदों का संग्रह और कुरु-पांचाल युद्ध ईसा से लगभग १३०० अथवा १२०० वर्ष पहिले हुआ।

और जब कुरु–पांचाल युद्ध ईसा से १३०० वर्ष पहिले (अर्थात् ट्रोज़न युद्ध से एक शताब्दी पहिले) हुआ तो हम इस दूसरे युग का समय ईसा से १४०० वर्ष पूर्व के पीछे कदापि नियत नहीं कर सकते क्योंकि कुरु–पांचाल युद्ध के समय वर्तमान दिल्ली और कन्नौज की निकटस्थ भूमि प्रबल जातियों का निवास स्थान थी जिन्होंने अपना साहित्य और अपनी सभ्यता निर्माण करली थी। और हम आर्यों के पंजाब से चल देने के समय और उनके गंगा की घाटी में बस कर ऐसी उन्नति करने के बीच के समय को दो शताब्दी मान सकते हैं।

आर्यों के पंजाब से चलने के समय को ईसा से १४०० वर्ष पहिले मान लेने में वैदिक समय अर्थात् प्रथम युग का समय जो हमने दिया है (ईसा से २००० वर्ष से १४०० वर्ष पहिले तक) निश्चित हो जाता है।

फिर, कई एक ब्राह्मण ग्रन्थों से आन्तरिक प्रमाण मिलते हैं कि ये ग्रन्थ कुरु और पांचालों के समय में अथवा उसके पीछे बने। इस लिये इनका समय भी हम ईसा से १३०० अथवा १४०० वर्ष पूर्व का निश्चय कर सकते हैं और उपनिषद् जो ब्राह्मण ग्रन्थों की समाप्ति प्रगट करते हैं ईसा से ११०० वर्ष पूर्व बने होंगे। विदेह लोगों के राजा जनक ने उपनिषदों का प्रचार कराया इसलिये हम विदेह

और कोशल लोगों का समय ईसा से १२०० से १००० वर्ष पूर्व तक अनुमान कर सकते हैं क्योंकि कुरु और पांचाल ईसा से १४०० से १२०० वर्ष पहिले तक हुए।

सुबीते के लिये हम इस युग का नाम ऐतिहासिक काव्य काल रखते हैं। इसी समय में वे जातियां जिनका वर्णन जातीयकाव्यों में आया है, हुईं और लड़ीं, जब कि गंगा की घाटी में कुरु और पांचाल, कोशल और विदेह लोग राज्य करते थे।

तीसरा युग।

तीसरा युग आर्यवर्त के इतिहास में शायद सब से उज्ज्वल समय है। इसी समय में आर्य लोग गंगा की घाटी से भी आगे बढ़े, दूर दूर फैले और भारतवर्ष के दक्षिण तक उन्होंने हिन्दू सभ्यता का प्रचार किया और वहां हिन्दू राजधानियां स्थापित कीं। मगध अर्थात् दाक्षिण बिहार जिससे कि ऐतिहासिक काव्य काल में भी हिन्दू लोग विज्ञ थे, तीसरे युग में पूरी तरह से हिन्दूओं का हो गया और यहां की नई और प्रबल राजधानी ने गंगा तट का प्राचीन राज्य दबा दिया। बौद्ध धर्म मगध के आस पास की राजधानियों में फैला और चन्द्रगुप्त ने जो सिकन्दर का समकालीन था, सारे उत्तरी भारतवर्ष को पंजाब से बिहार तक मगध के राज्याधीन बनाया। इस बड़ी राजनैतिक घटना अर्थात् सारे उत्तरी भारत के एक साम्राज्य के आधीन एकत्रित होने के साथ ही साथ तीसरें युग की समाप्ति होती है और चौथा युग आरम्भ होता है।

आर्य अधिवासी बंगाल तक पहुंचे और उन्होंने आदिनिवासियों में भी हिन्दू धर्म और सभ्यता का प्रचार किया। दक्षिण में जो राजधानियां स्थापित हुईं उन्होंने और भी गौरव पाया। अन्ध्र लोगों ने दक्षिण में एक प्रबल राजधानी स्थापित की और विद्या की बड़ी वृद्धि की। और भी दक्षिण मे आर्य लोगों का प्राचीन द्रविड सभ्यता से संसर्ग हुआ। सुमङ्गल हिन्दू सभ्यता की जय हुई और द्राविड लोग भी हिन्दू बना लिए गए और उन्होंने ऐसी राजधानियां स्थापित कीं कि जो विद्या और प्रताप में विख्यात हो गईं। चोल, चेर

और पांड्य की राजधानियां ईसा से ३०० वर्ष पूर्व अपना प्रताप जमा चुकी थीं और चोल की राजधानी कांची (कांजीवरम) पिछले दिनों में विद्या का मुख्य स्थान हो गई।

पश्चिम में सौराष्ट्र (जिसके अन्तर्गत गुजरात और महाराष्ट्र देश भी हैं) के लोगों ने भी हिन्दू सभ्यता स्वीकार की और समुद्र में लंका से विख्याति प्राप्त की जो कि हिन्दू व्यापारियों के आने जाने का स्थान हुई।

इस समय का व्यवसाय और उत्साह उनके साहित्य और राष्ट्रीय विजय से प्रगट होता है। ब्राह्मण और आरण्यकों की बहुवाक्यमय शिक्षा और धर्मक्रिया सूत्रों में संक्षिप्त की गई जिसमें कि यज्ञों में प्रयोग करने के लिये पुस्तकें बन जांय। कुलाचार और सामाजिक व्यवहार के नियमों के भी सूत्र बनाए गए। सूत्र सम्प्रदाय भारतवर्ष में अधिक फैल गए। उत्तर में और दक्षिण में ग्रन्थों की संख्या बढ़ने लगी। इन धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त शिक्षा शास्त्र, छन्द, व्याकरण और कोशों का अध्यन होने लगा। यास्क ने निरुक्त और पाणिनि ने इसी समय अपना व्याकरण लिखा। निश्चित नियमानुसार यज्ञों की वेदी बनाने के कारण रेखागणित की उत्पत्ति हुई जो पहिले पहिल भारतवर्ष ही में जानी गई।

उपनिषदों की शिक्षा भी वृथा न गई। इन ग्रन्थों का अवलोकन बराबर होता रहा यहां तक कि कपिल ने सांख्यदर्शन का आविष्कार किया जो कि संसार के तत्व दर्शनों में गूढ़ युक्तियुक्त होने में सब से प्रथम है। इसके सिवाय और आचार्यों ने भी दूसरे दर्शन रचे परन्तु सांख्य दर्शन ही को भारत के भविष्य काल पर सब से अधिक प्रभाव डालना था। क्योंकि ईसा से ६०० वर्ष पहिले गौतम बुद्ध का जन्म हुआ और उसने सांख्य की रूखी युक्ति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विचार जोड़ दिए जिसके कारण उसका धर्म सारी मनुष्य जाति में से तिहाई लोगों में प्रचलित हो गया।

इस युग का समय निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं है।

सिकन्दर के समकालीन चन्द्रगुप्त ने उत्तरीय भारत को ईसा से ३२० वर्ष पहिले एक किया था । इस कारण हम तीसरे युग का काल ईसा से १००० वर्ष पहिले से ३२० वर्ष पहिले तक मान सकते हैं । सुबीते के लिये हम इसको दार्शनिक अथवा युक्तिसिद्ध काल कहेंगे ।

इस समय की राजनैतिक विद्या सम्बन्धी और धार्मिक घटनाओं को ७०० वर्ष लगे होंगे । जितना बड़ा कि हमने यह काल बतलाया है और जितनी बातें हम जानते हैं वे इस काल को प्रमाणित करती हैं । गौतम बौद्धायन, वसिष्ठ और अपस्तम्ब के सूत्रों का जो समय डाक्टर बुहलर ने निश्चय किया है वह ऊपर दिए हुए ही समय में पड़ता है । डाक्टर थीबो सुल्व सूत्रों अर्थात् रेखागणित का काल ईसा से ८ शताब्दी पहिले बतलाते हैं । सांख्य दर्शन पर लिखने वालों ने कपिल के दर्शनों को ७०० वर्ष पहिले का कहा है और गौतम बुद्ध जैसा कि हम कह चुके हैं ६०० वर्ष पहिले हुए ।

यह काल जो प्रायः निश्चित रूप से निर्णीत हुआ है पिछले अर्थात् ऐतिहासिक काव्य काल के समय को भी प्रमाणित करता है क्योंकि यदि कपिल के दर्शन जो कि उपनिषदों के दूरस्थ और परिपक्व परिणाम हैं, सातवीं शताब्दी में रचे गए तब उपनिषद् तो इसके कई शताब्दी पहिले ही निर्माण किए गए होंगे । और हम उपनिषदों का काल, जिनसे कि ऐतिहासिक काव्य काल समाप्त होता है ईसा से १००० वर्ष पहिले बतलाने में सम्भवतः सत्य ठहरेंगे ।

चौथा युग ।

यह युग चन्द्रगुप्त के प्रभावशाली राज्य के समय से आरम्भ होता है । इसके पोते अशोक ने बौद्ध धर्म को भारतवर्ष का राजकीय धर्म बनाया, पटने की महान संघ के सम्मुख बौद्धों के धर्मग्रन्थों का निर्णय किया और अपनी परोपकारी आज्ञाओं को पत्थर के स्तम्भों और चट्टानों पर खुदवाकर प्रकाशित करवाया । उसने जीवहिंसा का निषेध किया और अपने सारे राज्य में मनुष्यों और

पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध किया। उसने नगरवासियों और कुटुम्बियों के कर्तव्यों को निर्धारित किया और बौद्ध उपदेशकों को पृथ्वी के अन्त तक जाने की आज्ञा दी कि वे धनी और दरिद्री सब से मिलें और सत्य का उपदेश करें। उसके लेखों से प्रगट होता है कि उसने सीरिया देश के एण्टिओकस, मिश्र देश के टोलेमी, मैसीडन के एण्टीगोकस, सीरीन के मगस और एपिरस के अलक्षेन्द्र से सन्धि की और इन राजधानियों में बौद्ध धर्म का उपदेश करने के निमित्त उपदेशक भेजे। अशोक ने कहा है कि इस देश और विदेश में देवप्रिय के धर्म के सिद्धान्तों पर, जहां कहीं वह पहुंचता है, लोग चलते हैं। एक ईसाई लेखक कहता है "बौद्ध उपदेशकों ने सिरीया में अपना धर्मप्रचार, उत्तरी पेलेस्टाइन में ईसा की शिक्षा (जो उससे बहुत कुछ मिलती जुलती है) के सुने जाने के दो शताब्दी पहिले किया। यह बड़ाही सत्य बचन है कि प्रत्येक महान ऐतिहासिक परिवर्तन का एक अग्रसर होता है"।

आर्यवंश का राज्य अशोक के दादा चन्द्रगुप्त के समय से ईसा से लगभग ३०० वर्ष पहिले आरम्भ हुआ। अशोक के पीछे वह चिरकाल तक न रहा। इसके पीछे दो राज्यवंश अर्थात् संग और काण्व ईसा से १८३ से २६ वर्ष पहिले तक हुए। इसके उपरान्त अन्ध्र लोगों ने, जिन्होंने कि दक्षिण में एक प्रबल राज्य स्थापित किया था, मगध को जीता और ये साढ़े चार शताब्दियों तक (ईसा से २६ वर्ष पहिले से ४२० वर्ष पीछे तक) उत्तरी भारतवर्ष के अधिपति बने रहे। ये लोग प्रायः बौद्ध थे परन्तु ब्राह्मणों और धर्मात्मा हिन्दुओं का आदर करते थे। इस बौद्ध काल में दोनों धर्म साथ ही साथ प्रचलित थे और उपद्रव नाम का भी नहीं हुआ। अन्ध्रों के पीछे बड़े बड़े गुप्तवंशी राजा हुए जो ५०० इस्वी तक भारतवर्ष में प्रधान थे और इसके पीछे उनके राज्य का नाश हुआ। गुप्तवंशी प्रायः धर्म परायण हिन्दू थे परन्तु वे बौद्ध धर्म पर भी अनुग्रह रखते थे और बौद्ध मंदिरों और मठों में धन की सहायता करते थे।

इसी समय में पश्चिमी भारतवर्ष में विदेशी लोग बराबर चढ़ाई करते रहे। बैकटीरिया के यूनानी लोग तुरेनियन शत्रु दल से

निकाले जाकर ईसा से दूसरी और पहिली शताब्दी पहिले भारत-वर्ष में आ घुसे। इन लोगों ने यहां राजधानियां स्थापित कीं, यूनानी सभ्यता और विद्या का प्रचार किया और ईसा के कितनी ही शताब्दी पीछे तक भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में इनकी भिन्न भिन्न दशा रही। कहते हैं कि ये लोग उड़ीसा तक पहुंच गए थे। इनके पीछे यूची जाति के तुरेनियन लोगों ने आक्रमण किया और उन्होंने काश्मीर में एक सबल राज्य स्थापित किया। ईसा की पहिली शताब्दी में काश्मीर के यूची राजा कनिष्क का विस्तृत राज्य था जो काबुल, काशगर और यारकन्द से लेकर गुजरात और आगरे तक फैला हुआ था। वह बौद्ध था और उसने काश्मीर में उत्तरीय प्रान्त के बौद्धों की एक महासभा की। तब कम्बोजियन और काबुल की अन्य जातियां भारत में आने लगीं और उनके पीछे क्रम से हुन लोगों का टिड्डीदल पहुंचा जो ईसा की ५ वीं शताब्दी में सारे पश्चिमी भारतवर्ष में फैल गया। अशोक के पीछे कई शताब्दी तक भारत को विदेशी आक्रमणों से चैन नहीं मिला परन्तु ये आक्रमण करने वाले जब अन्त में यहां बस गए तो उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और वे भारत वासियों में सम्मिलित हो गए।

बौद्ध धर्म का भी क्रमशः सन् ईस्वी के पीछे की शताब्दियों में ऐसा ही अस्त हुआ जैसा कि ऐतिहासिक काव्य काल में हिन्दुओं के गंगा की घाटी में बसने पर ऋग्वेद के हिन्दू धर्म का हुआ था। बौद्ध वैरागियों के वृहत और अशासनीय दल बन गए जिनके मठ के अधिकार में कई एकड़ भूमि होती थी और जिनका निर्वाह लोगों की आय से होता था। बौद्ध संस्कार और रीतियां बुद्ध की पूजा और मूर्तिपूजा के अधिक निकट पहुंचने लगीं और इनमें से बहुत सी रीतियां जो सर्वसाधारण को प्रिय थीं उस समय के हिन्दू धर्म में मिल गईं और इस प्रकार से ईसा के ६०० वर्ष पीछे एक नवीन रूप का हिन्दू धर्म बन गया। इसके अनन्तर भारत के किसी किसी प्रान्त में कई शताब्दी तक जर्जरित रूप से हिन्दू धर्म चला आया और अन्त में भारत के मुसलमान विजयी लोगों ने उसे बिलकुल निर्मूल कर दिया।

हमको अशोक के समय से लेकर ईसा की पांचवी शताब्दी तक बौद्ध लोगों की चट्टानों में खुदी हुई गुफाएं, चैत्य अर्थात् मन्दिर और विहार अथवा मठ सारे भारत में मिलते हैं परन्तु पीछे के समय के बौद्ध शिल्प का एक भी नमूना नहीं मिलता। मन्दिर निर्माण करने और हिन्दू शिल्प की प्रथा ईसा की छठीं शताब्दी से लेकर मुसल्मानों के भारत विजय के बहुत पीछे तक रही।

बौद्ध साहित्य का जो भाग हमको आज कल मिलता है उसमें सब से बहुमूल्य वे धर्म शास्त्र हैं जिन्हें अशोक ने पटने की महा सभा में निश्चित करके सारे भारतवर्ष में भेज दिया था। ये धर्म्म-शास्त्र जो पाली भाषा में हैं और लङ्का (सिंघल द्वीप) में संरक्षित हैं, प्राचीन बौद्धधर्म के इतिहास की सब से अच्छी सामिग्री हैं। यह साहित्य नए रूप में नैपाल, त्तिब्बत चीन, जापान और सारे उत्तरीय बौद्ध प्रदेशों में मिला है।

हम कह चुके हैं कि बौद्ध धर्म का हिन्दू धर्म पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। बौद्धधर्म ने वेदों की पवित्रता में सन्देह किया था और आधुनिक अर्थात् पौराणिक हिन्दू धर्म यद्यपि नाम को वेदों का सम्मान करता है परन्तु वह इन प्राचीन ग्रन्थों से पूर्णतया पृथक् भाव रखने और छुटकारा पाने का परिचय देता है। हिन्दू ज्योतिष, गणित, धर्म शास्त्र और दार्शनिक विचार वेदों और वैदिक यज्ञों से उत्पन्न हुए थे और भिन्न भिन्न वैदिक सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते थे पर बौद्ध समय के पीछे के हिन्दू, विज्ञान और शास्त्र का अवलम्ब नहीं लेते और न किसी वैदिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। पौराणिक हिन्दू धर्म वैदिक यज्ञों का धर्म नहीं है वरञ्च उसमें मूर्त्ति और देवताओं की पूजा है जिसका कि वेदों में नाम भी नहीं है।

मनु के धर्म शास्त्र में बौद्ध युग के हिन्दू विचारों और रीतियों का वर्णन है। यह धर्म शास्त्र दार्शनिक काल के प्राचीन धर्म सूत्रों अथवा सामाजिक नियमों पर निर्धारित है परन्तु धर्म सूत्र भिन्न भिन्न वैदिक सम्प्रदायों के हैं। मनु संहिता किसी वैदिक सम्प्रदाय

की नहीं हैं और उसके नियम आर्य मात्र के नियम हैं। इसके विपरीत मनु वैदिक यज्ञों को मानता है, मूर्त्ति पूजा को त्याज्य समझता है और पौराणिक हिन्दू धर्म की त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) से अनभिज्ञ है। इस प्रकार मनु वैदिक हिन्दूधर्म से पौराणिक धर्म के परिवर्त्तन की दशा दिखलाता है।

उपरोक्त बातों से यह प्रगट हो जायगा कि हमारे चतुर्थ युग का समय ईसा से ३२० वर्ष पहिले से लेकर ५०० वर्ष पीछे तक नियत करने का क्या कारण है।

पांचवां युग।

हिन्दू इतिहास का पांचवां अर्थात् अन्तिम युग हिन्दुओं के पुनरुत्थान का समय है जिसका विस्तार ५०० ईस्वी से १००० ईस्वी तक है जब कि महमूद गजनवी ने पहिला आक्रमण किया था।

यह काल राजनीति और साहित्य में महान कार्यों से आरम्भ होता है। कई शताब्दी पूर्व से विदेशी आक्रमणों ने भारत को दुखी कर रक्खा था परन्तु अन्त में एक बड़ा प्रतिहिंसक उत्पन्न हुआ। उज्जैन का विक्रमादित्य उत्तरी भारत का अधिपति था। उसने कोरर के घोर युद्ध में शक नाम के आक्रमण करनेवालों को हरा कर भगा दिया और हिन्दू स्वाधीनता को पुनः जीवित किया। हिन्दू कल्पना, निर्माण-शक्ति और साहित्य का इसके प्रसाद से पुनरुत्थान हुआ और हिन्दूधर्म एक नए रूप में प्रगट हुआ। तीन शताब्दी का समय जो कि विक्रमादित्य के समय से आरम्भ होता है (५०० से ८०० ई०) पीछे के संस्कृत साहित्य का महान युग कहा जा सकता है और प्रायः जितने बड़े बड़े ग्रन्थ आज भारतवर्ष में सर्वप्रिय हैं सब इसी समय के हैं। कालिदास ने अपने अद्वितीय नाटक और काव्य विक्रम की सभा ही में लिखे। अमरसिंह कोषकार इसी सभा के नवरत्नों में से था। और भारवी कालिदास का समकालीन था अथवा कुछ ही पीछे हुआ। विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी दूसरे शिलादित्य ने ६१० से ६५० ई० तक राज्य किया। यह रत्नावली का कर्त्ता समझा जाता है। दंडी जिसने दशकुमारचरित

रचा है, दूसरे शिलादित्य के समय हुआ था और कादम्बरी का का रचयिता बाणभट्ट इसकी सभा में रहता था। वासवदत्ता बनाने वाला सुबन्धु भी इसी समय हुआ और यह भी युक्तियुक्त है कि शतक के रचयिता भर्तृहरि ने इसी शासन में भट्टिकाव्य बनाया।

दूसरी शताब्दी में यशोवर्मन ने ७०० ई० और ७५० ई० के बीच के समय में राज्य किया और विख्यात भवभूति ने अपने ओजस्वी नाटकों की रचना इसी काल में की। पर भवभूति प्राचीन आर्यावर्त के कवियों और विद्वानों की मंडली में अन्तिम था और आठवीं शताब्दी के अनन्तर भारतवर्ष में कोई भी अद्भुत बुद्धि सम्पन्न विद्वान नहीं हुआ।

इसी काल में भारतवर्ष के बृहत् जातीय महाकाव्य जो बहुत पूर्व रचे जा चुके थे, बढ़ाए और शुद्ध किए गए और इस प्रकार उन्होंने अपना अन्तिम स्वरूप धारण किया और उन बृहद् पुराणों की रचना जिनके कारण इस युग का नाम पौराणिक युग रक्खा गया है, वर्तमान रूप में आरम्भ हुई।

इन तीन शताब्दियों में भी आधुनिक हिन्दू विज्ञान शास्त्र में हमको प्रबल नाम मिलते हैं। आर्यभट्ट जिसने आधुनिक ज्योतिष शास्त्र की नींव डाली है, सन् ४७६ ई० में पैदा हुआ और उसने अपने ग्रन्थ छट्ठी शताब्दी के आरम्भ में लिखे। उसका उत्तराधिकारी वराहमिहर विक्रम की सभा के नवरत्नों में था। ब्रह्मगुप्त का जन्म ५९८ ई० में हुआ और इसलिये वह उपन्यास लेखक बाणभट्ट का समकालीन था। छठी शताब्दी के लगभग और भी विख्यात ज्योतिषी हुए हैं।

इन तीन शताब्दियों (५०० से ८०० ई० तक) के पीछे की दो शताब्दियां घोर अन्धकार की हुईं। उत्तरी भारत का इतिहास ८०० से १००० ई० तक निरा कोरा है। उसमें न तो कोई राज्यवंश पराक्रमशील हुआ, न किसी विद्वान अथवा वैज्ञानिक ने ख्याति पाई और न उत्तरी भारत में कोई बड़ा कारीगरी अथवा शिल्प का काम निर्माण किया गया। इन दोनों निःसत्व शताब्दियों के विषय में इतिहास मौन्य है।

पर उस समय जो कुछ होरहा था उसके चिन्ह हमें कुछ मिलते

हैं। इन्हीं दोनों अन्धकारमय शताब्दियों में प्राचीन राज्यवंशों का पतन और प्राचीन राजधानियों का नाश हुआ। वे योरप के dark ages के समान हैं कि जिसमें रोमन राज्य की क्षति हुई और जो फ्यूडल प्रणाली के उठतेही दूर होगया। भारतवर्ष में भी अन्धकार के समय में प्राचीन राज्यवंशों और जातियों का प्रभाव धीरे धीरे नाश होगया और फिर जब प्रकाश होता है तो हम देखते हैं कि हिंदू फ्यूडल बेरन (Feudal barons) की एक नवीन जाति (अर्थात् वर्तमान राजपूत लोग) भारत में अधिपति होजाती है।

इस प्राचीन राज्य के विध्वंस और नवीन अधिकार के प्रयत्न के समय में सब से तरुण और सब से प्रबल जाति आगे बढ़ गई। लगभग १००० ई० तक हम राजपूत राज्यवंशों को उत्तरी भारत में सर्वत्र राज्य करते पाते हैं। वे उज्जैनी और कन्नौज में विक्रमादित्य और उसके उत्तराधिकारियों के राज्य के अधिकारी हुए। उन्होंने गुजरात और पश्चिमी भारत के प्रबल वल्लभी राजाओं का राज्य छीन लिया, बंगाल और दक्षिण में अपना राज्य जमाया और सुबुक्तगीन और महमूद को पंजाब में आगे बढ़ने से रोकने का प्रयत्न किया।

राजपूत लोगों की उत्पत्ति के विषय में भिन्न भिन्न मत प्रगट किए गए हैं। विलसन और अन्यान्य विद्वानों का मत है कि ये लोग सीदियन आक्रमण करने वालों के वंश में हैं कि जो कई शताब्दियों तक निरन्तर भारतवर्ष में आते रहे, जिन्हे विक्रमादित्य ने एक बेर पीछे हटा दिया था परन्तु जो अन्य आक्रमण करने वालों की नाई पश्चिमी भारत के मरुस्थलों में बस गए और जहां जहां उनसे हो सका, विजय करते और शासन करते रहे। चाहे जो कुछ हो राजपूत लोग निस्सन्देह हिन्दू सभ्यता के नए मानने वाले हुए क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में उनका कहीं नाम भी नहीं है। समस्त नवीन परिवर्तित लोगों की नाईं उन्होंने हिन्दूधर्म को असाधारण उत्साह से अङ्गीकार किया। वे सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्री कहे जाने पर गौरान्वित होते। जहां जहां वे विजय पाते हिन्दू मन्दिर स्थापित करते। पुरोहितों का घोर रूप का अधिकार और वर्तमान हिन्दूधर्म के अत्यन्त हानिकारक बन्धन इसी समय से आरम्भ हुए

और मुसल्मानी शासन में सात शताब्दियों के जातीय निरुत्साह से वे चिरस्थायी हो गए।

योरप और भारतवर्ष के इतिहास में प्राचीन काल की समाप्ति की घटनाओं में समानता देखकर आश्चर्य होता है। जिस प्रकार विक्रमादित्य ने शक जाति को निकाल भगाया उसी प्रकार अन्तिम रोमन राज्याधिकारियों और उनकी सेना ने उन असभ्य जातियों को जो बड़े उत्साह से विजय प्राप्त करने के हेतु आगे बढ़ रही थीं, पीछे हटा दिया। कई शताब्दी तक हिन्दू और रोमन लोग विजय पाते रहे परन्तु अन्त में आक्रमणों और विजय की लहरों ने भारतवर्ष और इटली के शासन को ग्रस्त कर लिया और प्राचीन राज्यासनों और प्रणालियों का अधिपतन हुआ। इस घटना के शताब्दियों पीछे का पश्चिमी योरप और उत्तरी भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है और यदि है भी तो उन्हीं घोर संग्रामों और अत्याचारों का कि जब से प्राचीन युग का अन्त और वर्तमान काल का उदय होता है। अन्त में जब अन्धकार निवृत्त होता है तो योरप और भारत दोनों में फ्यूडल राज्य स्थापित होते हैं और योरप के नए राज्यवंश ईसाई धर्म ग्रहण कर उस समय के पुरोहितों के पक्ष में उसी उत्साह और अनुराग से प्रयत्न करने लगे कि जैसे नवीन परिवर्तित राजपूत लोगों ने ब्राह्मणों और नवीन प्रणाली के हिन्दूधर्म के हेतु किया।

• परन्तु इस समानता की समाप्ति यहीं नहीं होजाती। भारत के नवीन अधिकारियों को मुसल्मानों के आक्रमणों की लहरों के विरुद्ध उतनाही प्रचण्ड संग्राम करना पड़ा जैसा कि योरप के नवीन सम्राटों को फ्रान्स, स्पेन और सीरिया में। सिंहहृदय रिचर्ड और दिल्लीश्वर पृथुराय एकही समय में उसी बढ़ती हुई जाति से लड़ रहे थे। योरप में राज्याधिकारियों ने अपनी स्वतंत्रता को रक्षित रक्खा और अन्त में मुसलमानों को स्पेन से भी निकाल दिया। भारत में हिन्दू राज्याधिकारियों ने विरोध तो किया परन्तु वह निष्फल हुआ। शहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और बनारस के राजपूत राज्यवंशों को सन् ११९३ और ११९४ में नाश कर दिया और राजपूतों के बड़े बड़े योधा भी अपने मरुस्थल के दुर्गों

में भाग गए कि जहां अब लों वे अङ्गरेज़ी गवर्मेण्ट की दयालुता के कारण एक प्रकार की स्वतंत्रता भोग रहे हैं।

हमने पौराणिक युग का काल सन् ५०० से १००० तक रक्खा है परन्तु उपरोक्त बातों से विदित होजायगा कि पौराणिक युग सन् ८०० में समाप्त होगया है। प्राचीन भारत का इतिहास इसी काल में समाप्त होता है और उसके पीछे दो शताब्दियां अन्धकार मय हैं।

समय।

भारतवर्ष में दो संवत्सर प्रचलित हैं। विक्रम संवत ईसा से ५६ वर्ष पूर्व से आरम्भ होता है और शकाब्द ७८ इस्वी से। विद्वानों को इस बात के निश्चय करने में बड़ी कठिनाई हुई है कि ये दोनों संवत्सर किन विख्यात घटनाओं के स्मरणार्थ स्थापित हुए थे और जो सिद्धान्त कि वे अब तक निश्चय कर सके हैं वे वादविवाद की सीमा के परे नहीं हैं।

यह अब निश्चय हुआ है कि शकाब्द शाक्य राजा कनिष्क का चलाया हुआ है जिसने ईसा से एक शताब्दी पीछे काश्मीर और पश्चिमी भारत को विजय करके आस पास के देशों में बौद्धधर्म का प्रचार किया। शकाब्द आरम्भ में बौद्धों का संवत्सर था। जब भारतवर्ष में बौद्ध धर्म्म था तो इसका प्रयोग होने लगा और बौद्धों के देश में अर्थात् तिब्बत ब्रह्मा लंका और जावा में सर्वत्र इसका प्रचार था। छठी शताब्दी में हिन्दुओं के पुनरुत्थान के पीछे उन्होंने इसका प्रयोग करना आरम्भ किया और वे यह कहने लगे कि इस शकाब्द का आरम्भ बौद्ध शक राजा के समय से नहीं है वरञ्च उस समय से है जब एक हिन्दू राजा ने शक लोगों पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु प्राचीन लेखकों ने जहां कहीं शक संवत् का वर्णन किया है तो इसे शक राजाओं का ही शकाब्द बतलाया है * और

---

* ७० वर्ष हुए विद्वान कोलब्रूक ने लिखा था कि वराहमिहिर ने जो ईसा की छठी शताब्दी में हुआ, शक संवत् को "शकभूपकाल" अथवा "शकेन्द्रकाल" अर्थात् शक राजाओं का संवत्सर लिखा

आज की घड़ी तक हमारे पत्रों में यह शकाब्द ही लिखा जाता है अथवा पूर्ण रूप में इसे यों लिखते हैं "शकनरपेतर अतीताब्द" जिससे अभिप्राय यह है कि शक राजाओं की संवत्सर, और न कि हिन्दू राजा का शकों को नाश करने का समय।

विक्रम संवत् का निश्चय करना इससे भी कठिन है। साधारणतः इसका आरम्भ विक्रमादित्य के किसी बड़े विजय के काल से समझते हैं परन्तु इतिहास में ईसा से ५६ वर्ष पहिले किसी विक्रमादित्य का वर्णन नहीं आया है और अब निश्चय होगया है कि कालिदास का गुणग्राहक विक्रमादित्य ईसा से छ सौ वर्ष पीछे हुआ था।

इससे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि संवत् का प्रयोग अभी थोड़े ही काल से होने लगा है। सन् ईस्वी के तुरन्त पीछे इसके प्रयोग किए जाने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। भारतवर्ष में बौद्धों के काल के अथवा तिब्बत, ब्रह्मा, लंका, जावा आदि दूसरे बौद्ध देशों के शिला लेखों पर यह संवत नहीं मिलता।

संवत्सर जो सन् ईस्वी से ५६ वर्ष पहिले प्रचलित हुआ ऐतिहासिक अन्धकार से आच्छादित है। यह किसी ऐसे राजा का चलाया हुआ जान पड़ता है कि जिसका इतिहास में कहीं वर्णन भी नहीं है और जिस काल से इसका आरम्भ समझा जाता है इसके बहुत पीछे तक इसका प्रयोग नहीं हुआ।

कदाचित संवत्सर की उत्पत्ति का ठीक ठीक निर्णय मिस्टर फ्लीट ने अपनी रची हुई गुप्त राजाओं के शिलालेखों के विषय की पुस्तक में किया है। ऐसा जान पड़ता है कि यह संवत्सर आरम्भ में मालवा जाति का एक अप्रसिद्ध संवत था जो पीछे से विक्रमादित्य के नाम के साथ संयुक्त किया गया कि जिसने सन्

है। उसके टीकाकारों ने इसका अर्थ उस संवत्सर से किया है कि जब विक्रमादित्य ने शक लोगों को हराया। फिर ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी ने जो ईसा की सातवीं शताब्दी में हुआ इसको 'शक नृपान्ते' अर्थात् शक राजा के पीछे का लिखा है। उसके टीकाकारों ने भी उसका यह अर्थ किया "विक्रमादित्य के पीछे का कि जिसने असभ्य शक जाति का दमन किया।" (कोलब्रूक कृत 'संस्कृत की बीजगणित इत्यादि' देखो)

ईस्वी से ६०० वर्ष पीछे मालवा जाति को भारतवर्ष की प्रधान जाति बनाया।

अब हम सुगमता के हेतु भिन्न भिन्न कालों की एक सूची देते हैं परन्तु इतना कह देना आवश्यक है कि इन तारीखों को केवल यथार्थता के संन्निकट पहुंचती हुई समझना चाहिए और पहिले दी हुई तिथियों में यदि भेद है तो २ या ३ ही सौ वर्ष का होगा।

१ वैदिक काल।

ईसा से २००० वर्ष पहिले से १४०० वर्ष पहिले तक।

आर्यों का सिन्ध की घाटी में अधिनिवास, ऋग्वेद के सूक्तों का निर्माण–ईसा से २००० वर्ष पहिले से १४०० वर्ष पहिले तक।

२ ऐतिहासिक काव्य काल।

ईसा से १४०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक।

गंगा की घाटी में आर्यों का अधिनिवास—ईसा से १४०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक।

चन्द्रराशिचक्र का स्थिर किया जाना, ज्यौतिषिक वेध, वेदों का सम्पादन—ईसा से १४०० वर्ष पहिले से १२०० वर्ष पहिले तक।

कुरु और पाञ्चालों की उन्नति का समय—ईसा से १४०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक।

कुरु-पाञ्चालों का युद्ध—ईसा से १२५० वर्ष पहिले।

कोशल, काशी और विदेह लोगों का उन्नति काल—ईसा से १२०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक।

ब्राह्मणों और आरण्यकों का निर्माण काल—ईसा से १३०० वर्ष पहिले से ११०० वर्ष पहिले तक।

उपनिषदों का निर्माण काल—ईसा से ११०० वर्ष पहिले से १००० वर्ष पहिले तक।

३ दार्शनिक काल।

ईसा से १००० वर्ष पहिले से ३२० वर्ष पहिले तक।

आर्यों का भारत विजय—ईसा से १००० वर्ष पहिले से ३२० वर्ष पहिले तक।

यास्क—ईसा के पहिले नौवीं शताब्दी में।
पाणिनि—ईसा के पहिले आठवीं शताब्दी में।
सूत्रकार—ईसा से ८०० वर्ष पहिले से ४०० वर्ष पहिले तक।
सुल्व सूत्र (रेखागणित)—ईसा के पहिले आठवीं शताब्दी मे।
अन्य दार्शनिक—ईसा के ६०० वर्ष पहिले से ईस्वी सन् तक।
गौतम बुद्ध—ईसा से ५५७ वर्ष पहिले से ४८५ वर्ष पहिले तक।
बिम्बिसार, मगध का राजा—ईसा से ५३७ वर्ष पहिले से ४८५ वर्ष पहिले तक।
अजातशत्रु—ईसा से ४८५ वर्ष पहिले से ४५३ वर्ष पहिले तक।
प्रथम बौद्ध संघ—ईसा से ४७७ वर्ष पहिले।
द्वितीय बौद्ध संघ—ईसा से ३७७ वर्ष पहिले।
नौ नन्द, मगध के राजा—ईसा से ३७० वर्ष पहिले से ३२० वर्ष पहिले तक।

४ बौद्ध काल।

ईसा से ३२० वर्ष पहिले से ५०० इस्वी तक।

चन्द्रगुप्त, मगध का राजा—ईसा से ३२० वर्ष पहिले से २९० वर्ष पहिले तक।
बिन्दुसार—ईसा से २९० वर्ष पहिले से २६० वर्ष पहिले तक।
अशोक—ईसा से २६० वर्ष पहिले से २२२ वर्ष पहिले तक।
तृतीय बौद्ध संघ—ईसा से २४२ वर्ष पहिले।
मगध मे मौर्य वंश का अन्त—ईसा से १८३ वर्ष पहिले
मगध में सुंग वंश—ईसा से १८३ वर्ष पहिले से ७१ वर्ष पहिले तक।
मगध में काण्व वंश—ईसा से ७१ वर्ष पहिले से २६ वर्ष पहिले तक।
मगध में अन्ध्र वंश—ईसा से २६ वर्ष पहिले से सन् ४३० ईस्वी तक।
गुप्त वंशी राजा—सन् ३०० से ५०० इस्वी तक।
बक्टेरिया के ग्रीक लोगों का भारत पर आक्रमण—ईसा के पहिले दूसरी और पहिली शताब्दियों में।

यू-ची जाति का भारत पर आक्रमण—ईसा की पहिली शताब्दी में।

काश्मीर के यू-ची राजा कनिष्क ने शक संवत् चलाया—सन् ७८ ईस्वी में।

सौराष्ट्र देश में शाह वंशी राजाओं का राज—सन् १५० से ३०० ईस्वी तक।

कम्बोजी लोगों का भारत पर आक्रमण—ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दियों में।

हुन लोगों का भारत पर आक्रमण-ईसा की पांचवीं शताब्दि में।

५ पौराणिक काल।

सन् ५०० ईस्वी से १००० ईस्वी तक।

उज्जैन और उत्तरी भारत का राजा विक्रमादित्य—सन् ५०० से ५५० ईस्वी तक।

कालिदास, अमरसिंह, वररुचि आदि—सन् ५०० से ५५० ईस्वी तक।

भारवी—लगभग ५५० ईस्वी से ६०० ईस्वी तक।

आधुनिक हिन्दू ज्योतिष शास्त्र का संस्थापक आर्यभट्ट—सन् ४७६ से ५३० ईस्वी तक।

वराहमिहिर-सन् ५०० से ६६० ईस्वी तक।

ब्रह्मगुप्त-सन् ५६८ से ६५० तक।

द्वितीय शिलादित्य, उत्तरी भारत का सम्राट—सन् ६१० से ६५० ईस्वी तक।

दण्डी—सन् ५७० से ६२० तक।

बाणभट्ट और सुबन्धु, भर्तृहरि और भट्टिकाव्य—सन् ६१० से ६५० ईस्वी तक।

भवभूति—सन् ७०० से ७५० ईस्वी तक।

शङ्कराचार्य-७८८ से ८५० ईस्वी तक।

उत्तरी भारत का अन्धकारमय समय—सन् ८०० से १००० ईस्वी तक।

—:*:—

प्राचीन भारतवर्ष की

सभ्यता का इतिहास।

पहिला भाग।

काण्ड १

वैदिक काल, इस्वी से २००० वर्ष पूर्व से १४०० वर्ष पूर्व तक।

अध्याय १

आर्य लोग और उनका साहित्य।

आर्य लोगों के रहने की पहिली जगह* के बारे में विद्वान लोगों

---

* आज कल की खोज से मालूम हुआ है कि जो जातियां आर्य भाषाएं बोलती हैं वे सब एकही जाति से नहीं पैदा हुई हैं और न वे कभी एकही जाति की थीं। लेकिन साथही इसके यह भी माना जाता है कि इन सब जातियों के पूर्व पुरुषों ने किसी एकही भंडार से अपनी अपनी भाषाओं को पाया होगा। वे सब किसी एकही बड़ी जाति के अधीन रही होंगी जिसने अपनी भाषा का प्रभाव उन सभों पर डाला अथवा वे सब एक ही देश में रही होंगी। जब हम "आर्य लोगों की सब से पहिली रहने की जगह" लिखें तो उससे वही देश समझना चाहिए जहां ये लोग एक साथ रहते थे और जब हम 'आर्य लोगों' का वर्णन करें तो हमारा मतलब उन्हीं जातियों से होगा जो आर्य भाषाएं बोलती हैं।

का बड़ा मतभेद है। अपने देश को प्यार करने वाले और उत्साही हिन्दू विद्वान यह कभी नहीं मानते कि आर्य लोगों की पहिली रहने की जगह आर्यावर्त के बाहर रही हो और इसी तरह अपने देश से प्रीति रखनेवाले योरप के विद्वान लोग आर्यों की पुरानी रहने की जगह बाल्टिक सागर के किनारे बतलाते हैं। अस्तु जो कुछ हो हमारा काम इस झगड़े में पड़ने का नहीं है। हम यहां सिर्फ पक्ष-पात रहित लोगों का विचार लिख देते हैं कि आर्यों की पहिली रहने की जगह एशिया के बीच में कहीं पर थी।

जिन प्रमाणों से यह बात सिद्ध की गई है उन्हें प्रोफेसर मेक्समूलर ने अपनी एक पुस्तक में दिया है जिसे छपे अभी थोड़ेही दिन हुए हैं। हम नीचे अपने पाठकों के लिये उसका अनुवाद कर देते हैं।

" (१) भाषा के दो स्रोत हैं एक का तो प्रवाह दक्षिण-पूरब की ओर आर्यावर्त को है और दूसरे का उत्तर-पश्चिम की ओर यूरप को। वह जगह जहां ये दोनों स्रोत एक दूसरे से मिलते हैं, एशियाही जान पड़ती है।

" (२) सभ्यता के सब से पुराने स्थान एशियाही में थे और सब आर्य भाषाओं का सब से पहिला रूप (आर्थात् पुरानी आर्य जातियां जो भाषा बोलती थीं उससे बहुत मिलती हुई भाषा) पुराने आर्यावर्त की वैदिक संस्कृत ही है।

" (३) पीछे के समय में मध्य एशिया से यूरप में कई दूसरी जातियां जाकर उपद्रव करने और अपना अधिकार जमाने लगीं जैसे इस्वी की चौथी शताब्दी में हुन जाति और तेरहवीं शताब्दी में मंगोल जाति।

"(४) यदि आर्य लोग यूरप से और विशेष कर स्कोंडिनेविया से एशिया में आए होते तो उनकी मामूली बोलचाल की भाषा में समुद्र की चीजों के भी नाम पाए जाते।" पर ऐसा नहीं है। यद्यपि उसमें विशेष प्रकार के जानवरों और चिड़ियों के नाम पाए जाते हैं पर उसमें विशेष प्रकार की मछलियों के या मछली मात्र के लिये कोई नाम नहीं मिलता और न समुद्र ही के लिये कोई एक साधारण नाम मिलता है।

संसार में भिन्न भिन्न आर्य जातियों के मामूली बोलचाल में जो शब्द पाए जाते हैं उन्हीं के निर्बल और सूक्ष्म सहारे से बहुत से विद्वानों ने आर्य लोगों की पुरानी सभ्यता का उस समय का कुछ न कुछ कल्पित हाल लिखा है जब कि वे लोग एक दूसरे से अलग नहीं हुए थे। पिक्टेट साहब ने सन् १८५६-६३ में पेरिस में दो बड़े बड़े भागों में जो पुस्तक छपवाई थी, वह उसके पहिले की छपी हुई इस विषय की और पुस्तकों से बहुत अच्छी हुई। इसके पीछे सन् १८६८ में डाक्टर फ़िक की बनाई पुस्तकें और सन् १८७० में डाक्टर हेन की पुस्तक छपी। यहां पर हमारा मतलब ऐसे वृत्तान्तों को लिखने का नहीं है। हम पुराने आर्य लोगों के बारे में सिर्फ वेही बातें लिखेंगे जिनमें कोई मतभेद नहीं है।

पुराने आर्य लोगों के घर का काम काज बहुत कुछ वैसाही था जैसा कि आज कल आर्य जातियों में है। इतिहास जानने वाले लोग आर्यों के इतिहास में पुरुष और स्त्री में बिना विवेक के सम्बन्ध होजाने का, या स्त्रियों को अपनी मा के वंश में गिने जाने का या स्त्रियों के वारिस होने का, कोई चिन्ह नहीं पाते। वरन इस के विपरीत बाप कुटुम्ब का पालने और रक्षा करनेवाला होता था, मा लड़कों को खिलाती और उनकी खबर लेती थी, बेटी दूध दुहती थी, और ब्याह का सम्बन्ध माना जाता था। कदाचित पुराने आर्य लोग सभ्यता की इतनी ऊंची हालत पर पहुंच गए थे कि जिसमें स्त्री और पुरुष में बिना विवेक के सम्बन्ध नहीं हो सकता। जाति की जगह पर उस समय कुटुम्ब होता था और बाप कुटुम्ब, का मुखिया माना जाता था।

बहुत से काम के जानवर पालतू कर लिए गए थे और लोगों के काम में लाए जाते थे। गाय, बैल, सांड, बकरी, भेंड़, सूअर, कुत्ते और घोड़े, ये सब पालतू कर लिए गए थे। जङ्गली रीछ, भेड़िए, खरगोश और डरावने सर्प, ये सब उस समय मालूम हो चुके थे। इसी तरह चिड़ियों में राजहंस, बत्तक, कोयल, कौवा, लावा, सारस, और उल्लू भी पुराने आर्य लोगों को मालूम थे।

हर एक तरह के उद्यम तब तक भी शुरू की दशा में थे, लेकिन शिल्प विद्या का आरम्भ हो गया था। आर्य लोग घर, गांव,

नगर और सड़कें बनाते थे और जल से आने जाने और व्यापार करने के लिये नाव भी बनाते थे। वे लोग सूत कातना, कपड़े बुनना और उनकी तह लगाना भी जानते थे और रांएं, चमड़े और ऊन के कपड़े बनाते थे। बढ़ई के काम ने जरूर उस समय बड़ी उन्नति की होगी। आर्य लोग रंगना भी जानते थे।

कदाचित यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पहिले के आर्य लोग खेती करते थे और इसी काम करने के कारण उनका नाम (आर्य=किसान) पड़ा। सब आर्य जातियों की मामूली बोल चाल के बहुत से किसानी शब्दों से, जैसे, हल, गाड़ी, छकड़ा, पहिया, धुरा, जूआ, आदि से यह जान पड़ता है कि वे एक ही शब्द भंडार से निकले हैं। वे अनाज को कूट पीस कर उसे कई तरह से पकाते थे और हरएक कुटुम्बी भेंड और गायों के झुंड रखता था जिससे दूध और मांस मिलता था। यद्यपि उस समय खेती की जाती थी पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि बहुतेरे कुलपति जानवरों के लिये नई नई चरने की जगहों की खोज में अपने साथियों और जानवरों को लेकर एक जगह से दूसरी जगह घूमा करते थे और पहिले के बहुत से आर्य लोग इसी तरह से घूम घूम कर रहते थे। इस बात का कुछ पता ऋग्वेद में भी मिलता है, जैसा कि हम आगे चल कर दिखलावेंगे।

उस समय युद्ध की भी कमी नहीं थी। हड्डी, लकड़ी, पत्थर, और धातु के हथियार बनाए जाते थे। ऐसा जान पड़ता है कि तीर, धनुष, तलवार और भाला युद्ध के हथियार थे।

पहिले के आर्य लोगों को सोने और चांदी का प्रयोग जरूर मालूम था जिससे जान पड़ता है कि उन लोगों में सभ्यता कुछ बढ़ी हुई थी। पहिले की जातियों के सादेपन से वे सोने को "पीला" (हिरण्य) और चांदी को "सफ़ेद" (रजत) कहते थे वे लोग एक तीसरी धातु (अयस) को भी जानते थे लेकिन यह धातु लोहा थी या कोई दूसरी चीज इसमें सन्देह है।

कदाचित इसका अनुमान करना सम्भव नहीं है कि उस पुराने ज़माने मे राज की प्रणाली किस तरह की थी। इसमें सन्देह नहीं कि जातियों के सरदार और मनुष्यों के मुखिया लोग अधिकार पाते

थे और सीधी सादी प्रजा उन्हें लड़ाई और अमन चैन में अपना बचाने वाला या पालने वाला (पति, बिस्पति, राजा) कहती और मानती थी। सभ्य लोगों के मामूली विचारों से उचित या अनुचित में फ़रक समझा जाता था। उस समय की जो रीति थी और जो बातें जाति की भलाई की समझी जाती थीं वेही उस समय कानून की तरह मानी जाती थीं।

जो बातें सुन्दर और अचम्भे की थी उन्हींको आर्य लोगों ने अपने पुराने धर्म की जड़ माना। आस्मान या चमकीला आस्मान अचम्भे और पूजा की एक पुरानी चीज थी। सूर्य, उषा, अग्नि, पृथ्वी, आंधी, बादल और बिजली इन सब की पूजा की जाती थी। पर धर्म फिर भी सीधा और पुराना था। देवताओं और उनके बारे की गढ़ी हुई कथाएं अब तक नहीं बढ़ीं थीं और न बहुत से विधानों की रीतें हीं बनाई गई थीं। आर्य जातियों के वीर पुरखा लोग सृष्टि की सुन्दर और अचम्भे की बातों को पुरुषोचित सत्कार की दृष्टि से देखते थे और ऐसी बातों को ईश्वर से व्याप्त समझते थे और धन्यवाद और उत्साह के साथ उसकी स्तुति और प्रार्थना करते थे।

समय समय पर आर्य लोगो के साहसी दल भोजन, चरागाह, राज्य या लूट की खोज में अपनी पुरानी रहने की जगह छोड़ देते थे। जिस क्रम से जुदी जुदी जातियों ने अपने रहने की जगह छोड़ी है वह मालूम नहीं है और न कभी मालूम हो सकेगा। प्रोफेसर मेक्समूलर का यह विचार है कि पहिले पहिल आर्य जातियों के दो हिस्से हुए, एक तो उत्तर-पश्चिमी या यूरोपी और दूसरा दक्षिण-पूर्वी या एशियाई। ये दोनों हिस्से एक बेर अलग होकर फिर कभी नहीं मिले। उत्तर-पश्चिम की शाखा यूरप की ओर गई और पांच जुदी जुदी जातियां उसके पांच जुदे जुदे हिस्सों में जाकर बसीं, जिसका समय मालूम नहीं किया जा सकता। केल्ट लोग यूरप के बहुत ही पश्चिम में यानी फ्रान्स, आयरलेंड, ग्रेट ब्रिटेन और बेलजियम में जाकर या संभव है कि दूसरी जातियों से आगे भगाए जाकर बसे। बखंधानि ट्यूटन लोग यूरप के उत्तर और बीच के हिस्सों में बसे जहां से कि रोम के अधःपतन के

पीछे वे लोग सारे योरप को जीत लेने के लिये निकले। स्लाव लोग यूरप के पूरब में यानी एशिया आदि में बसे और इटेलिक और ग्रीक जातियां योरप के दक्खिन में बसीं।

एशियाई शाखा दक्खिन की ओर गई और मेक्समूलर का विचार है कि तब तक आपस में मिले हुए हिन्दू-ईरानी लोग पंजाब की इंडस नदी तक आए। यहां इंडस और उसकी सहायक नदियों के आस पास दक्खिन-पूर्वी आर्य लोग एक पुरानी भाषा बोलते थे जो कि संस्कृत या ज़िन्द के भी पहिले की है। इसके पहिले धर्म के झगड़ों ने उन्हें अलग कर दिया। देवों के पूजने वाले अर्थात् हिन्दू लोग पंजाब में रहे और असुरों की पूजा करने वाले अर्थात् ईरानी लोग फ़ारस को गए।

इन्हीं देवों के पूजने वाले हिन्दू आर्यों ने वे सूक्त बनाए हैं जिन्हें ऋग्वेद कहते हैं। हम यहां पर इस पुराने ग्रन्थ के बारे में दो चार बातें कहेंगे। शायद किसी जाति के साहित्य में ऐसा मनोहर या शिक्षा देने वाला और ऐसा अपूर्व दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इस पुराने ग्रन्थ का बहुतही पुराना होना, इसमें आर्य लोगों की सब से पहिले की सभ्यता का जो चित्र खींचा है और इससे सब आर्य जातियों के धर्म और गढ़ी हुई कथाओं के बारे में जो बातें मालूम होती हैं, इन सब बातों के कारणों से ऋग्वेद बहुत ही मनोरंजक है।

लेकिन यह ग्रन्थ इससे भी ज्यादे काम का है और इससे और भी अधिक गूढ़ बातें मालूम होती हैं। इस ग्रन्थ से मनुष्य जाति के दार्शनिक इतिहास जानने वालों को मालूम होता है कि धर्म सम्बन्धी विश्वास और विचार किस तरह पर पैदा हुए। इस से मालूम होता है कि मनुष्य का मन पहिले उन चीजों की पूजा किस तरह से करने लगता है जो कि सृष्टि में उत्तम और श्रेष्ठ हों और जो बलवान और अचम्भे की हों। कम सुधी जातियों में धर्म रोगों और बुराइयों के डर से पैदा होता था, क्योंकि इनके चित्त पर उसका सब से ज्यादा असर पड़ता है। पर आर्य लोगों में सृष्टि के सब से ज्यादा मनोहर और सुन्दर दृश्यों ने, जैसे साफ़ आसमान, खिला हुआ सवेरा, ऊगते हुए सूर्य और दहकती हुई आग ने, सब से ज्यादा असर पैदा किया

और उन लोगों ने कृतज्ञता से इन की प्रशंसा और पूजा के गीत बनाए। यही ऋग्वेद संहिता है। आर्यों के धर्म का सब से पहिला रूप जो हमलोगों को मालूम है यही है।

पर ऋग्वेद से इससे भी ज्यादा बातें मालूम होती हैं। उससे जाना जाता है कि मन सृष्टि से हटकर फिर सृष्टि के देवता की ओर कैसे जाता है। ऋग्वेद के ऋषी लोग सृष्टि के दृश्यों का पूजन करके सदा सन्तुष्ट नहीं हुए। वे कभी कभी इससे भी ऊंचे और गूढ़ विचारों की ओर गए और यह विचारने लगे कि ये सब चीजें (सूर्य आकाश, आंधी और बिजली) सिर्फ उसी एक के काम हैं जो कि अगम और अगोचर है।

जब कि ऋग्वेद मनुष्य जाति के इतिहास जानने वालों के इतने काम का है तो वह आर्य जाति के इतिहास जानने वालों के लिये तो जरूर ही इसे भी ज्यादा काम का है। वह आर्यों का सब से पुराना ग्रन्थ है और उसमें आर्यों की सब से पुरानी सभ्यता का हाल मिलता है। साथही इस के जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं संसार भर की आर्य जातियों के धर्म और गढ़ी हुई कथाओं की जो बातें समझ में नहीं आतीं वे इस ग्रन्थ से मालूम होजाती है। यहां पर इस बात का उदाहरण देकर साबित करना हमारे काम के बाहर बात होगी, लेकिन कुछ बातें इतनी अच्छी तरह से लोगों को मालूम है कि हमारे विचारों को साबित करने के लिये उन बातों के इशारा कर देने की जरूरत होगी।

जिउस वा जुपिटर वही है जो कि वेद का 'द्यु' या आकाश। डेफ़ने और एथिना शायद वेद के 'दहना' और 'अहना' अर्थात् प्रभात हैं। युरेनस वरुण या आकाश है और प्रोमेथिअस शायद वेद का 'प्रमन्थ' अर्थात् वह अग्नि है जो रगड़ से पैदा होती है।

हिन्दुओं के लिये ऋग्वेद और भी ज्यादा काम का ग्रन्थ है। हिन्दू धर्म में आगे चल कर जो, जो बातें गढ़ी गई वे सब उससे मालूम हो जाती हैं और पुराणों का उलझन भी उससे साफ़ हो जाता है। उससे हिन्दू हृदय की सबसे पहिली दशा का इतिहास मालूम होता है। हिन्दुओं को इस पुराने और अनमोल ग्रन्थ से मालूम होता है कि परम पालक विष्णु और उनके तीन पद से जिन्हों

ने सब सृष्टि को छेंक लिया है मतलब है उदय होते हुए, शिरोबिन्दु पर, और अस्त होते हुए सूर्य से। परम नाशक भयानक देवता रुद्र से पहिले पहिल बिजली या उस बादल से मतलब था जिससे बिजली पैदा होती है और सृष्टि रचने वाले ब्रह्मा से असल में स्तुति या स्तुति के देवता से मतलब है।

ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं जिनमें दस हजार से ज़्यादा रिचायें हैं। बहुत करके ये सूक्त सरल हैं और इनसे उन देवताओं में बालकों की नाईं सरल विश्वास झलकता है जिन्हें बलि दिया जाता था, सोम रस चढ़ाया जाता था और जिनसे सन्तान, पशु और धन के लिये स्तुति की जाती थी और पंजाब के काले आदिवासियों के साथ जो अब तक लड़ाई होती थी उसमें आर्यों की मदद करने के लिये प्रार्थना की जाती थी।

ऋग्वेद के सूक्त १० मंडलों में बंटे हैं। कहा जाता है कि पहिले और अन्त के मंडलों को छोड़ कर बाकी जो आठ मंडल हैं उनमें से हर एक को एक एक ऋषी (अर्थात् उपदेश करने वालों के एक एक घराने) ने बनाया है। जैसे दूसरे मंडल को गृत्समद ने, तीसरे को विश्वामित्र ने, चौथे को बामदेव ने, पांचवें को अत्रि ने, छठे को भारद्वाज ने, सातवें को वसिष्ठ ने, आठवें को कण्व ने और नवें को अङ्गिरा ने, बनाया है। पहिले मंडल में १६१ सूक्त हैं जिन में से कुछ सूक्तों को छोड़ कर और सबको पन्द्रह ऋषियों ने बनाया है। दसवें मंडल में भी १९१ सूक्त हैं और इनके बनाने वाले प्रायः कल्पित हैं।

ऋग्वेद के सूक्तों को कई सौ वर्ष तक पुत्र अपने पिता से या चेले अपने गुरु से सीखते चले आए। लेकिन उनका सिलसिले वार संग्रह बहुत पीछे अर्थात् पौराणिक काल में हुआ। दसवें मंडल का सब अथवा बहुत सा हिस्सा इसी काल का बना हुआ जान पड़ता है, जो कि पुराने सूक्तों में मिला कर रक्षित रक्खा गया।

ऋग्वेद का क्रम और संग्रह जैसा कि वह अब है पौराणिक काल में समाप्त हो गया होगा। ऐतरेय आरण्यक (२,२) में मण्डलों के क्रम से ऋग्वेद के ऋषियों के नाम की कल्पित उत्पत्ति दी है

और इसके पीछे सूक्तों की, ऋक् की, अर्द्धऋक् की, पद की और अक्षरों तक की गिनती दी है। इससे जान पड़ता है कि पौराणिक काल में ऋग्वेद संहिता का मंडल मंडल करके केवल क्रम ही नहीं कर लिया गया वरन् सावधानी से उसका भाग उपभाग भी कर लिया गया था।

पौराणिक काल के अन्त तक ऋग्वेद की हर एक रिचा, हर एक शब्द और हर एक अक्षर तक की गिनती कर ली गई थी। इस गिनती के हिसाब से रिचाओं की संख्या १०४०२ से लेकर १०६२२ तक, शब्दों की संख्या १५३८२६ और अक्षरों की ४३२,००० है।

अध्याय २ ।

——:o:——

खेती, चराई और व्यापार ।

आज कल के हिन्दुओं की नाई पुराने हिन्दुओं का भी प्रधान काम खेती था। और, जैसी कि आशा की जा सकती है, ऋग्वेद में बहुत सी जगहों से इसका हाल झलकता है। 'आर्य' शब्दही, जिस नाम से कि आर्यावर्त के जीतने वाले लोग अपने को वहां के पुराने रहने वालों अर्थात् दासों से अलग करते थे, उसी की उत्पत्ति एक ऐसे शब्द से कही जाती है जिसका अर्थ 'खेती करना' है। प्रोफ़ेसर मेक्समूलर का मत है कि इसी शब्द के चिन्ह ईरान वा फ़ारस से लेकर एरिन वा आयरलेंड तक बहुत से आर्यदेशों के नामों में मिलते हैं। वे कहते हैं कि आर्यलोगों ने अपनी सब से पहिली रहने की जगह में इस शब्द को खेती में अपनी प्रीति दिखलाने के लिये और उन घुमन्तू तूरानियों से (जिनका नाम, विश्वास किया जाता है कि, उनकी शीघ्र यात्रा और उनके घोड़ों की तेजी ज़ाहिर करता है) अपने को अलग करने के लिये, गढ़ा। चाहे जो हो पर इसमें तो सन्देह नहीं है कि ऋग्वेद में 'आर्य' ही एक शब्द है जिससे जीतने वाली जाति यहां के असिल पुराने रहने वालों से अलग समझी जाती थी। साथ ही इसके बहुत से ऐसे वाक्य भी पाए जाते हैं जिनसे जान पड़ता है कि यहां के नए रहने वाले लोग अपने को 'आर्य' पुकारने में इस शब्द के मतलब को बिलकुल भूल नहीं गए थे। हम यहां पर इसका एक उदाहरण दे देते हैं जो कि काफ़ी होगा।

"हे दोनों अश्विने! तुमने आर्यों को हल जोतना और बीज बोना सिखा कर और अनाज पैदा करने के लिये वृष्टि देकर और अपनी बिजली से दस्यु का नाश करके अपना प्रताप दिखलाया है।" (१,११७,२१)

ऋग्वेद में दो और शब्द मिलते हैं जिनका अर्थ 'आर्य जाति' से नहीं बल्कि सब मनुष्यों से है। ये शब्द 'चर्षन' और 'कृष्टि' हैं और ये दोनों शब्द एक ही शब्द भंडार के रूप भेद 'कृष्' या 'चृष' से बने हैं।

इस तरह आर्यावर्त के जीतने वाले आर्य अपने को जिस नाम से पुकारते थे खुद वही नाम उस लाभदायक काम अर्थात् खेती को ज़ाहिर करता है जिससे कि सभ्य लोग असभ्यों से अलग समझे जाते थे।

ऋग्वेद में बहुत सी जगहों से खेती का हाल साफ झलकता है। पर उनमें से एक सूक्त सब से अच्छा है जिसमें खेती के एक कल्पित देवता "क्षेत्रपति" की स्तुति है और जिसका पूरा पूरा अनुवाद हम नीचे देते हैं।

"(१) हम लोग इस खेत को "क्षेत्रपति" की मदद से जोतेंगे (बोएंगे)। वह हमारे जानवरों और घोड़ों की रक्षा करके हमें सुखी करे।

"(२) हे क्षेत्रपति! जिस तरह गाएं दूध देती हैं उसी तरह के मीठे, साफ़, घृत की तरह, अच्छे स्वाद की बहुत सी बरसात हम लोगों को दें। पानी के देवता हम लोगों को सुखी करें।

"(३) पेड़ हमारे लिये मीठे हों। आकाश, वर्षा और अंतरिक्ष मिठास से भरे हों। क्षेत्रपति हम लोगों पर दयालु हों और हम लोग उनका अनुगमन शत्रुओं से बिना सताए आकर करेंगे।

"(४) बैल आनन्द से काम करें, मनुष्य आनन्द से काम करें, हल आनन्द से चले। जोत को आनन्द से बांधो और पैने को आनन्द से चलाओ।

"(५) हे शुन और हे सीर! इस सूक्त को स्वीकार कीजिए। जो मेह आपने आकाश में बनाया है उससे इस पृथ्वी को सींचिए।

"(६) हे सुभग सीते! आगे बढ़ो, हम लोग तुझ से विनती करते हैं। हम लोगों को धन और अच्छी फ़सिल दे।

"(७) इन्द्र इस सीता को स्वीकार करें। पूषन उसे आगे

बढ़ावें। वह पानी से भर जाय और हम लोगों को हर साल अनाज दें। *

"(८) हल के फाल जमीन को आनन्द से खोदें। मनुष्य बैलों के पीछे आनन्द से चलें। पर्जन्य पृथ्वी को मीठे मेह से तर करें। हे शुन और सीर! हम लोगों को सुखी करो।" (४, ५७)

अहा! इसमें सीधे सादे किसानों की विनीत आशाएं और इच्छाएं कैसी अच्छी तरह से वर्णन की गई हैं, ऐसे वाक्य पीछे के समय की संस्कृत की पुस्तकों में कहीं नहीं पाए जाते। ऋग्वेद में यही अपूर्वता है। ऋग्वेद के सूक्तों में चाहे आदिम-वासियों के साथ लड़ाई का वर्णन हो, चाहे इन्द्र से एक प्याला सोम अङ्गीकार करने की प्रार्थना हो और चाहे सीधे सादे किसानों का गीत हो, लेकिन उनमें सब जगह हम लोगों को सीधे सादे वीरों के काम मिलते हैं जो कि पीछे के समय की पुस्तकों में नहीं पाए जाते।

हम यहां एक दूसरे सूक्त का अनुवाद, जिसका सम्बन्ध भी खेती से है, देते हैं—

"(३) हलों को बांधो, जूओं को फैलाओ, और इस तयार की हुई भूमि पर बीज बोओ। अनाज हमलोगों के सूक्तों के साथ बढ़े। आस पास के उन खेतों में हंसुए चलें जहां कि अनाज पक गया है।

---

* इन दोनों रिचाओं में सीता अर्थात् किआरी एक स्त्री की तरह मानी गई है और उससे बहुतायत से फ़सिल देने की मिन्नत की गई है। यजुर्वेद में भी सीता की इसी तरह से पूजा की गई है। जब आर्य लोगों ने धीरे धीरे करके सारे भारतवर्ष को जीत लिया और जब पहिले के जंगलों और उजाड़ भूमियों में भी किआरियां बनाई गई तो किआरी या सीता ने और भी अधिक मनुष्य का रूप धारण किया और वह उस बड़े महाकाव्य की नायिका बनाई गई जिसमें कि आर्यों के दक्षिणी भारतवर्ष के जीतने का वर्णन है।

"(४) हल बांध दिए गए हैं। मजदूरों ने जूए फैला दिए हैं। बुद्धिमान लोग देवताओं की प्रार्थना कर रहे हैं।

"(५) जानवरों के पीने के लिये कठड़ा तयार करो, चमड़े की रस्सी बांधो और हमलोग इस गहिरे और अच्छे कुएं से जो कभी सूखता नहीं, जल निकालें।

"(६) जानवरों के लिये कठड़े तयार हो गए हैं। गहिरे अच्छे और कभी न सूखने वाले कुएं में चमड़े की रस्सी चमक रही है और पानी सहज में निकल रहा है। कुएं में से पानी निकालो।

"(७) घोड़ों को ठंढा करो। खेत में ढेरी लगाए हुए अनाज को उठाओ और एक गाड़ी बनाओ जिसमें कि वह सहज में आ-सके। यह कुआं जो कि जानवरों के पानी पीने के लिये पानी से भरा हुआ है, विस्तार में एक द्रोण है और उसमें एक पत्थर का चक्र है। और मनुष्यों के पीने का कुंड एक स्कन्द है। इसे पानी से भरो"। (१०,१०१)

पंजाब में सिंचाई और खेती सिर्फ कुओं ही से हो सकती है। मनुष्यों और जानवरों के पीने के लिये जल भी कुओं ही से मिलता है। इसी लिये ऋग्वेद में कुओं का जो उल्लेख मिलता है वह कोई आश्चर्य की बात नहीं। दूसरी बात जो ऊपर के अनुवाद से जान-पड़ती है, यह है कि उस समय खेती में घोड़े काम में लाए जाते थे। यह चाल आज कल भारतवर्ष से उठगई है, पर योरप में अब तक भी यह रीत पाई जाती है।

मंडल १० सूक्त २५ रिचा ४ से और कई दूसरे स्थानों से कुओं का हाल जाना जाता है। म० १० सू० ९३ रि० १३ में लिखा गया है कि सिंचाई के लिये कुएं से पानी किस तरह निकाला जाता था। इसकी रीति वही थी जो कि उत्तरी भारतवर्ष में अब तक पाई जाती है, अर्थात् एक रस्से में कई घड़े बांध दिए जाते थे। ये घड़े एक चक्कर से ढीले और खींचे जाते थे। इन्हें कुओं में से भर कर ऊपर खींच लेते थे और तब उनका पानी उझल कर उन्हें कुओं में फिर ढील देते थे। इस को 'घटिचक्र' कहते थे और अब तक भी कहते हैं।

मं० १० सू० ९९ रि० ४ से दूसरा पता नालियों से खेती की

सिंचाई का लगता है। इन नालियों में 'द्रोण' से पानी भरा जाता था। म० १२ सू० ६८ रि० १ में लिखा है कि खेतों की सिंचाई करने वाले किसान लोग बड़ा हल्ला करके चिड़ियों को खेतों से दूर रखते थे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है चरागाहों के उल्लेख उतने नहीं पाए जाते जितने कि खेतों के। गंड़ेरियों का देवता पूषण था और वे लोग उसे सूर्य समझते थे और यह बिचार करते थे कि वह भ्रमण करने में उन लोगों की तथा और सब मुसाफिरों की रक्षा करता है। पूषण की स्तुति के सूक्तों में कहीं कहीं देखने में आता है कि आर्यावर्त के आर्यलोग अपने साथ उन भ्रमणों की यादगार और गीत भी लेते आये थे जिन्हें यद्यपि वे आर्यावर्त में बसने के पीछे चाहे न गाते हों पर अपने सब से पहिले के रहने की जगह में बहुधा गाया करते थे। हम ऐसे एक सूक्त का भी अनुवाद नीचे देते हैं—

"(१) हे पूषण! हम लोगों को अपनी यात्रा पूरी करने में मदद दे और सब आपत्तियों को दूर कर! हे बादलों के पुत्र, तू हमलोगों के आगे चल!

"(२) हे पूषण! तू हमारे रास्ते से ऐसे लोगों के दूर रख जो कि हम लोगों को बहकाने वाले हों और जो लूट मार और अनुचित काम करते हों।

"(३) तू उन दुष्ट लुटेरे को दूर कर जो यात्रा में उपद्रव करता है।

"(४) अपने पैरों के नीचे उसके अपवित्र मुर्दे को कुचल जो हमें दोनों प्रकार से लूटते (अर्थात् चोरी से और जबरदस्ती) और जो हम पर अत्याचार करते हैं।

"(५) हे बुद्धिमान पूषण, शत्रुओं के नाश करने वाले! हम तुझ से उन रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं जिनसे तू हमारे पुरखाओं को बचाता और उन्हें उत्साहित करता था।

"(६) हे पूषण, जिसकी बड़ी सम्पत्ति, जिसके सोने के अस्त्र हैं और जो जीवों में प्रधान है। हमें धन दे।

"(७) हमे मार्ग बता जिसमें वे शत्रु जो मार्ग में टूट पड़ते हैं हमें हानि न पहुंचा सकें। हमें सीधे और सुगम मार्ग से ले चल। हे पूषण, इस यात्रा में हमारी रक्षा के उपाय निकाल।

"(८) हमें ऐसे सुहावने स्थानों में ले चल जो हरी घास से भरे हों, मार्ग में अधिक गर्मी न हो। हे पूषण, इस यात्रा में हमारी रक्षा के उपाय निकाल।

"(९) रक्षा करने में शक्तिमान हो, हमें धनसम्पन्न कर, हमें सम्पत्ति दे, हमें मज़बूत बना और भोजन दे, इस यात्रा में हमारी रक्षा के उपाय निकाल।

"(१०) हम पूषण को दोष नहीं लगाते पर सूक्तों से उनकी प्रशंसा करते हैं। हम सुन्दर पूषण से धन मांगते हैं।" (१,४२)

एक दूसरा बहुतही अच्छा सूक्त जानवरों को चराई को ले जाने और उन्हें घर वापस ले आने के बारे में है, जिसकी कुछ रिचाएं भी अनुवाद करने योग्य हैं—

"(४) हम आभीर को बुलाते हैं, वह गौओं को ले जाय, उन्हें खेतों में चराए, वह जानवरों को पहिचाने और उन्हें चुन सके। वह उन्हें घर लौटा लावे। वह उन्हें सब ओर चरावे।

"(५) आभीर गौओं को खोजता है और उन्हें घर लौटा लाता है। वह उन्हें सब ओर चराता है। वह घर सकुशल लौट आवे।

"(८) हे आभीर, गौओं को अब और चरावो और उन्हें लौटा लाओ। पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में उन्हें चराओ और तब उन्हें लौटा लाओ" (१०,१९)

ऊपर के वचनों में उन लुटेरों का हाल भी पाया जाता है जो देश के बाहरी हिस्सों में रहते थे। ये लोग कदाचित् यहां के पुराने रहने वालों में से चोर और पशु उठा ले जाने वाले थे जो आर्यों के गांव आदि के आस पास ताक झांक लगाए रहते थे और अनाज आदि को रास्ते में लूट कर अपना जीवन बिताते थे। हम इन लोगों का विस्तार पूर्वक वर्णन आगे चल कर करेंगे।

देवताओं के सूक्तों में वाणिज्य का वर्णन ज़रूर ही बहुत कम

होना चाहिए पर फिर भी उनमें कहीं कहीं पर ऐसे वचन मिलते हैं जो उस समय की चाल ढाल का अपूर्व वर्णन देकर हम लोगों को आश्चर्य में डालते हैं। उधार देना और व्याज खाना उस समय अच्छी तरह से मालूम था और ऋषी लोगों ने (याद रखना चाहिए कि ये ऋषी उस समय गृहस्थ थे, योगी या संसार त्यागी नहीं थे) उस पुराने समय की सिधाई से अपने ऋण की दशा पर प्रायः शोक दिखलाया है। एक दूसरी अद्भुत रिचा से हम लोगों को जान पड़ता है कि जब कोई चीज एक बार बेंच दी जाती थी तो वह बिक्री सदा के लिये पक्की समझी जाती थी—

"कोई मनुष्य बहुत सी चीज थोड़े दाम पर बेच डालता है और तब वह खरीदने वाले के यहां जाकर बिक्री को अस्वीकार करता और अधिक दाम मांगने लगता है। पर एक बार जो दाम तै हो गया उससे अधिक वह यह कह कर नहीं ले सकता कि मैंने थोड़े दाम में बहुत सी चीज दी है। चाहे दाम कम हो या अधिक पर जो बेंचने के समय तै हो गया वही ठीक है।" (४,२४,९)

ऐसे ही ऐसे वचनों से यह भी जान पड़ता है कि उस समय खरीदने और बेचने के लिये सोने का सिक्का भी जारी था। (मं० ५ सू० २७ रि० २ आदि स्थानों पर) ऋषियों के एक सौ सोने का सिक्का पाने के उदाहरण मिलते हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी एक बंधे हुए दाम के सोने के टुकड़े सिक्के की तरह पर काम में लाए जाते थे, जैसा कि इन वाक्यों से जाना जाता था। साथ ही इसके यह भी मानना चाहिए कि ऋग्वेद में सिक्के का हाल साफ़ तरह पर कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद में (म० १ सू० १२६ रि० २) 'निष्क' शब्द कई जगह पर संदिग्ध अर्थ में आया है। कहीं कहीं पर उसका अर्थ 'सिक्का' है और कहीं कहीं पर 'गले का एक सोने का गहिना'। यह न समझना चाहिए कि ये दोनों अर्थ जरूर एक दूसरे के उलटे होंगे, क्योंकि आर्यावर्त में बहुत पहिले के समय से सोने के सिक्के बराबर गले के गहिनों के काम में लाए जाते हैं।

ऋग्वेद में समुद्र की यात्रा का भी वर्णन साफ़ तरह पर मिलता

है-पर उनमें जो शब्द आए हैं उनका अर्थ 'समुद्र' न होकर केवल 'नदी' भी हो सकता है-म० १ सू० ११६ रि० ३ आदि स्थानों में भुज्यु के जहाज डूब जाने का और अश्विन देवताओं के उसे बचाने का वर्णन भी पाया जाता है और म० १ सू० २५ रि० ७ में लिखा है कि वरुण देवता आकाश में चिड़ियों का रास्ता और समुद्र में जहाजों का मार्ग जानते हैं। म० ४ सू० ५५ रि० ६ में कवि धन कमाने की इच्छा रखने वाले उन मनुष्यों का वर्णन करता है जो जलयात्रा करने के पहिले समुद्र की स्तुति करते हैं। म० ७ सू० ८८ रि० ३ में वशिष्ठ कहते हैं—

"जब वरुण और मैं नाव पर चढ़ कर समुद्र में गए तो मैं उस नाव पर रहा जो पानी पर तैरती थी और मैं उसमें सुखी था। मैं आनन्द से (लहरों पर) इधर उधर हिलता था।"

ऋग्वेद में समुद्र यात्रा के ऐसे ऐसे बहुत से साफ़ वर्णन मिलते हैं पर उसमें इसकी मनाही कहीं पर भी नहीं पाई जाती।

अध्याय ३

——:o:——

भोजन, कपड़े और शान्ति के व्यवसाय।

जौं और गेहूं खेत की ख़ास पैदावार और भोजन की ख़ास वस्तु जान पड़ती है। ऋग्वेद में अनाज के जो नाम मिलते हैं वे कुछ सन्देह उत्पन्न करने वाले हैं क्योंकि पुराने समय में उनका जो अर्थ था वह आज कल बदल गया है। आज कल संस्कृत में 'यव' शब्द का अर्थ केवल 'जौं' है पर वेद में इसी शब्द का मतलब गेहूं और जौं से लेकर अन्न मात्र से है। इसी तरह आज कल 'धान' शब्द का अर्थ, कम से कम बङ्गाल में, चावल से है पर ऋग्वेद में यह शब्द भुने हुए जौं के लिये आया है, जो कि भोजन के काम में आता था और देवताओं को भी चढ़ाया जाता था। ऋग्वेद में व्रीहि (चावल) का कहीं उल्लेख नहीं है।

हम लोगों को इन्हीं अनाजों की बनी हुई कई तरह की रोटियों का भी वर्णन मिलता है जो कि खाई जाती थीं और देवताओं को भी चढ़ाई जाती थीं। 'पक्ति' (पच्=पकाना) का अर्थ है 'पकी हुई रोटी'। इसके सिवाय कई दूसरे शब्द, जैसे पुरोडास, 'अपूप' और 'करम्भ' आदि भी (म० ३ सू० ५२ रि० १ और २; म० ४ सू० २४ रि०७ आदि में) पाए जाते हैं।

यह बात बहुत सहज में विचारी जा सकती है कि पंजाब के पुराने हिन्दू लोग विशेष करके मांस आदि खाते थे। हम लोगों को गाऊ, भैंसे और बैलों को बलि चढ़ा कर पकाए जाने का कई जगह वर्णन मिलता है (म० १ सू० ६१ रि० १२; म० २ सू० ७ रि० ५; म० ५ सू० २६ रि० ७ और ८; म० ६ सू० १७ रि० ११; म० ६ सू० १६ रि० ४७; म० ८ सू० २८ रि० ४; म० १० सू० २७ रि० २; म० १० सू० २८ रि० ३ आदि)

म० १० सू० ८९ रि० १४ में ऐसी जगह का वर्णन है जहां गो-मेध किया जाता था और म० १० सू० ६१ रि० १४ में घोड़ों, बैलों और भेड़ों के बलिदान का वर्णन है। घोड़ों के बलिदान का उल्लेख बहुत कम आया है जिससे ज्ञात पड़ता है कि यद्यपि पुराने आर्य लोग यह चाल अपने पहिले रहने की जगह से आर्यावर्त में ले आए थे पर घोड़े के मांस खाने की यह चाल यहां पर बहुत जल्दी उठ गई। यहां पर पीछे के समय में तो घोड़े का बलिदान अर्थात् 'अश्वमेध' विरलेही कभी होता था। अर्थात् जब कोई बड़ा प्रतापी राजा अपने आस पास के सब राजाओं को जीत कर सम्राट की पदवी लेता था उस समय वह बड़ी धूम धाम से अश्वमेध करता था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजाओं की यह बड़ी रसम उसी पुराने समय की घोड़ों के मारने की सीधी सादी चाल से निकली है जबकि घोड़े का मांस खाया जाता था। पीछे के समय में अश्वमेध जिस धूम धाम और कुछ जघन्य रीतियों के साथ किया जाता था वे सब बातें वैदिक समय में नहीं थीं।

वैदिक समय में घोड़ों के मारने का पूरा हाल ऋग्वेद के पहिले मंडल के १६२ वें सूक्त में पाया जाता है। घोड़े की देह पर बेंत से निशान किया जाता था और फिर वह इसी निशान की हुई लकीर पर से काटा जाता था। उसकी पसलियां और सब अंग अलग अलग कर दिए जाते थे। फिर उसका मांस सेंक कर उबाला जाता था और यह समझा जाता था कि घोड़ा देवताओं को पहुंच गया।

यह कौन विश्वास कर सकता था कि ऋग्वेद का सीधा सादा अश्ववध अर्थात् पूजा और भोजन के लिये घोड़े की बोटी बोटी काट कर और उसे सेंक कर उबालने की रीति आगे चल कर इतनी बढ़ जायगी और अन्त में राजाओं का अश्वमेध हो जायगी? पर वेद की बहुत सी सीधी सादी और स्वाभाविक बातें पीछे के समय में इसी तरह से बढ़ कर विविध विधानों की बड़ी बड़ी रीतें हो गई हैं। वेद के बहुत से रूपकों के जो कि सृष्टि के अद्भुत दृश्यों के विषय में हैं, पुराणों में बड़ी लम्बी चौड़ी कथाओं का रूप धारण

किया है। वेद की सच्ची प्रतिष्ठा इसी में है कि उससे हम लोगों को हिन्दुओं की रीति व्यवहार की और साथ ही उनके धर्म की उत्पत्ति का पता लगता है।

ऐसा जान पड़ता है कि वैदिक समय में नशे की पीने वाली चीज केवल एक मात्र सोम वृक्ष का उबला हुआ रस ही था। पुराने आर्य लोगों को इसका इतना व्यसन था कि आर्यावर्त और ईरान में (ईरान में 'हओम' के नाम से) जल्दी ही इसकी पूजा देवता की नाईं होने लगी और ऋग्वेद के एक पूरे मंडल में इस देवता ही का वर्णन है। जान पड़ता है कि हिन्दू-आर्य लोगों को उनके शान्त ईरानी भाइयों की अपेक्षा इस सोम मदिरा का अधिक व्यसन था। जंदवस्था में हिन्दुओं की इस बुरी लत का कई जगह उल्लेख है। पुरानी बातों की खोज करने वाले बहुत से विद्वानों का यह भी मत है कि दक्षिणी आर्यों में बिगाड़ हो कर हिन्दुओं और ईरानियों के जुदे हो जाने का एक बड़ा भारी कारण यह सोम पान भी है।

सोमरस जिस तरह से बनाया जाता था उसका पूरा ब्योरा म० ६ सू० ६६ और दूसरे कई सूक्तों में भी दिया है। हम यहां इस सूक्त की कुछ रिचाओं का अनुवाद देते हैं—

"(७) हे सोम! तुम कुचले गए हो। तुम चारों ओर खुशी फैलाते हुए, इन्द्र के लिये नदी की नाईं बहते हो। तुम अक्षय आहार देते हो।

"(८) सात स्त्रियां तुम्हारा गीत गाती हुई, अपनी अंगुलियों से तुम्हें हिलाती हैं। तुम यज्ञ करने वाले को यज्ञ में उसके कर्मों का स्मरण दिलाते हो।

"(९) तुम खुश करने वाली आवाज़ से पानी में मिलते हो। और अंगुलियां तुम्हें एक ऊनी छनने के ऊपर हिलाकर छानती हैं। तब तुम्हारे छींटे उड़ते हैं और ऊनी छनने में से आवाज निकलती है।

"(११) ऊनी छन्ना एक बर्तन पर रक्खा जाता है और अंगुलियां सोम को बराबर हिलाती रहती हैं, जिससे एक मीठी धार बर्तन में गिरती है।

"(१३) हे सोम ! तब तुम दूध में मिलाए जाते हो। पानी तुम्हारी ओर खुश करने वाली आवाज़ के साथ जाता है।"

इस वर्णन से जान पड़ता है कि सोम रस दूध के साथ मिला कर पिया जाता था, जिस तरह आज कल भांग पी जाती है। ऋग्वेद के कवि लोग सोम के गुणों और उसकी आनन्द देनेवाली शक्ति का वर्णन करते करते मारे खुशी के उन्मत्त हो जाते हैं। उन के कुछ वर्णनों ने आगे के समय में चल कर पुराणों में अजीब कथाओं का रूप धारण किया है। इस बात का उदाहरण देकर समझाने के लिये दो एक रिचाएं बहुत होंगी—

"हे सोम! तेरे समान दिव्य कोई चीज नहीं हैं। जब तू गिराया जाता है तो तू सब देवताओं को अमरत्व देने के लिये निमंत्रित करता है। (६,१०८,३)

"प्रशंसा के योग्य सोम पुराने समय से देवताओं के पीने के काम में चला आता है। वह आकाश के गुप्त स्थानों से निकाला गया है। वह इन्द्र के लिये बनाया गया और उसकी प्रशंसा हुई। (६,११०,८)

"हे सोम जिस लोक में अक्षय ज्योति होती है और जहां स्वर्ग स्थित है उसी अमर और मरण विहीन लोक में तू मुझे ले चल! तू इन्द्र के लिये बह।" (६,११३,७)

ऐसे ऐसे वाक्य ऋग्वेद के नौवें मण्डल भर में पाए जाते हैं। यह कौन अनुमान कर सकता था कि समुद्र मथ कर उसमें से अमृत के निकलने की अजीब पौराणिक कथाएं सोम के इन्हीं वेद के सीधे सादे वर्णनों से निकली होंगी। वेद में आकाश जलमय समझा गया है और इसीलिये वह अक्सर समुद्र के अर्थ में भी आया है। सोम के आकाश में से मिलने का अर्थ पुराण में अमृत के लिये समुद्र का मथना किया गया है।

ऋग्वेद के बहुत से वाक्यों से जाना जाता है कि उस समय बहुत सी शिल्पविद्याओं की बहुत अच्छी उन्नति होगई थी। कपड़ा बुनना जरूर ही बहुत अच्छी तरह से मालूम हो चुका था और

स्त्रियों की निपुण उंगलियां पुराने समय में भी ताना बाना बुनना वैसाही जानती थीं जैसा कि आज कल लोग जानते हैं (म० २ सू० ३ रि० ६; म० २ सू० ३८ रि० ४ आदि) । एक अपूर्व पद में (म०६ सू० ९ रि० २) एक ऋषी अपने धर्म के क्रिया कर्म्मों के गूढ़ अर्थ को न जानने को इस तरह वर्णन करता है कि "मैं धर्म के क्रिया कर्म्मों के तानं और बाने नहीं जानता।" एक दूसरी जगह (म० १० सू० २६ रि० ६) ऊन बुनने और उसके रङ्ग उड़ाने का देवता पूषण कहा गया है, जिसे हम ऊपर दिखला चुके हैं कि चरवाहों का देवता है ।

आज कल की तरह सम्भवतः उस समय में भी आर्यों के हरएक गाँव में एक नाई होता था । एक जगह पर (म० १ सू० १६४ रि० ४४ में) आग लगा कर जंगल के साफ़ करने को 'पृथ्वी का मुंडन करना' कहा गया है । बढ़ई का काम भी बहुत अच्छी तरह मालूम था और छकड़े और रथ बनाए जाने का हाल कई जगह मिलता है (म० ३ सू० ५३ रि० १९; म० ४ सू० २ रि० १४; म० ४ सू० १६ रि० २० इत्यादि) लोहे, सोने और दूसरी धातुओं का व्यवहार भी अच्छी तरह से मालूम था । म० ५ सू० रि० ५ में एक लोहार के काम का उल्लेख और म० ६ सू० ३ रि० ४ में सोनारों के सोना गलाने का वर्णन मिलता है ।

पर वैदिक समय की धातुओं के व्यापार का इससे भी ज़्यादा हाल हमलोगों को उन सब सोने के गहनों और लोहे के बर्तनों और हथियारों से मालूम होता है जिनका हाल सारे ऋग्वेद में पाया जाता है । इनका हाल अनगिनती जगहों पर आया है । इस लिये हम यहां सिर्फ उतने ही का वर्णन कर सकते हैं जितने से कि हम लोगों को उस समय की बनी हुई चीज़ों का साधारण ज्ञान हो जाय । म० १ सू० १४० रि० १०; म० २ सू० ३६ रि० ४; म० ४ सू० ५३ रि० २ और कई दूसरी जगहों में लड़ाई के हथियारों का वर्णन है । म० २ सू० ३४ रि० ३ में सिर के सोनइले अस्त्र का उल्लेख है और म० ४ सू० ३४ रि० ९ में कन्धों या भुजाओं के लिये कवच का वर्णन है जिसका मतलब शायद ढाल से है ।

म० ५ सू० ५२ रि० ६ और म० ५ सू० ५४ रि० ११ में ऋष्टि को, और म० ५ सू० ५७ रि० २ में तलवार या बाण को तथा तीर धनुष और तूणीर को, बिजली की उपमा दी गई है। म० ६ सू० २७ रि० ६ में तीन हजार कवचधारी योद्धाओं का उल्लेख है; म० ६ सू० ४६ रि० ११ में तेज और चमकते हुए बाणों का वर्णन है और म० ६ सू० ४७ रि० १० में तेज धार वाली तरवारों का उल्लेख है और इसी सूक्त की २६ वीं और २७ वीं रिचाओं में लड़ाई के रथों और दुन्दुभी का भी वर्णन है और अन्त में छठे मण्डल के ७५ वें सूक्त में लड़ाई के हर्बे हथियार और साज सामान का एक उत्तेजना देने वाला वर्णन है, जिसका अनुवाद हम अपने पाठकों के लिये आगे चल कर देंगे।

म० ४ सू० २ रि० ८ में सोनहले साज के घोड़ों का उल्लेख है और म० ४ सू० ३७ रि० ४, म० ५ सू० १९, रि० ३ और दूसरे कई स्थानों पर 'निष्क,' अर्थात् गले में पहिरने के एक सोने के गहिने का उल्लेख है। म० ५ सू० ५३ रि० ४ में मरुत् के चमकीले आभूषणों को रत्न (अञ्जि), गले के गहिने (स्रक), सोनहले कवच (रुक्म) और हाथ के गहिने तथा नूपुर (खादि) की उपमा दी गई है। म० ५ सू० ५१ रि० ११ में फिर पैर के नूपुरों, छाती के कवचों और सिर के सोने के मुकुट (शिप्राः हिरणमयीः) का वर्णन है।

इस तरह पर यह बात जानी जाती है कि उस समय हर्बे हथियार और सब तरह के गहिनों आदि के बनाने में बहुत कुछ उन्नति हो गई थी। हम लोगों को (म० ६ सू० ४८ रि० १८ में) चमड़े और (म० ५ सू० ३० रि० १५ में) लोहे के बर्तनों का भी उल्लेख मिलता है। इसके सिवाय और कई जगहों पर (म० ७ सू० ३ रि० ७; म० ७ सू० १५ रि० १४, म० ७ सू० ९५ रि० १ आदि में) लोहे के नगरों आदि का भी वर्णन है, जिससे हम लोगों को बड़े मजबूत किले समझने चाहिए। (म० ४ सू० ३० रि० २० आदि कई जगहों पर पत्थर के बने हुए सैकड़ों नगरों का भी वर्णन है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय के हिन्दू लोग पथरीले और पहाड़ी देशों में भी जाकर बसे और पत्थरों को सस्ता और

टिकाऊ पाकर उन्हें घर बनाने के काम में लाने लगे। इस बात के विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती कि हिन्दुओं के बहुत से नगरों के बहुतेरे भवन और चारों ओर की दीवारें पत्थरों की थीं। हजारों खम्भों के भवनों के जो कई जगह पर (म० २ सू० ४१ रि० ५, म० ५ सू० ६२ रि० ६ आदि में) वर्णन मिलते हैं उनसे जान पड़ता है कि घर बनाने की विद्या भी उन्नति पर पहुंच गई थी। पर साथही इसके यह बात भी माननी पड़ेगी कि ऋग्वेद में संग तराशी की विद्या का कहीं पर साफ़ उल्लेख नहीं मिलता। पुरानी बातों का पता लगाने वाले लोग भी आर्यावर्त के किसी हिस्से में बौद्ध संवत के बहुत पहिले की बनी हुई कोई पत्थर की मूर्ति अब तक नहीं पासके हैं। योरप के अगणित बड़े बड़े अजायब घरों में, जो कि इजिप्ट और बेबिलन के बने हुए पुराने पत्थरों से भरे हुए हैं, भारतवर्ष के बने हुए कोई ऐसे पत्थर नहीं हैं जिनका समय बुद्ध से बहुत पहिले का हो।

आज कल के बहुत से पालतू जानवर ऋग्वेद के समय में भी आर्यावर्त में पालतू कर लिए गए थे। कई जगहों में (मं० ६ सू० ४६ रि० १३ और १४ आदि में) हम लोगों को युद्ध के घोड़ों के जोश दिलाने वाले वर्णन मिलते हैं।

वास्तव में आर्य लोग यहां के पुराने रहने वालों के साथ लड़ाई करने के लिये इन घोड़ों को इतने काम का समझते थे कि वे लोग शीघ्र ही 'दधिक्रा' के नाम से घोड़ों की पूजा करने लग गए। इस देवतुल्य पशु की जो पूजा की जाती थी उसका एक जोश दिलाने वाला वर्णन म० ६ सू० ३८ में दिया है।

म० ४ सू० ४ रि० १ में एक राजा का अपने मंत्रियों के साथ हाथी पर सवार होने का हाल है। पालतू जानवरों में से गाय, बकरे, भेड़, भैंस और कुत्तों का उल्लेख कई जगहों पर मिलता है। ये कुत्ते बोझा ढोने के काम में लाए जाते थे।

——:0:——

अध्याय ४

——:o:——

लड़ाइयां और झगड़े ।

ऊपर कहा जा चुका है कि पुराने हिन्दुओं ने सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के किनारे की उपजाऊ जमीन को पञ्जाब के पुराने रहने वालों से छीन लिया। पर इन पुराने वासियों ने अपने पुरखों की जमीन बिना युद्ध किए ही नहीं दे दी। यद्यपि वे लड़ाई के मैदान में हिन्दुओं की सभ्य सेना और वीरता के आगे नहीं ठहर सकते थे, पर फिर भी वे लोग करीब करीब सब ही हिन्दुओं की बस्ती और गांव के आस पास किलों और बनों के निकट आया जाया करते थे, हिन्दुओं को बाहर आने जाने में दुःख देते थे, उनकी घात में बैठे रह कर जभी मौका पाते थे तभी उन्हें लूट लेते थे, उनके पशु चुरा लेते थे और बड़े बड़े दल बांध कर प्रायः उन पर चढ़ाई करते थे। अतएव स्काटलेंड की गाल जातियों की तरह जिनसे सेक्सन लोगों ने उनकी उपजाऊ जमीन इसी तरह से छीन ली थी और जो कि इसी तरह से उजाड़ किलों में जाकर बसे थे, ये लोग भी अपनी दशा इस तरह वर्णन कर सकते थे—

"ये समथर उर्वरा, और यह नरमी घाटी।
रही एक दिन गेल जाति ही केरि बपौती॥
आय बिदेसी घोर-कर्म-कारी कर-बारो।
मम पुरखन सों छीनि लियो भूभाग हमारो॥
रहत कहां हम अबै? अहो देखहु तहं अडबड़।
पड़े सैल पै सैल और बीहड़ पै बीहड़॥
*   *   *   *
पथि, यहि उत्तर खंड केर परकोटे माहीं।
तू समुझत क्या कबहुँ निकरिहैं हम सब नाहीं॥

लूटन वारे कहं लूटन को ज्यौं हौं सकिहौं।
और छीनवे हेत शिकारहिं वह डांकू सौं ?
सोंह आतमा केरि ! तहां समथर पर जावत।
सैक्सन एकहु अन्न रासि खलिहान रखावत ॥
जब लौं, एकहु, दसों सहस पशुवृन्द सम्भारी।
भटकत, वहं उहि नदी तीर की भूलनवारी ॥
गेल नदी मैदान केर सभरम अधिकारी।
फेरि लेइहैं प्रवल भुजा सो (निज) पट्टीदारी ॥*

पर अभाग्यवश उन लोगों में कोई ऐसा कवि नहीं था जो हम लोगों को उनका हाल सुनाता। हम लोगों को इस हज़ारों वर्ष के युद्ध का जो कुछ हाल मिलता है वह केवल जीतने वाले हिन्दुओं ही से मिलता है। यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये विजयी लोग आदिवासियों को वैसी ही अनादर और घृणा की दृष्टि से देखते थे जैसे कि सब जीतने वाली जातियां देखती आई हैं, चाहे वे जातियां ईसा के सत्रह सौ वर्ष पहिले सिन्धु नदी के किनारे पर रही हों वा ईसा के सत्रह सौ वर्ष पीछे मिसिसिपी नदी के तट पर ! इतिहास की घटनाएं घूम फिर कर एक सी होती हैं। पञ्जाब उसी तरह अनार्य आदिवासियों से विहीन हो गया जैसा कि आज कल के समय में अमेरिका का यूनाइटेड स्टेट्स उन प्रतापी और वीर इंडियन जातियों से विहीन कर दिया गया है, जो कि उसके पुराने जंगलों के भीतर बसती, शिकार खेलती और राज्य करती थीं।

ऋग्वेद में आदिवासियों के साथ इन युद्धों के बहुत से वर्णन पाए जाते हैं। इन युद्धों का वर्णन हम स्वयम् न लिख कर यदि इन्हीं वर्णनों में से कुछ का अनुवाद कर दें तो इन अगणित वैरियों का अधिक ज्ञान हो जायगा। ये वर्णन इतने अधिक हैं कि कठिनाई केवल उनके चुनने में है।

---

* इस पद्यमय अनुवाद के लिये मैं बाबू काशीप्रसाद का अनुग्रहीत हूं।

" इन्द्र जिसका आवाहन बहुतों ने किया है और जिसके साथ उसके शीघ्रगामी सार्थी हैं, उसने अपने वज्र से पृथ्वी पर रहने वाले दस्युओं और सिम्यों का नाश करके खेतों को अपने गोरे मित्रो (आर्यों) में बांट दिया। वज्र का पति सूर्य का प्रकाश करता है और जल बरसाता है। " (१,१००,१८)।

" इन्द्र ने अपने वज्र और अपनी शक्ति से दस्युओं के देश का नाश कर दिया और अपनी इच्छा के अनुसार भ्रमण करने लगा। हे वज्री ! तू हम लोगों के सूक्तों पर ध्यान दे, दस्युओं पर अपने शस्त्र चला, और आर्यों की शक्ति और यश बढ़ा। " (१, १०३, ३)।

इसके पीछे ही के सूक्त में हम लोगों को उन आदिवासी लुटेरों का एक अद्भुत वर्णन मिलता है जो कि शिफा, अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नाम की नदियों के किनारे पर रहते थे। ये नदियां कहां हैं सो अब जाना नहीं जा सकता। ये लुटेरे अपने किलों में से निकल कर सभ्य आर्यों के गावों को उसी तरह दुःख देते थे जैसे कि हम लोगों के समय में इन आदिवासियों की एक सच्ची सन्तान, तांतिया भील, मध्य प्रदेश के सुखी गांवों को सताता था! हम इन दोनों रिचाओं का अनुवाद नीचे देते हैं—

" कुयव दूसरे के धन का पता पाकर उसे अपने काम में लाता है। वह पानी में रह कर उसे खराब करता है। उसकी दोनों स्त्रियां, जो नदी में स्नान करती हैं, शीफा नदी में डूब मरें!

" अयु पानी में एक गुप्त किले में रहता है। वह पानी की बाढ़ में आनन्द से रहता है। अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नदियों के पानी उसकी रक्षा करते है। " (१,१०४,३ और ४)।

हम कुछ वाक्य और उद्धृत करते हैं—

" इन्द्र लड़ाई में अपने आर्य पूजकों की रक्षा करता है। वह जो कि हज़ारों बार उनकी रक्षा करता है, सब लड़ाइयों में भी उनकी रक्षा करता है। जो लोग प्राणियों (आर्यों) के हित के लिये यज्ञ नहीं करते, उन्हें वह दमन करता है। शत्रुओं की काली चमड़ी को वह उधेड़ डालता है, उन्हें मार डालता और (जला

भस्म) राख कर डालता है। जो लोग हानि पहुंचाने वाले और निर्दयी हैं उन्हें वह जला डालता है।" (१,३०,८)

"हे शत्रुओं के नाश करने वाले। इन सब लुटेरों के सिर को इकट्ठा करके उन्हें अपने चौड़े पैर से कुचल डाल ! तेरा पैर चौड़ा है !

"हे इन्द्र ! इन लुटेरों का बल नष्ट कर ! उन्हें उस बड़े और घृणित खड्डे में फेंक दे।

"हे इन्द्र ! तूने ऐसे ऐसे पचास के भी तिगुने दलों का नाश किया है ! लोग तेरे इस काम की प्रशंसा करते हैं। पर तेरी शक्ति के आगे यह कुछ भी बात नहीं है।

"हे इन्द्र ! उन पिशाचों का नाश कर जो कि लाल रंग के हैं और भयानक हल्ला मचाते हैं। इन सब राक्षसों का नाश कर।" * (१,१३३,२-५)।

"हे इन्द्र ! कवि तुझ से अच्छे भोजन की प्रार्थना करता है। तूने इस पृथ्वी को दासों की शय्या (समाधि स्थान) बनाया है। इन्द्र ने अपने दान से तीनों भुवन को सुशोभित किया है। उसने राजा दर्योणि के लिये कुयवाच को मारा है।

"हे इन्द्र ! ऋषी लोग अब तक शक्ति के उस पुराने कार्य की प्रशंसा करते हैं ! तूने युद्ध का अन्त करने के लिये बहुत लुटेरों का नाश किया है, तूने देवताओं की पूजा न करने वाले शत्रुओं के नगरों को नष्ट किया है और देवताओं के न पूजने वाले वैरियों के शस्त्रों को नीचा कर दिया है।" (१,१७४,७ और ८)।

"हे अश्विनो ! उन लोगों का नाश करो जो कुत्तों की नाईं भयानक रीति से भूंक रहे हैं और हमलोगों का नाश करने के लिये आरहे हैं। उन लोगों को मारो जो हमलोगों से लड़ने की इच्छा

---

* पिशाचों और राक्षसों से कदाचित कल्पित भूतों का तात्पर्य है। परन्तु हमारा विचार यह है कि यहां पर उनका तात्पर्य आदिम निवासियों से है।

रखते हैं। तुम उन लोगों के नाश करने का उपाय जानते हो। जो लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं उनके हर एक शब्द के बदले उन्हें धन मिले। हे सत्यदेव! हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार करो।

" जगत प्रसिद्ध और दयावान इन्द्र मनुष्यों (आर्यों) पर दया रखता है। नाश करने वाले और शक्तिमान इन्द्र ने दुष्ट दास का सिर नीचे गिरा दिया है।

" वृत्र को मारने वाले और नगरों का नाश करने वाले इन्द्र ने काले दासों के झुंडों का नाश किया है और मिट्टी और जल मनु * के लिये बनाया है। वह होम करनेवाले की इच्छाओं को पूरा करे।" (२,२०,६ और ७)।

हमलोग जानते हैं कि अमेरिका जीतने वाले स्पेन देश वासियों की जीत का कारण अधिक करके उनके घोड़े ही थे, जिनको अमेरिका के आदिवासी लोग काम में लाना नहीं जानते थे और इस कारण से उन्हें डर की दृष्टि से देखते थे। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन हिन्दू आर्यों के घोड़ों ने भी आर्यावर्त के आदिवासियों में ऐसाही डर उत्पन्न किया। अतएव नीचे लिखा हुआ वर्णन जो कि दधिक्रा अर्थात् देवतुल्य युद्ध के घोड़े के सम्बन्ध में एक सूक्त का अनुवाद है, मनोरञ्जक होगा।

" जिस तरह लोग किसी कपड़ा चोरी करनेवाले चोर पर चिल्लाते और हल्ला करते हैं, उसी तरह शत्रु लोग दधिक्रा को देख कर चिल्लाते हैं! जिस तरह झपटते हुए भूखे बाज को देख कर चिड़ियां हल्ला करती हैं, उसी तरह शत्रु लोग भोजन और पशु लूटने की खोज में फिरते हुए दधिक्रा को देख कर हल्ला करते हैं।

" शत्रु लोग दधिक्रा से डरते हैं जो कि बिजली की नाईं

*यहां पर तथा अन्यत्र भी "मनु" आर्य जाति का पूर्व पुरुष कहा गया है। बहुत से स्थानों पर वह कृषिविद्या तथा अग्निपूजा का जिनके लिये कि आर्य लोग प्रसिद्ध हैं, चलाने वाला कहा गया है।

दीप्तिमान और नाश करने वाला है। जिस समय वह अपने चारो ओर के हजारों आदमियों को मार भगाता है उस समय वह जोश में आ जाता है और अधिकार के बाहर हो जाता है।" (४,३८,५ और ८)।

ऋग्वेद के अनेक वाक्यों से जाना जाता है कि कुत्स एक प्रतापी योधा और काले आदिवासियों का एक प्रबल नाश करने वाला था। मं० ४ सू० १६ में लिखा है कि इन्द्र ने कुत्स को धन देने के लिये मायावी तथा पापी दस्यु का नाश किया, उसने कुत्स की सहायता की और आप दस्यु को मारने के लिये उसके घर आया और उसने लड़ाई में पचास हजार "काले शत्रुओं" को मारा। मं० ४, सू० २८, रि० ४ से जाना जाता है कि इन्द्र ने दस्युओं को गुणहीन तथा सब मनुष्यों का घृणपात्र बनाया है। म० ४ सू० ३० रि० १५ से जाना जाता है कि इन्द्र ने एक हजार पांच सौ दासों का नाश किया।

म० ५ सू० ७० रि० ३ में; मं० ६ सू० १८ रि० ३ में; और म० ६ सू० २५ रि०२ में दस्यु लोगों वा दासों के दमन करने और नाश करने के इसी तरह के वर्णन है। म० ६ सू० ४७ रि० २० में दस्यु लोगों के रहने की एक अज्ञात जगह का विचित्र वर्णन है जो कि अनुवाद करने योग्य है—

"हे देवता लोग! हमलोग यात्रा करते हुए अपना रास्ता भूल कर ऐसी जगह आगए हैं जहां पशु नहीं चरते। यह बड़ा स्थान केवल दस्युओं को ही आश्रय देता है। हे बृहस्पति! हम लोगों को अपने पशुओं की खोज में सहायता दो। हे इन्द्र! मार्ग भूले हुए अपने पूजनेवालों को ठीक रास्ता दिखला।"

यह जान पड़ता है कि आर्य कवि लोग आदिवासी असभ्यों के चिग्घाड़ और हल्ले का वर्णन करने में बहुत ही निंदक हैं। ये सभ्य विजयी लोग यह बात कठिनता से विचार सकते थे कि ऐसी चिग्घाड़ भी भाषा होसकती है, अतएव उन्होंने इन असभ्यों को कहीं कहीं बिना भाषा का लिखा है (म० ५ सू० २६ रि० १०, आदि)।

हम दो आदिवासी लुटेरों अर्थात कुयव और अयु का हाल लिख

चुके हैं, जो कि नदियों से घिरे हुए किलों में रहते थे और गावों में रहनेवाले आर्यों को दुःख दिया करते थे। हम लोगों को कई जगह एक तीसरे आदिवासी प्रबल मुखिया का भी वर्णन मिलता है जो कि, कदाचित काला होने के कारण कृष्ण कहा गया है। उसके सम्बन्ध का वर्णन अनुवाद करने योग्य है—

"तेज कृष्ण आंशुमती के किनारे दस हजार सेना के साथ रहता था। इन्द्र अपने ज्ञान से इस चिल्लाने वाले सरदार की बात जान गया। उसने मनुष्यों (आर्यों) के हित के लिये इस लुटेरी सेना का नाश करडाला।

"इन्द्र ने कहा मैं ने तेज कृष्ण को देखा है। जिस तरह सूर्य बादलों में छिपा रहता है उसी तरह वह आंशुमती के पास वाले गुप्त स्थान में छिपा है। हे मरुत्स मेरा मनोरथ है कि तुम उससे लड़कर उसका नाश कर डालो।

"तब तेज कृष्ण आंशुमती के किनारे पर चमकता हुआ दिखाई पड़ा। इन्द्र ने बृहस्पति को अपनी सहायता के लिये साथ लेकर उस तेज और बिना देवता की सेना का नाश कर दिया"। (८, ९६,१३-१५)।

आदिवासी लोग केवल चिल्लाने वाले तथा बिना भाषा के ही नहीं लिखे गए हैं, परन्तु कई जगह पर तो वे मुशकिल से मनुष्यों की गिनती में समझे गए हैं। एक जगह पर लिखा है—

"हम लोग चारो ओर दस्यु जातियों से घिरे हुए हैं। वे यज्ञ नहीं करते, वे किसी चीज में विश्वास नहीं करते, उनकी रीति व्यवहार भिन्न हैं, वे मनुष्य नहीं हैं! हे शत्रुओं के नाश करने वाले, उन्हें मार। दास जाति का नाश कर!" (१०,२२,८)

म० १० सू० ४९ में इन्द्र कहता है कि मैंने दस्यु जाति को "आर्य" के नाम से रहित रक्खा है (रि० ३), दास जाति के नववास्तव और बृहद्रथ का नाश किया है (रि० ६) और दासों को काट कर दो टुकड़े कर डालता हूं—"उन लोगों ने इसी गति को प्राप्त होने के लिये जन्म लिया है!" (रि० ७)

वे आदिवासी जिनसे प्राचीन हिन्दू लोग बराबर युद्ध करते रहे, इस प्रकार के थे, और हिन्दू अपने असभ्य पड़ोसियों अर्थात् भारतवर्ष की भूमि के प्राथमिक अधिकारियों की इस तरह दुर्गति करते थे। यह बात भली भांति स्पष्ट है कि विजयी लोगों और पराजित लोगों में कोई प्रीति नहीं थी। विजयी लोग अपने नए जीते हुए देश में निरन्तर युद्ध करके ही अपनी रक्षा करते थे, धीरे धीरे कृषी की सीमा को बढ़ाते थे, नए नए गांव बनाते थे, प्राथमिक जंगलों में नई बस्तियां बनाते थे, और सभ्यता तथा अपने प्रताप की कीर्ति चारो ओर फैलाते थे। वे तिरस्कृत असभ्यों को पूरी घृणा की दृष्टि से देखते थे, जब कभी मौका पाते तो उनके झुंडों को मार डालते थे, अपने घोड़ों द्वारा उनकी सैन्य-पंक्तियों को कम कर देते थे, उन्हें भूकने वाले कुत्ते तथा बिना भाषा का मनुष्य कहते थे, और उन्हें मनुष्य नहीं वरन् पशु की श्रेणी में गिनते थे और समझते थे कि वे लोग मारे जानेही के लिये जन्मे हैं, उन लोगों ने इसी गति को प्राप्त होने के लिये जन्म लिया है!" परन्तु हठी असभ्य लोग भी बिना अपना बदला लिये नहीं रहते थे। यद्यपि वे हिन्दुओं की अधिक सभ्य वीरता के आगे हार जाते थे, परन्तु वे नदियों की प्रत्येक मोड़ और प्रत्येक किले के निकट लगे रहते थे, और घात में लगे रह कर पथिकों को लूटते थे, गांवों में आकर उपद्रव मचाते थे, पशुओं को मार डालते वा चुरा ले जाते थे और कभी कभी बड़े बड़े झुंडों में हिन्दुओं पर आक्रमण करते थे, वे लोग प्रत्येक इंच भूमि देने के पहिले उस कठोर दृढ़ता के साथ लड़ते थे जोकि असभ्य जातियों का विशेष गुण है। वे विजयी लोगों के धर्म कर्म में बाधा डालते थे, उनके देवताओं का अनादर करते थे, तथा उनका धन लूट लेते थे। परन्तु इन सब बाधाओं के होते भी, सभ्य जातियों की नई बस्तियां चारो ओर बढ़ती ही गई, सभ्यता का क्षेत्र फैलता ही गया, जंगल और मरु भूमियों में खेती होने लगी, गांव और नगर बनते गए, और पंजाब भर में प्राचीन हिन्दुओं का राज्य हो गया। असभ्य जातियां या तो निर्मूल ही कर दी गई और या आर्य सभ्यता की बढ़ती हुई

सेना से भाग कर उन पहाड़ियों और दुर्गों में जा बसीं, जहां कि उनके सन्तान अब तक हैं।

यह कल्पना की जा सकती है कि निर्बल असभ्य जातियों में से कुछ लोगों ने निर्मूल किए जाने या देश से निकाले जाने की अपेक्षा अधम अधीनता स्वीकार करना अच्छा समझा होगा। इसके अनुसार ऋग्वेद में ऐसे दस्यु लोगों का वर्णन मिलता है जिन्होंने अन्त में प्रतापी जातियों का प्रभुत्व स्वीकार और उनकी सभ्यता और भाषा को ग्रहण किया। अतएव ये लोग भारतवर्ष के प्रथम आदिवासी थे जो हिन्दू हो गए।

आदिवासियों और आर्य लोगों के युद्ध के विषय में हम, बहुत से वर्णन उद्धृत कर चुके हैं। अब हम दो एक ऐसे वाक्य उद्धृत करेंगे जिनसे जान पड़ेगा कि विजयी आर्य लोग स्वयं आपस में सदा मेल मिलाप से नहीं रहते थे। सुदास एक आर्य राजा तथा विजयी था। उसके विषय में यह प्रायः वर्णन आया है कि अनेक आर्य जातियां और राजा लोग मिलकर उससे लड़े, पर उसने उन सभों को पराजित किया। आर्य जातियों के बीच इन विनाशी युद्धों के, तथा जो जातियां सुदास से लड़ी थीं उनके वर्णन ऋग्वेद में इतिहास के ध्यान से बड़े मूल्यवान हैं।

"(८)—धूर्त शत्रुओं ने नाश करने का उपाय सोचा और अदीन नदी का बांध तोड़ डाला। परन्तु सुदास अपनी शक्ति से पृथ्वी पर स्थित रहा और चयमान का पुत्र कवि मरा।

"(६) क्योंकि नदी का पानी अपने पुराने मार्ग से ही बहता रहा, उसने महा मार्ग नहीं किया और सुदास का घोड़ा समस्त देश में घूम आया। इन्द्र ने लड़ाके और बतकड़ वैरियों और उनके बच्चों को सुदास के आधीन कर दिया।

"(११) सुदास ने दोनों प्रदेशों के २१ मनुष्यों को मार कर यश प्राप्त किया। जिस तरह यज्ञ के घर में युवा पुरोहित कुश काटता है उसी तरह सुदास ने अपने शत्रुओं को काट डाला। वीर इन्द्र ने उसकी सहायता के लिये मरुत्स को भेजा।

" (१४) अनु और द्रुह्य के छाछठ हजार छ सौ छाछठ योधा लोग, जिन्होंने पशुओं को लेना चाहा था और सुदास के शत्रु थे सब मार डाले गए। ये सब कार्य इन्द्र का प्रताप प्रगट करते हैं।

" (१७) इन्द्र ने ही बिचारे सुदास को इन सब कामों के करने योग्य किया। इन्द्र ने बकरे को इस योग्य बनाया कि वह जोरावर शेर को मारे। इन्द्र ने बलिदंड को एक सूई से गिरा दिया। उसने सब सम्पत्ति सुदास को दी।" (७, १८)

कवि तृत्सु वा वशिष्ठ, जिसने सुदास के इस यश का वर्णन किया है, वह अपनी चिरस्थायिनी कविता के लिये बिना पुरस्कार पाए ही नहीं रहा। क्योंकि २२ और २३ रिचाओं में वह कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता है कि वीर सुदास ने उसे दो सौ गाय, दो रथ और सोने के गहिनों से सजे हुए चार घोड़े दिए ! नीचे सुदास के सम्बन्ध का एक दूसरा सूक्त उद्धृत किया जाता है—

" (१) हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हारे पूजने वाले तुम्हारे ऊपर भरोसा करके पशु जीतने के अभिप्राय से अपने अस्त्र शस्त्र लेकर पूरब की ओर गए हैं। हे इन्द्र और वरुण, अपने शत्रुओं को, चाहे वे दास हों वा आर्य, नाश करो और सुदास को अपनी रक्षा से बचाओ।

" (२) जहां पर लोग झंडा उठा कर लड़ते हैं, जहां हम लोगों की सहायता करने वाली कोई वस्तु नहीं दिखाई देती, जहां लोग आकाश की ओर देख कर भय से कांपते हैं, वहां पर, हे इन्द्र और वरुण ! हम लोगों की सहायता करो और हमें धीरज दो।

" (३) हे इन्द्र और वरुण ! पृथ्वी के छोर खो गए से जान पड़ते हैं और हल्ला आकाश तक पहुंचता है। शत्रुओं की सेना निकट आ रही है। हे इन्द्र और वरुण ! तुम सदा प्रार्थनाओं को सुनते हो, हमारे निकट आकर रक्षा करो।

" (४) हे इन्द्र और वरुण ! तुमने अभी तक अपराजित भेद को मार कर सुदास को बचाया। तुमने तृत्सुओं की प्रार्थनाओं को सुना। उनकी दीन प्रार्थना लड़ाई के समय फलीभूत हुई।

"(५) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रुओं के हथियार हमें चारों ओर से आक्रमण करते हैं, शत्रु लोग हमें लुटेरों में आक्रमण करते हैं। तुम दोनों प्रकार की सम्पत्ति के स्वामी हो ! युद्ध के दिन हमारी रक्षा करो।

"(६) युद्ध के समय दोनों दल सम्पत्ति के लिये इन्द्र और वरुण की प्रार्थना करते थे। पर इस युद्ध में तुमने तृत्सुओं के सहित सुदास की रक्षा की, जिन पर दस राजाओं ने आक्रमण किया था।

"(७) हे इन्द्र और वरुण ! वे दस राजे जो कि यज्ञ नहीं करते थे, मिलकर भी सुदास को हराने में समर्थ नहीं हुए।

"(८) हे इन्द्र और वरुण ! जिस समय सुदास दस सरदारों से घिरा हुआ था और जिस समय सफेद वस्त्र पहिने हुए, जटा जूट धारी तृत्सु लोगों ने नैवेद्य और सूक्तों से तुम्हारी पूजा की थी तो तुमने सुदास को शक्ति दी थी।" (७, ८३)

एक दूसरे सूक्त में उस समय में जो हथियार काम में लाए जाते थे उनका वर्णन मिलता है। हम उसका कुछ भाग नीचे उद्धृत करते हैं।

"(१) जब युद्ध का समय निकट पहुंचता है और योधा अपना कवच पहिर कर चलता है तो वह बादल के समान देख पड़ता है ! योधा, तेरा शरीर न छिदे, तू जय लाभ कर, तेरे शस्त्र तेरी रक्षा करें !

"(२) हम लोग धनुष से पशु जीत लेंगे, हमलोग धनुष से जय प्राप्त करेंगे, हमलोग धनुष से भयानक और घमंडी शत्रुओं की अभिलाषा को नष्ट करें ! हमलोग धनुष से अपनी जीत चारों ओर फैलावेंगे !

"(३) जब धनुष की प्रत्यंचा खींची जाती है तो वह युद्ध में आगे बढ़ते हुए तीर चलाने वाले के कान तक पहुंचती है, उसके कान में धीरज के शब्द कहती है और वह तीर को इस तरह गले लगाती है जैसे कोई प्यार करने वाली स्त्री अपने पति को गले लगाती है।

" (५) तरकस बहुत से तीरों के पिता के समान है, बहुत से तीर उसके बाल बच्चों की नाईं हैं। वह आवाज़ करता हुआ, योधा की पीठ पर लटकता है, लड़ाई में उसे तीर देता है और शत्रु को जीतता है।

" (६) चतुर सारथी अपने रथ पर खड़ा होकर जिधर चाहता है उधर अपने घोड़ों को हांकता है, रास घोड़ों को पीछे से रोके रहती है, उनका यश गाओ!

" (७) घोड़े ज़ोर से हिनहिनाते हुए अपने खुरों से धूल उड़ाते हैं और रथों को लेकर क्षेत्र पर जाते हैं। वे हटते नहीं वरन् लुटेरे शत्रुओं को अपने पैरों के नीचे कुचल डालते हैं।

"(११) तीर में पर लगे हैं, उसकी नोक हरिन (के सींग) की है। अच्छी तरह से खींची जाकर तथा तांत से छोड़ी जाकर वह शत्रु पर गिरती है। जहां पर मनुष्य इकट्ठे वा जुदे जुदे खड़े रहते हैं वहां पर तीर लाभ उठाती है।

" (१४) चमड़े का बंधन कलाई को धनुष की तांत की रगड़ से बचाता है और कलाई के चारों ओर सांप की नाईं लपटा रहता है। वह अपना काम जानता है, गुणकारी है और हर तरह पर योधा की रक्षा करता है।

" (१५) हम उस तीर की प्रशंसा करते हैं जो कि ज़हर से बुझी हुई है, जिसकी नोक लोहे* की है और जो पर्जन्य की है।"(६७५)

अपने इन उद्धृत वाक्यों को समाप्त करने के पाहिले हम एक वाक्य और उद्धृत करेंगे जिसमें विजयी राजाओं के गद्दी पर बैठने का वर्णन है।

---

* इससे प्रगट होता है कि तीर का सिरा लोहे का होता था। 'पर्जन्य वृष्टि का देवता है। अतएव पर्जन्य की शाखा से कदाचित उन नरकटों से तात्पर्य है जो वृष्टि में उत्पन्न होते हैं। ग्यारहवीं रिचा से प्रगट होता है कि तीर के सिरे कभी कभी हरिन के सींग के भी होते थे।

"(१) हे राजा! मै तुम्हें राजा की पदवी पर स्थित करता हूं। तुम इस देश के राजा हो! स्थिर और चिरस्थायी हो! सब प्रजा तुम्हें चाहें! तुम्हारा राज्य नष्ट न हो!

"(२) तुम यहां पहाड़ की नाईं स्थिर रहो; राज्य सिंहासन पर से उतारे मत जाओ, इन्द्र की नाईं चिरस्थायी रह कर राज्य का पोषण करो।

"(३) इन्द्र ने यज्ञ का भाग पाया है और वह राज सिंहासन पर बैठा हुआ नए राजा की सहायता करता है! सोम उसको आशीर्वाद देती है।

"(४) आकाश अचल है, पृथ्वी अचल है, पर्वत अचल है, यह लोक अचल है। वह भी अपनी प्रजा के बीच राजा की नाईं अचल है।

"(५) राजा वरुण तुम्हे अचल करें! अच्छे बृहस्पति तुम्हें अचल करें; इन्द्र और अग्नि तुम्हारी सहायता करके तुम्हें अचल करें।

"(६) देखो मैं इस अमृत तुल्य नैवेद्य को अमृत सोम के रस के साथ मिलता हूं। इन्द्र ने तुम्हारी प्रजा को तुम्हारे आधीन करके उनसे तुम्हें कर दिलवाया है!" (१०, १७३)

इतना वर्णन बहुत होगा। हम पहिले दिखला चुके हैं कि योधा लोग केवल कवच और शिरोऽस्त्र ही नहीं काम में लाते थे वरन् वे लोग कंधों के लिये भी एक शस्त्र, कदाचित् ढाल, रखते थे। वे तीर धनुष के सिवाय भाले, फरसे तथा तीखी धार की तलवारों को भी काम में लाते थे। पुराने समय में युद्ध के जो जो शस्त्र दूसरे देशवासियों को मालूम थे उन सब को भारतवासी चार हजार वर्ष पहिले जानते थे। युद्ध में वे लोग दुन्दुभी बजा कर मनुष्यों को इकट्ठा करते थे, झंडियां लेकर दृढ़ झुंडों में आगे बढ़ते थे और वे लोग युद्ध के घोड़ों और रथों का प्रयोग भी भली भांति जानते थे। पालतू हाथी भी काम में लाए जाते थे और राजाओं का अपने मंत्रियों के साथ सजे हुए हाथियों पर सवार होने के वर्णन पाए जाते हैं (म० ४ सू० ४ रि० १)। परन्तु ऐसा जान नहीं

पड़ता कि वैदिक काल में हाथी युद्ध में नियमपूर्वक व्यवहार में लाए जाते हों, जैसा कि ईसा की पहिली, तीसरी और चौथी शताब्दियों में होता था, जब कि ग्रीक लोग भारतवर्ष में आए थे।

अब केवल यही कहना है कि वह समय, जब कि वैदिक योधा लोग रहते और लड़ते थे, अशान्तमय था, उन लोगों को केवल आदिम निवासियों हीं से निरन्तर युद्ध नहीं करना पड़ता था, वरन् हिन्दू राज्य भी कई अनुशासकों के बीच बटा हुआ था और बलवान अनुशासक लोग अपने परोसियों के राज्य को अपने में मिला लेना चाहते थे। ऋषी लोग भी जो कि यज्ञादि करते थे बलवान होने की कामना रखते थे अथवा देवताओं से ऐसे पुत्र मांगते थे जो युद्ध में जय लाभ करें। प्रत्येक हृष्ट पुष्ट मनुष्य योधा होता था और अपने घर, खेतों तथा पशुओं की अपनी बलिष्ट दहिनी भुजा से रक्षा करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहता था। प्रत्येक हिन्दू की बस्ती अथवा जाति, यद्यपि देवताओं की पूजा और शान्ति के भिन्न भिन्न व्यवसायों की उन्नति में दत्तचित्त थी पर साथ ही इसके इस बात से भी सचेत थी कि उसका जातीय जीवन सदैव युद्ध के लिये प्रस्तुत रहने ही पर निर्भर है और हिन्दू जाति के बड़े समूह में, जो सिन्धु के किनारे से लेकर सरस्वती के किनारे तक फैला था ऐसेही ऐसे कट्टर, और रणप्रिय लोग थे जिन्होंने निरन्तर युद्ध से भूमि पर अपनी स्थिति, अपनी स्वाधीनता, तथा अपने जातीय जीवन को स्थिर रक्खा था और जो जय प्राप्त करने अथवा देह ही त्याग देने का दृढ़ संकल्प रखते थे।

ऐसी अवस्था का स्मरण करना शोक जनक है। परन्तु क्या कोई ऐसा भी देश है जहां प्राचीन काल में जातियों को अपनी उन्नति या अपने जीवन के लिये भी निरन्तर युद्ध न करना पड़ा हो? अथवा आधुनिक समय में ही, अर्थात् उन दो हजार वर्षों में जो कि गौत्तम बुद्ध और ईसूमसीह को अपने शान्तिमय संदेसे के उपदेश करने के समय से आज तक हो गए, क्या कोई ऐसी भी जाति देखने में आती है जो बिना अपने परोसियों से निरन्तर युद्ध किए ही अपने शान्तिमय व्यवसाय के फल प्राप्त करने की आशा करसकती हो? कुछ देशों को छोड़ कर जो अच्छे मौके पर स्थित

हैं, योरप की सब जातियां सिर से लेकर पैर तक अस्त्र शस्त्र से सु-सज्जित हैं। बड़ी बड़ी राजधानियों का प्रत्येक व्यक्ति सदा युद्ध के लिये इतना प्रस्तुत रहता है कि केवल एक सप्ताह की सूचना पर अपना घर द्वार तथा काम काज छोड़ कर रणक्षेत्र की यात्रा कर सके। सभ्यता ने मनुष्यता के हित के लिये बहुत कुछ किया है। परन्तु सभ्यता ने तलवार को हंसुआ नहीं बना दिया अथवा मनुष्यों को इस योग्य नहीं कर दिया कि वे अपने पारोसियों से अन्तिम श्वास पर्यन्त बिना लड़े ही अपने शान्तिमय व्यवसायों का फल भोग सकें।
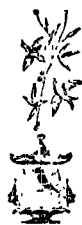
अध्याय ५

सामाजिक जीवन।

आर्य लोगों ने आदिवासियों के साथ इसी तरह लगातार युद्ध करके ही, अन्त को सारा पञ्जाब अर्थात् सिन्धु से लेकर सरस्वती तक और पर्वतों से लेकर सम्भवतः समुद्र तक जीत लिया।

जैसा कि आशा की जासकती है, हमलोगों को सिन्धु और उसकी पांचो सहायक नदियों का उल्लेख कई जगह पर मिलता है। दसवें मण्डल का ७५ वां सूक्त इसका एक अच्छा उदाहरण है और हम अपने पाठकों के लिये यहां पर इस पूरे सूक्त का अनुवाद कर देते हैं—

"(१) हे नदियो! कवि, भक्त के घर में तुम्हारी बड़ी शक्ति की प्रशंसा करता है। उनकी तीन प्रणाली है, प्रत्येक प्रणाली में सात सात नदियां हैं। सिन्धु की शक्ति और सब नदियों से अधिक हैं।

"(२) हे सिन्धु! जब तुम ऐसी भूमि की ओर दौड़ी जहां कि अन्न बहुत होता है, तो वरुण ने तुम्हारे लिये मार्ग खोल दिया। तुम भूमि पर एक विस्तृत मार्ग से बहती हो। तुम सब बहती हुई नदियों से अधिक चमकती हो।

"(३) सिन्धु का घोर नाद पृथ्वी से आकाश तक पहुंचता है! वह चमकती हुई बडे वेग से बहती है। उसका घोर नाद ऐसा जान पड़ता है जैसे बादल में से बडी आवाज के साथ पानी बरसता हो। सिन्धु सांड की नाईं गरजती हुई आती है।

"(४) जैसे गाय अपने बछड़ों को दूध देती है, हे सिन्धु वैसेही दूसरी नदियां तेरे निकट अपना जल लेकर आती है"! जैसे कोई राजा अपनी सेना सहित युद्ध में जाता है उसी प्रकार तू भी अपने

बगल बगल बहती हुई नदियों * को दो प्रणालियों को लेकर आगे आगे चलती है।

"(५) हे गंगा! हे यमुना और सरस्वती और शतुद्रि (सतलज) और परुष्णी (रावी)! मेरी इस प्रशंसा को अपने में बांट लो! हे असिक्नी (चनाब) से मिलने वाली नदी! हे वितस्ता (झेलम)! हे आर्जीकीया (व्यास), जोकि सुषोमा (सिन्धु) से मिली है! मेरी बात सुनों।

"(६) हे सिन्धु! तू पहिले तृष्टामा से मिलकर और फिर सुसर्तु, रसा और श्वेती से मिलकर बहती है। तू क्रुमु (कुरुम) और गोमती (गोमल) को कुभा (काबुल) और मेहत्नु से मिलाती है। तू इन सब नदियों को साथ लेकर बहती है।

"(७) प्रबल सिन्धु सफेद और चमकती हुई सीधी बहती है! वह बड़ी है और उसका जल चारों ओर बड़े वेग से भरता है। सब बहनेवाली नदियों में से उसके समान कोई भी नहीं बहती! वह घोड़ों की नाईं प्रबल और प्रौढ़ा की नाईं सुन्दरी है!

"(८) सिन्धु सदा यौवना और सुन्दरी रहती है। उसके पास बहुत से घोड़े, रथ और वस्त्र हैं। उसके पास बहुत सा स्वर्ण है और वह सुन्दर वस्त्र पहिरे है! उसके पास बहुत अन्न, ऊन और तृण हैं और उसने अपने को मृदु फूलों से ढक रक्खा है।

"(९) सिन्धु ने अपने सुख से जाने वाले रथ में घोड़े बाँधे हैं और उसमें रख कर हम लोगों के लिये भोजन लाती है। इस रथ की महिमा बड़ी है, इसका यश बहुत है और वह बड़ा और अजित है।"

यह रिचा बहुत ही मनोहर और हृदयग्राहिणी है और कवि की विस्तृत दृष्टि को भी प्रकाशित करती है। प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं कि यह कवि एक ही बेर में नदियों के तीन बड़े बड़े प्रवाहों

* अर्थात् पश्चिम में काबुल की सहायक नदियां और पूरब में वे सहायक नदियां जो कि पञ्जाब में बहती हैं और जिनका नाम नीचे की दो रिचाओं में है।

का वर्णन करता है, अर्थात् वे जो उत्तर-पश्चिम से बह कर सिन्धु में मिलती हैं, वे जो उत्तर-पूर्व से उसमें मिलती हैं और अपनी शाखों सहित दूरस्थ गंगा और जमुना। "यह वैदिक कवि विस्तृत भौगोलिक ज्ञान को प्रकाशित करता है, जो ज्ञान उत्तर में हिमालय से, पश्चिम में सिन्धु नदी और सुलेमान पहाड़, दक्षिण में सिन्धु नदी या समुद्र और पूर्व में गंगा और जमुना नदियों से सीमाबद्ध है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के अन्य भागों का वैदिक कवि को ज्ञान नहीं था।"

पञ्जाब की सब नदियां मिल कर कहीं कहीं पर "सप्तनदी" के नाम से पुकारी गई हैं और एक जगह पर यह भी कहा गया है कि "सप्तनदी" की माता सिन्धु है और उसमें सातवीं नदी सरस्वती है (म० ७ सू० ३६ रि० ६)। सिन्धु और उसकी पांचों शाखें आदिम हिन्दुओं के प्राचीन निवास स्थान में अब तक बहती हैं। परन्तु सरस्वती, जो कि प्राचीन नदियों में सबसे पवित्र थी और जो उस प्राचीन समय में भी देवी की तरह पूजी जाती थी, अब नहीं बहती। उसका मार्ग कुरुक्षेत्र और थानेश्वर के निकट अब तक देख पड़ता है और इन स्थानों को हिन्दू लोग अब तक पवित्र मानते हैं।

एक किञ्चित अपूर्व स्थान पर ऋषी विश्वामित्र को, सुदास के दिए हुए रथों, घोड़ों और अन्य पुरस्कारों के साथ, व्यास और सतलज नदी के संगम के पार करने में कठिनाई पड़ी, और उन्होंने गरजते हुए जल के कोप को शान्त करने के लिये एक पूरा सूक्त बना डाला (म० ३ सू० ३३)। हम ऊपर कह आए हैं कि यह सुदास एक प्रतापी विजयी था और आस पास के दस राजाओं को हरा चुका था। उसने कई लड़ाइयां जीती थीं, जिनका वर्णन कई उत्तेजित सूक्तों में किया गया है। यह प्रतापी विजयी विद्या और धर्म का रक्षा करने वाला भी जान पड़ता है। उसने विश्वामित्र और वसिष्ठ के घराने के ऋषियों को उदारता से बराबर पुरस्कार दिया। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों ऋषियों के वंशों में आपस में द्वेष हो गया, जिसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

यद्यपि पंजाब की नदियों का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है, पर गंगा और यमुना का उल्लेख बहुत कम मिलता है। हम ऊपर एक सूक्त का अनुवाद दे चुके हैं जिसमें इन दोनों नदियों का नाम आया है।

ऋग्वेद भर में दूसरा स्थान, जहां गंगा का उल्लेख आया है, केवल छठे मंडल के ४५ वें सूक्त की ३१ वीं रिचा है। वहां पर गंगा के ऊंचे तटों की उपमा दी गई है। यमुना के तट पर के चरागाहों में के प्रसिद्ध पशुओं का वर्णन म० ५ सू० ५२ रि० १७ में है।

इस तरह, भारतवर्ष में आर्य अधिवासियों की रहने की सब से पहिली जगह पांच नदियों की भूमि में थी। इसके सिवाय यह भी जान पड़ता है कि पांचो नदियों के बसने वालों की धीरे धीरे करके पांच जातियां हो गईं। म० १ सू० ७ रि० ९ में, म० १ सू० १७६ रि० ३ में, म० ६ सू० ४६ रि० ७ में तथा कई दूसरे स्थानों पर "पांच भूमियों' (पंच-क्षिति) का उल्लेख है। इसी प्रकार म० २ सू० २ रि० १० और म० ४ सू० ३८ रि० १० में "खेती करने वाली पांच जातियों" (पञ्च-कृष्टि) का वर्णन है, और म० ६ सू० ११ रि० ४, म० ६ सू० ५१ रि० ११, म० ८ सू० ३२ रि० २२, म० ६ सू० ६५ रि० २३ आदि स्थानों में "पांच जनों" (पञ्च-जन) का उल्लेख मिलता है।

सरल, वीर और उद्योगी आर्य लोगों की इन्ही "पांच जातियों" ने, जो कि सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के उपजाऊ तटों पर खेती और चराई करके रहती थीं, अपनी सभ्यता हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैलाई है।

अब हम पंजाब की इन पांच जातियों के सामाजिक और घरेऊ आचार व्यवहारों के तथा उनके घरेऊ जीवन के मनोरंजक और रम्य विषय का वर्णन करेंगे। पहिली बात, जो कि हम लोगों को विस्मित करती है, यह है कि उस समय में वे बुरे नियम और रुकावट, और एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में तथा एक जाति और दूसरी जाति में वे स्पष्ट भेद नहीं थे जो कि आज कल के हिन्दू समाज के बड़े दुःखजनक लक्षण हैं। हम लोग देख

चुके हैं कि वैदिक समय के बलिष्ट हिन्दू लोग गो मांस को काम में लाने में कोई बाधा नहीं समझते थे और वे लोग अपने व्यापारियों की समुद्र यात्रा का वर्णन अभिमान के साथ करते हैं। हम लोग यह भी देख चुके हैं कि ऋषियों की कोई अलग जाति नहीं होती थी और न वे अपना जीवन केवल तपस्या और ध्यान में संसार से अलग ही रह कर बिताते थे। इसके विपरीत, ऋषी लोग संसार के व्यवहारी मनुष्य होते थे जोकि बहुत से पशुओं के स्वामी होते थे, खेती करते थे, युद्ध के समय में आदिवासी शत्रुओं से लड़ते थे और देवताओं से धन और पशु के लिये, युद्ध में विजय पाने के लिये, और अपनी स्त्री और बाल बच्चों की मंगलकामना के लिये प्रार्थना करते थे। वास्तव में प्रत्येक कुटुम्ब का मुखिया, एक प्रकार से ऋषी ही होता था और अपने देवताओं की पूजा अपने घर में अपनी ही नम्र रीति से करता था। कुटुम्ब की स्त्रियां भी पूजा में सम्मिलित होकर कार्य के सम्पादन करने में सहायता देती थीं। परन्तु समाज में कुछ लोग सूक्त बनाने और बड़े बड़े होम करने में अवश्य प्रधान थे और राजा तथा धनी लोग ऐसे लोगों को बड़े बड़े अवसरों पर बुला कर उदारता से पुरस्कार देते थे। परन्तु इन महान रचयिता लोगों की—ऋग्वेद के इन महान् ऋषी लोगों की—भी कोई अन्य साधारण जाति नहीं थी। वे लोग भी संसारी मनुष्य थे जो सर्व-साधारण के साथ मिले हुए थे, उनसे विवाहादि करते थे। उनके साथ सम्पत्ति के भागी होते थे, उनके युद्धों में लड़ते थे और सारांश यह कि उन्हीं में के होते थे।

जैसे एक रणप्रिय ऋषी एक ऐसे पुत्र के लिये आराधना कर-ता है (म० ५ सू० २३ रि० २) जो युद्ध में शत्रुओं को जीते। दूसरा ऋषी (म० ६ सू० २० रि० १ में) धन, खेत तथा ऐसे पुत्र के लिये प्रार्थना करता है जो उसके शत्रुओं का नाश करे। एक तीसरा ऋषी (म० ६ सू० ६९ रि० ८ में) धन और स्वर्ण के लिये, घोड़े और गौओं के लिये, प्रचुर अन्न और उत्तम सन्तति के लिये आरा-धना करता है। एक चौथा ऋषी बहुत ही सिधाई के साथ कहता

है कि मेरे पशु ही मेरे धन और मेरा इन्द्र हैं (म० ६ सू० २८ रि० ५) ऋग्वेद भर में ऋषी लोग साधारण मनुष्य हैं। इसका तनिक भी प्रमाण नहीं मिलता कि ऋषियों की कोई अलग जाति होती थी जोकि योधाओं वा किसानों से भिन्न थी * ।

निष्पक्ष विचार के लोग इसे जाति भेद न होने का एक अच्छा प्रमाण समझेंगे। यह अभाव रूप प्रमाण बहुतेरे भावरूप प्रमाणों की अपेक्षा भी अधिक दृढ़ है। सूक्तों के ऐसे बड़े संग्रह में जो कि छ सौ वर्षों से भी अधिक समय में बनाया गया था, और जो लोगों की चाल ढाल और रीति व्यवहार के वर्णनों से भरा हुआ है,—जो कि कृषि, चराई और शिल्पनिर्मित वस्तुओं के, आदिवासियों के युद्धों के, विवाह और घरेऊ नियमों के, स्त्रियों की स्थिति तथा

*म० १० सू० ९० रि० १२ में जो चार जातियों का वर्णन आया है उसे हमारे प्रमाणों का खण्डन न समझना चाहिए। यह सूक्त ऋग्वेद के सूक्तों के सैकड़ों वर्ष पीछे का बना है जैसा कि उसकी भाषा और विचार से ही प्रगट होता है। वह ऋक्, साम, तथा यजुर्वेदों के जुदे जुदे किए जाने के (रिचा ९) उपरान्त का, तथा जिस समय हिन्दू धर्म में परमेश्वर ने (जिसका कि उल्लेख ऋग्वेद में है ही नहीं) स्थान पा लिया था उसके भी उपरान्त का बना हुआ है। अर्थात् कोलब्रूक के कथनानुसार वह उस समय का बना हुआ है जब कि ऋग्वेद की असंस्कृत रिचाओं के उपरान्त उत्तर काल में अधिक सोहावने छन्द बनने लग गए थे। इस बात पर तो सब ही विद्वान सहमत हैं कि यह बहुत ही उत्तर काल का बना हुआ है।

धर्म्मों के, धर्म्म विषय के और उस समय की ज्योतिष विद्या के वर्णनों से भरा हुआ है—हम लोगों को एक भी ऐसा वाक्य नहीं मिलता जिससे प्रगट होता हो कि उस समय समाज में जातिभेद वर्तमान था। क्या इस बात का विचारना सम्भव है कि उस समय जाति भेद वर्तमान था और फिर भी ऋग्वेद की दस हजार रिचाओं में समाज के इस प्रधान सिद्धान्त का कहीं उल्लेख नहीं है? क्या उत्तर काल की एक भी ऐसी धर्म पुस्तक का मिलना सम्भव है जो विस्तार में ऋग्वेद का दसवां ही भाग हो और उसमें जाति भेद का कहीं वर्णन न हो?

यहां तक हमने अभावरूप प्रमाणों को केवल उसी प्रकार से सिद्ध किया है जिस प्रकार से कि कोई अभावरुप प्रमाण सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु बड़े आश्चर्य का विषय है कि इस बात के भावरुप प्रमाण भी मिलते हैं और ऋग्वेद के कई वाक्यों से प्रगट होता है कि उस समय जाति भेद नहीं था। स्वयं "वर्ण" शब्द कि जिसका अर्थ आज कल की संस्कृत में "जाति" से है ऋग्वेद में केवल आर्यों और अनार्यों में भेद प्रगट करने के लिये आया है और कहीं भी आर्यों की भिन्न भिन्न जातियों को प्रगट करने के लिये नहीं आया (म० ३ सू० ३४ रि० ६ आदि)। वेद में "क्षत्रिय" शब्द का, जिसका अर्थ आज कल की संस्कृत में "क्षत्री जाति" से है, प्रयोग केवल विशेषण की भांति देवताओं के सम्बन्ध में हुआ है और उसका अर्थ "बलवान" है (म० ७ सू० ६४ रि० २; सू० ७ सू० ८६ रि० १; आदि)। "विप्र" जिसका अर्थ आज कल "ब्राह्मण जाति" से ही, वह भी ऋग्वेद में केवल विशेषण की भांति देवताओं के सम्बन्ध में आया है और वहां पर उसका अर्थ "बुद्धिमान" है। (म० ८ सू० ११ रि० ६ आदि)। और "ब्राह्मण" शब्द जो आज कल की संस्कृत में "ब्राह्मण जाति" प्रगट

करता है, उसका प्रयोग ऋग्वेद में सैकड़ों जगह पर केवल "सूक्तकार" के अर्थ में हुआ है (म० ७ सू० १०३ रि० ८ आदि)।

हम खुशी से इसके और भी अनेक प्रमाण दे सकते हैं, परन्तु हमारी सीमा यहां ऐसा करने से रोकती है। परन्तु हम एक और प्रमाण दिए बिना नहीं रह सकते। उस मनोरम सरलता के साथ जो कि ऋग्वेद का साधारण सौन्दर्य्य है, एक ऋषी अपने विषय में करुणा से यों कहता है—

"देखो, मैं सूक्तों का रचयिता हूं, मेरा पिता वैद्य है और मेरी माता पत्थर पर अनाज पीसती है। हम सब जुदे जुदे कामों में लगे हुए हैं। जिस तरह गौएं (भिन्न भिन्न दिशाओं में) चरागाह में आहार के लिये घूमती हैं उसी तरह, हे सोम! हम लोग (भिन्न भिन्न व्यवसायों में) तेरी पूजा धन के लिये करते हैं। तू इन्द्र के लिये बह!" (म०९ सू० ११२ रि० ३)। जो लोग कल्पना करते हैं कि वैदिक समय में जाति भेद था, उन्हें ऊपर की नांई वाक्यों को स्पष्ट करने में तनिक कठिनता होगी, जहां कि पिता, माता, और पुत्र, वैद्य, पिसनहारी और सूक्तकार वर्णन किए गए हैं!

उत्तर काल के जाति भेद के पक्षपाती लोगों ने कभी कभी इन वचनों को निरुपण करने का यत्न किया है और इसका फल बहुत ही अद्भुत हुआ है! ऋग्वेद के बहुत से ऋषियों की नांई (जिन्हें हम ऊपर देख चुके हैं कि वे योधा पुत्र होने के लिये निरन्तर आराधना करते थे) विश्वामित्र भी योधा और सूक्तकार थे। उत्तर काल के हिन्दू इस पर घबड़ाए और उन्होंने एक सुन्दर पौराणिक कथा गढ़ दी कि विश्वामित्र पहिले क्षत्रिय थे और फिर ब्राह्मण हो गये। परन्तु ये सब निरर्थक प्रयत्न हैं। विश्वामित्र न तो क्षत्री ही थे और न ब्राह्मण। वे एक वैदिक ऋषी, अर्थात

योधा तथा पुजेरी थे, जो कि "ब्राह्मण" और "क्षत्रियों" के होने के बहुत पहिले हुए थे। *

अस्तु, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, प्रत्येक कुटुम्ब का पिता स्वयं अपना ही पुरोहित होता था और उसका घर ही

---

*यहां पर हमको उन तीनों विद्वानों की सम्मति उद्धृत करते हुए बड़ा हर्ष होता है जिन्होंने कि अपना जीवन काल वेद ही के देखने में व्यतीत कर दिया है और जिन्हें कि योरप के वैदिक विद्वानों का त्रियंविराट कहना चाहिए—

"तब यदि हम लोग इन सब प्रमाणों पर ध्यान देकर यह प्रश्न करें कि जाति, जैसा कि मनु के ग्रन्थों में अथवा आज कल है, वेद के प्राचीन धर्म का अंग है अथवा नहीं, तो हमको इसके उत्तर में निश्चय करके 'नहीं' कहना पड़ेगा" Maxmuller, Chips from a German Workshop Vol II (1867) p. 307.

"अब तक जातियां नहीं थीं। लोग अब तक एक में मिलकर रहते थे और एक ही नाम से (अर्थात् 'विसस' के नाम से) पुकारे जाते थे"। Weber's Indian Literature (translation) p 38.

और अन्त में डाक्टर रोथ साहब ने यह दिखलाया है कि वैदिक समय में छोटे छोटे राजाओं के घराने के पुजारी ब्राह्मण कहलाते थे परन्तु तब तक उनकी कोई अलग जाति नहीं हो गई थी। और इस बड़े विद्वान ने यह भी दिखलाया है कि आगे चल कर अर्थात् महाभारत के समय में किस प्रकार से छोटे छोटे राजाओं के घराने के पुजेरियों के प्रबल दल हो गए और उनके घरानों ने किस प्रकार से जीवन के प्रत्येक विभाग में सब से अधिक प्राबल्य प्राप्त किया और उनकी एक जुदी जाति हो गई। Quoted in Muir's Sanskrit Texts, Vol I (1872) p. 291.

उसका मन्दिर होता था। ऋग्वेद में मूर्ति का, अथवा मन्दिरों अर्थात् पूजा करने के उन स्थानों का जहां पर लोग इकट्ठे होते थे, कहीं कोई उल्लेख नहीं है। प्रत्येक कुटुम्बी के घर पवित्र अग्नि सुलगाई जाती थी और वह उन सुन्दर और सरल सूक्तों को गाता था, जिन्हें कि अब हम लोग ऋग्वेद में संग्रह किया हुआ देखते हैं। हम लोगों को उन स्त्रियों का एक मनोहर वर्णन मिलता है जो कि इन यज्ञों में सहायता देती थीं, जो आवश्यक सामिग्रियों को जुटाती थीं, उन्हें ओखली और मूसल से तयार करती थीं, सोम का रस निकालती थीं, उसे अपनी अंगुलियों से हिलाती थीं और ऊनी छनने से छानती थीं। हम लोगों को अनेक स्थानों पर स्त्रियों के अपने पति के साथ यज्ञ करने का वर्णन मिलता है। वे लोग मिल कर हव्य देते थे और इस प्रकार एक साथ ही स्वर्ग को जाने की आशा रखते थे (म० १ सू० १३१ रि० ३; म० ५ सू० ४३ रि० १५ आदि)। इस विषय में एक पवित्र सूक्त की कुछ रिचाएं निस्सन्देह हमारे पाठकों को मनोरञ्जक होंगी।

" (५) हे देवता लोग! जो दम्पति एक साथ मिल कर नैवेद्य तयार करते हैं और सोम के रस को साफ करके दूध के साथ मिलाते हैं

" (६) वे अपने खाने के लिये भोजन पावें और दोनों साथ साथ यज्ञ में आवें। उनको भोजन की खोज में कभी न घूमना पड़े।

" (७) वे देवताओं से बलि चढ़ाने की झूठी प्रतिज्ञा कभी नहीं करते और न तुम्हारी स्तुति करने में चूकते हैं। वे तुम्हारी पूजा सब से अच्छे नैवेद्य से करते हैं।

" (८) वे युवा औ बढ़ती हुई अवस्था में पुत्र से सुखी हो कर स्वर्ण प्राप्त करते हैं और दोनों दीर्घ आयु तक जीते हैं।

" (९) स्वयम् देवता लोग ऐसे दम्पति द्वारा पूजा किए जाने की लालसा रखते हैं जो कि यज्ञ करने के अनुरागी हों और देवताओं को कृतज्ञता से नैवेद्य चढ़ाते हों। वे अपना वंश चलाने के

लिये एक दूसरे को गले लगाते हैं और वे अपने देवताओं की पूजा करते हैं।" (८,३१)

हम लोगों के लिये उन बुद्धिमती स्त्रियों का वर्णन और भी रमणीय है जो स्वयं ऋषी थीं और पुरुषों की नांई सूक्त बनाती और होम करती थीं। क्योंकि उस समय में स्त्रियों के लिये कोई बुरे बन्धन, अथवा समाज में उनके उचित स्थान से उन्हें अलग परदे में अथवा अशिक्षित रखने की रीतें नहीं थीं। घूंघट काढ़े हुई स्त्रियों और दुलहिनों का वर्णन मिलता है पर स्त्रियों के पर्दे में रक्खे जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत हम लोग उन्हें उनके कार्यों को उचित स्थिति में, उन्हें होम में सम्मिलित होते हुए और समाज पर अपना प्रभाव डालते हुए पाते हैं। हम लोग सुशिक्षित स्त्री, विश्ववारा का वृत्तान्त अब तक स्मरण करते है, जो कि हजारों वर्षों से हम सुनते आते हैं। यह धार्मिक स्त्री सूक्त बनाती थी, होम करती थी और अग्नि देवता से विवाहित दम्पति के परस्पर सम्बन्धों को स्थिर करने और सदाचार में रखने के लिये सच्चे उत्साह के साथ प्रार्थना करती थी (म० ५ सू० २८ रि० ३)। हम लोगों को ऐसी दूसरी स्त्रियों के भी नाम मिलते हैं जो ऋग्वेद की ऋषी थीं।

ऐसे सरल समाज में, जैसा कि वैदिक समय में था, जीवन के सम्बन्ध प्राणियों की आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किए जाते थे और न कि वज्र समान नियमों के अनुसार, जैसा कि उत्तर काल में होता था। अतएव उस समय में यह कोई धर्म सम्बन्धी आवश्यक बात नहीं थी कि प्रत्येक कन्या का विवाह हो ही। इसके विपरीत हम लोगों को ऐसी बिन ब्याही स्त्रियों के भी वर्णन मिलते हैं जो अपने पिता ही के घर रहती थीं और स्वाभाविक रीति से अपने पिता की सम्पत्ति के कुछ अंश का स्वत्व मांग कर, उसे पाती थीं (म० २ सू० १७ रि० ७)। इसके सिवाय चतुर और मेहनती पत्नियों का भी वर्णन मिलता है जो घर के कामों को देखती भालती थीं और प्रभात की नांई सबेरे घर के सब प्राणियों को जगा कर, उन्हें अपने अपने कामों में लगाती थीं (म० १ सू०

१२४ रि० ४) और जो गृहस्थी के उन गुणों को रखती थीं जिनके लिये हिन्दू स्त्रियां सबसे पहिले के समय से लेकर आज तक प्रसिद्ध रही हैं। परन्तु बहुधा बुरी स्त्रियों के जो कुमार्ग पर चलती थीं (१,२९,१) ऐसी बिन ब्याही स्त्रियों के जिन्हें उनके चरित्र की रक्षा करने के लिये भाई नहीं थे, और ऐसी स्त्रियों के भी (म० ४ सू० ५, रि० ५; म० १० सू० ३४ रि० ४) जो अपने पति से सच्चा प्रेम नहीं रखती थी उल्लेख मिलते हैं। एक स्थान पर एक क्षीणधन जुआरी की स्त्री का उल्लेख है जो कि दूसरे पुरुषों की लालसा की वस्तु हुई थी [म० १० सू० ३४ रि० ४]।

ऐसा जान पड़ता है कि कन्याओं को भी अपना पति चुनने में कुछ अधिकार होता था। उनका यह चुनाव सदा सुखी ही नहीं होता था। क्योंकि "बहुत सी स्त्रियां अपने चाहनेवाले के धन की लालच में आजाती हैं। परन्तु मृदु स्वभाव और सुन्दर रूप की स्त्री अनेकों में से केवल अपने ही प्रियतम को अपना पति चुनती हैं" [म० १० सू० २७ रि० १२]। हमलोग ऊपर के इस वाक्य में उत्तर काल के स्वयम्बर की छाया देखने की कल्पना कर सकते हैं। परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि पिता भी अपनी कन्या का पति चुनने में एक उपयुक्त प्रभाव का प्रयोग करता था, और आज कल की भांई वह अपनी कन्याओं को सुन्दरता से सज कर और सोने के गहिने पहिना कर, देता था [म० ६ सू० ४६ रि० २ ; म० १० सू० ३६ रि० १४]।

विवाह की रीति बहुत ठीक होती थी और वे प्रतिज्ञाएं जो वर और कन्या एक दूसरे से करते थे, इस अवसर योग्य होती थीं। हम यहां पर ऋग्वेद के अन्तिम भाग के एक सूक्त की कुछ रिचाओं का अनुवाद देते हैं, जिसमें इस रीति का एक मनोहर वर्णन है। नीचे लिखी रिचाओं में से पहिली दो रिचाओं से जान पड़ेगा कि बाल विवाह की स्वभाव विरुद्ध रीति उस समय नहीं ज्ञात थी और कन्याओं का विवाह उनके युवा होने पर किया जाता था।

"(२१) हे विश्वावसु ! (विवाह के देवता), इस स्थान से उठो, क्योंकि इस कन्या का विवाह समाप्त हो गया। हम लोग सूक्तों से

और दंडवत करके विश्वावसु की स्तुति करते हैं। अब किसी दू-सरी कुमारी के पास जाओ, जोकि अब तक अपने पिता के घर हो और विवाह करने की अवस्था के चिन्हों को प्राप्त कर चुकी हो। वह तुम्हारा भाग होगी, उसे जानो।

"(२२) हे विश्वावसु ! इस स्थान से उठो। हम तुम्हें दंडवत करके तुम्हारी पूजा करते हैं। अब किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ जिसका अंग प्रौढ़ता को प्राप्त होता हो, उसे एक पति से मि-लाकर पत्नी बनाओ।

"(२३) जिस मार्ग से हमारे मित्र लोग विवाह के लिये कुमारी ढूंढ़ने को जाते हैं उस मार्ग को सीधा और कांटों से रहित करो। अर्यमन और भग हम लोगों को अच्छी तरह से ले जाय। हे देवता लोग ! पति और पत्नी अच्छी तरह से मिलें।

"(२४) हे कुमारी ! सुन्दर सूर्य ने तुझे (कुंआरेपन के) बन्धनों से बांधा है, अब हम लोग तुझे उन बन्धनों से छोड़ाते हैं। हम तुझे तेरे पति के साथ ऐसे स्थान में रखते हैं जो कि सचाई और पुण्य का घर है।

"(२५) हम इस कुमारी को इस जगह (उसके पिता के घर) से मुक्त करते हैं, परन्तु दूसरी जगह (उसके पति के घर) से नहीं। हम उसका सम्बन्ध अच्छी तरह से दूसरे स्थान से करते हैं। हे इन्द्र ! वह भाग्यशालिनी और योग्य पुत्रों की माता हो।

"(२६) पूषण इस जगह से तेरा हाथ पकड़ कर तुझे ले चले। दोनों अश्विन तुझे एक रथ में ले चलें। अपने (पति के) घर जा और उस घर की मालकिन हो। उस घर में सब चीजों की माल-किन हो और सब पर अपना प्रभुत्व कर।

"(२७) तुझे सन्तान हो और यहां तुझे आशीर्वाद मिले। अपने घर का काम काज सावधानी से कर। अपना शरीर अपने इस पति के शरीर के साथ एक कर और बुढ़ापे तक इस घर में प्रभुत्व कर।

"(४०) पहिले सोम तुझे अङ्गीकार करता है, तब तुझे गन्धर्व

अङ्गीकार करता है, तेरा तीसरा स्वामी अग्नि है और तब चौथी बेर मनुष्य का पुत्र तुझे अङ्गीकार करता है। *

"(४१) सोम ने यह कन्या गन्धर्व को दी, गन्धर्व ने उसे अग्नि को दिया, और अग्नि ने उसे धन और सन्तति के साथ मुझे दिया है।

"(४२) हे दुलहा और दुलहिन! तुम दोनों यहां साथ मिल कर रहो, जुदे मत हो। नाना प्रकार के भोजन का सुख भोगो; अपने ही घर में रहो और अपने पुत्र और पौत्र के साथ आनन्द भोगो।

"(४३) [दुलहा और दुलहिन कहते हैं] प्रजापति हमलोगों को सन्तान दें, अर्यमन हमलोगों को बुढ़ापे तक एक साथ रक्खे। (दुलहिन के प्रति) हे दुलहिन, अपने पति के घर में शुभ पौरे से प्रवेश कर। हमारे दास दासियों और पशुओं का हित करो।

"(४४) तेरी आंखें क्रोध से रहित रहें और तू अपने पति के सुख के लिये यत्न करे, और हमारे पशुओं का हित करे। तेरा मन प्रसन्न रहे और तेरी सुन्दरता शोभायमान हो। तू वीर पुत्रों की माता और देवताओं की भक्त हो। हमारे दास, दासियों और पशुओं का हित करे।

"(४५) हे इन्द्र! इस स्त्री को भाग्यवती और योग्य पुत्रों की माता बना। उसके दस पुत्र हों, जिसमें घर में पति को लेकर ग्यारह पुरुष होजांय।

"(४६) (दुलहिन के प्रति) तेरे सास और ससुर पर तेरा प्रभाव रहे और तू अपनी ननद और देवर पर रानी की नाईं शासन करे।

"४७) (दुलहा और दुलहिन कहते हैं) सब देवता लोग हमारे हृदय को एक करें। मातरिश्वन और धातृ और वाग्देवी हम लोगों को एक करें।" (१०, ८५)

---

* इससे तथा इसके नीचे की रिचाओं से जाना जाता है कि कन्या का वर से विवाह किए जाने के पहिले वह इन तीनों देवताओं को अर्पण की जाती थी।

ऊपर का उद्धृत भाग कुछ अधिक लम्बा चौड़ा है परन्तु हमारे पाठकों को इसके लिये पछताना नहीं पड़ेगा। इस उद्धृत भाग से विवाह विधि की उपयुक्तता और नई दुलहिन की अपने पति के घर में स्थिति और उसके स्वामी का अनुराग एक बार ही प्रगट होता है।

वैदिक समय में राजा और अमीर लोग एक साथ कई स्त्रियों से विवाह करने पाते थे और यह रीति पुराने ज़माने में सब देशों और सब जातियों में थी। ऐसी दशा में घराऊ झगड़े स्वाभाविक ही होते थे और ऋग्वेद के अन्तिम भाग में ऐसे सूक्त पाए जाते हैं जिसमें स्त्रियां अपनी सवतों को शाप देती हैं (म० १० सू० १४५; म० १० सू० १५९)। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह कुरीति वैदिक युग के अन्तिम भाग में ही चली थी, क्योंकि प्राथमिक सूक्तों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

दो अपूर्व रिचाएं ऐसी भी मिलती हैं जिनसे उत्तराधिकारी होने के नियम प्रगट होते हैं। अतएव वे विशेष मनोहर हैं। हम उनका अनुवाद नीचे देते हैं—

"(१) जिस पिता के पुत्र नहीं होता वह पुत्र उत्पन्न करने वाले अपने दामाद को मानता है और अपनी पुत्री के पुत्र के पास जाता है (अर्थात् अपनी सम्पति उसे देता है)। बिना पुत्र का पिता अपनी पुत्री की सन्तति पर भरोसा करके सन्तोष करता है।

"(२) पुत्र अपने पिता की सम्पति का कोई भाग अपनी बहिन को नहीं देता। वह उसे उसके पति को पत्नी की भांति दे देता है। यदि किसी माता को पुत्र या पुत्री, दोनों हो तो एक (अर्थात् पुत्र) तो अपने पिता के काम काज में लगता है और दूसरा (अर्थात् पुत्री) सम्मान पाती है।" (८३,३१)।

यह हिन्दुओं के उत्तराधिकारी होने के नियम का पहिला सिद्धान्त है जिससे कि पुत्र, और न कि पुत्री, अपने पिता की सम्पत्ति और धर्म्म कार्यों का उत्तराधिकारी होता था और जिससे केवल पुत्र सन्तान न होने ही पर सम्पति नाती को मिलती थी।

हमारा विचार है कि नीचे लिखे हुए प्रकार के वाक्यों से हिन्दुओं के पुत्र गोद लेने के नियम के प्रथम सिद्धान्तों का भी पता लगता है—

"जिस तरह से, जिस मनुष्य को ऋण नहीं होता वह बहुत धन पाता है उसी तरह हम लोग भी उस धन को पावेंगे जो हढ़ रहता है (अर्थात् पुत्र)! हे अग्नि! हमें दूसरों का जन्मा हुआ पुत्र न ग्रहण करना पड़े। मूर्खों की रीति पर मत चलो।

"दूसरों का जन्मा हुआ पुत्र हमें सुख दे सकता है, परन्तु कभी अपने पुत्र की तरह नहीं हो सकता। और वह अन्त में अपने ही घर चलाजाता है। इससे हम एक नया पुत्र जन्में जो कि हमें अन्न दे और हमारे शत्रुओं का नाश करे।" (७,४,७ और ८)

हमने इस अध्याय में विवाह और उत्तराधिकारी होने के विषय में लिखा है। अब हम अपने गृहस्थी के रीति व्यवहारों के वर्णन को अन्त्येष्टि क्रिया सम्बन्धी कुछ वाक्यों को उद्धृत करके, समाप्त करेंगे। ऋग्वेद मे यम, नर्क का देवता नहीं है वरन् स्वर्ग का देवता है जो कि पुण्यात्मा मनुष्यों को मरने के पीछे सुखी भूमि में पुरस्कार देता है। केवल उसके दो कुत्ते ऐसे हैं कि जिनसे बचना चाहिए या जिन्हे सन्तुष्ट करना चाहिए।

"(७) हे मृतक! जिस मार्ग से हमारे पुरखा लोग जिस स्थान को गये हैं उसी मार्ग से तुम भी उसी स्थान को जाओ। यमराज और वरुण दोनो, नैवेद्यों से प्रसन्न हैं। जाकर उनका दर्शन करो।

"(८) उस सुखी स्वर्ग में जाकर पूर्वजों में मिलो। यम से तथा अपनी पुण्याई के फलों के साथ मिलो। पाप को पीछे छोड़ो, अपने घर में प्रवेश करो।

"(९) *हे प्रेत लोग! इस स्थान को छोड़कर यहाँ से चले जाओ। क्योंकि पितरों ने मृतक के लिये एक स्थान तयार किया है। वह स्थान दिन से, चमकते हुए जल से, और प्रकाश से सुशोभित है। यम इस स्थान को मृतक के लिये नियत करता है।*

"(१०) हे मृतक! इन दोनों कुत्तों में से प्रत्येक की चार चार आंखें हैं और इनका रंग विचित्र है। उनके निकट से जल्दी से निकल

जाओ। तब उस सुन्दर मार्ग से उन बुद्धिमान पितरों के पास जाओ जो कि अपना समय यम के साथ प्रसन्नता और सुख में बिताते हैं।" (१०, १४)

इन रिचाओं से हमें वैदिक समय के हिन्दुओं का आने वाले सुख में विश्वास प्रगट होता है। अन्त्येष्टि क्रियाओं का उल्लेख नीचे लिखे वाक्यों में आया है—

"हे अग्नि! इस मृतक को भस्म मत कर डाल, उसे दुःख मत दे, उसके चमड़े या शरीर को टुकड़े टुकड़े मत कर डाल। हे अग्नि! ज्यों ही उसका शरीर तेरी ज्वाला से जल जाय त्योंही उसे हमारे पितरों के लोक मे भेज दे।" (१०, १६ १)

"(१०) हे मृतक! उस विस्तृत भूमि पर जा जो कि माता की नाईं है। वह विस्तृत और सुन्दर है। उसका स्पर्श ऊन या स्त्री की नाईं मृदु हो। तुमने यज्ञ किए हैं अतएव वह तुम्हें पाप से बचावे।

"(११)हे पृथ्वी! उसके पीछे उठो, उसे दुःख मत दो। उसे अच्छी चीजें दो, उसे धीरज दो। जैसे माता अपने पुत्र को अपने अंचल से ढकती है वैसे ही तुम इस मृतक को ढँको।

"(१२) उसके ऊपर मिट्टी का जो ढूहा उठाया जाय वह उसके लिये हलका हो। मिट्टी के हजारों कण उसके ऊपर पड़ें। वे सब उसके लिये मक्खन से भरे हुए घर की नाईं हों, वे उसको आश्रय दें।" (१०, १८)

अब इस सूक्त की केवल एक अद्भुत रिचा का उल्लेख करना बाकी रह गया है, जिसमें कि विधवा विवाह का होना स्पष्ट लिखा है-

"हे स्त्री, उठ, तू ऐसे के निकट पड़ी है जिसका प्राण निकल गया है। जीवित लोगों की सृष्टि में आ, अपने पति से दूर हो, और उसकी पत्नी हो जो कि तेरा हाथ पकड़े हुए है और तुझ से विवाह करने को तयार है।" (१०,१८,८)

यह अनुवाद तैतिरीय आरण्यक से सायन के अनुसार है और इसके शुद्ध होने में बहुत कम सन्देह हो सकता है, क्योंकि 'दिधिषु' शब्द का संस्कृत भाषा में केवल एक ही अर्थ है अर्थात् "स्त्री का दूसरा

पति" । हम यहां नीचे लिखे वचन उद्धृत करते हैं जो कि डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र ने प्राचीन भारतवर्ष में अन्त्येष्टि क्रिया के विषय के एक लेख के अन्त में दिए हैं—"वैदिक समय में विधवा विवाह की चाल थी, यह बात अनेक प्रमाणों और चिन्हों से सिद्ध की जा सकती है। प्राचीन काल से संस्कृत भाषा में ऐसे शब्दों का रहना जैसे कि 'दिधिषु' अर्थात् वह मनुष्य जिसने विधवा से विवाह किया हो, 'परपूर्व' अर्थात् जिस स्त्री ने दूसरे पति से विवाह किया हो, 'पौनर्भव' अर्थात् किसी स्त्री का उसके दूसरे पति से उत्पन्न हुआ पुत्र, आदि इस बात को सिद्ध करने के लिये बहुत हैं।"

यहां हमको दुःख और पश्चाताप के साथ, इस सूक्त के सम्बन्ध में एक दूसरे वचन का वर्णन करना पड़ता है। यह वचन ऋग्वेद में पूरी तरह से अनिष्ट रहित है परन्तु जिसका अनुवाद सती होने की निष्ठुर रीति को प्रमाणित करने के लिये उत्तरकाल में उसको बदल कर उलटा किया गया है। इस महा निष्ठुर आधुनिक हिन्दू रीति का ऋग्वेद में कोई प्रमाण नहीं है। उसमें केवल एक पूर्णतया अनिष्ट रहित वर्णन है (म० १० सू० १८ रि० ७) जिसमें अन्त्येष्टि क्रिया में स्त्रियों के प्रस्थान का हाल है। इसका अनुवाद यों किया जा सकता है।

"ईश्वर करे ये स्त्रियां विधवापन के दुःखों को न सहें, इन्हें अच्छे और मन माने पति मिलें और ये उनके घरों में नेत्रांजन और मक्खन सहित प्रवेश करें। इन स्त्रियों को बिना रोए हुए और बिना दुःख के, अमूल्य आभूषण पहिर कर पहिले उस घर को जाने दो"

ऊपर के वाक्यों में विधवाओं के जलाए जाने के सम्बन्ध का एक शब्द भी नहीं है। परन्तु इसमें के एक शब्द 'अग्रे' का 'अग्ने' करके मिथ्यानुवाद किया गया और यह वाक्य बङ्गाल में विधवाओं के जलने की आधुनिक रीति का प्रमाण दिया गया है। प्रोफ़ेसर मेक्समूलर कहते हैं कि "यह इस बात का कदाचित सब से

निन्दित उदाहरण है कि अशंकित प्रोहितों द्वारा क्या-क्या बातें हो सकती हैं। केवल एक छिन्न भिन्न किए हुए, मिथ्यानुवादित और मिथ्याप्रयुक्त वाक्य के प्रमाण पर हजारों जीव आहुति दिए गए और इसीके कारण धर्मोन्मत्त राजविद्रोह भी हुआ चाहता था।"

अध्याय ६.

——:o:——

वैदिक धर्म ।

ऋग्वेद का धर्म सुप्रख्यात है-वह प्रधानतः बड़े गम्भीर और उच्च रुप में प्रकृति की पूजा है। वह आकाश जो चारो ओर घेरे हुए है, वह सुन्दर और विकसित प्रभात जो काम काजी गृहिणी की नांई मनुष्यों को नींद से जगा कर उनके कामों पर भेजता है, वह चमकीला उष्ण सूर्य जो पृथ्वी को सजीव करता है, वह वायु जो संसार भर में व्याप्त है, वह अग्नि जो हम लोगों को प्रसन्न और सजीव करती है, और वे प्रचण्ड आंधियं जो भारतवर्ष में भूमि को उपजाऊ करनेवाली वृष्टि का आना प्रगट करती हैं-येही सब देवता थे जिनकी प्राचीन हिन्दू लोग पूजा करते थे। और जब कोई प्राचीन ऋषी श्रद्धा और भक्ति के साथ इन देवताओं में से किसी एक की स्तुति करने लगाता था तो वह बहुधा उस समय यह भूल जाता था कि इस एक देवता के अतिरिक्त और कोई देवता भी है। इसलिये उसके उक्त सूक्तों में सृष्टि के एक मात्र ईश्वर की स्तुति के उत्कर्ष और लक्षण पाए जाते हैं। यही कारण है कि बहुत से विद्वान वैदिक धर्म को अद्वैतवादी कहने में बहुधा रुकते और हिचकिचाते हैं। वास्तव में ऋषी लोग बहुधा प्रकृति-पूजा से ऊंचे और गूढ़ विचारों की ओर गए हैं और उन लोगों ने साफ़ साफ़ कहा है कि भिन्न भिन्न देवता लोग केवल एक ही आदिकारण के भिन्न भिन्न रूप अथवा नाम हैं। उन लोगों ने प्रकृति-पूजा और अद्वैतवाद के बीच की सीमा को उल्लंघन कर डाला है और ऋग्वेद के बड़े बड़े ऋषी लोग प्रकृति से प्रकृति के देवताओं की ओर बढ़े हैं।

आकाश स्वभावतः ही पूजा की सब से मुख्य वस्तु थी। और आकाश के भिन्न भिन्न रूप धारण करने के कारण उसे भिन्न भिन्न नाम दिए गए थे और इसी लिये भिन्न भिन्न देवताओं की कल्पना की गई थी। इनमें से सबसे प्राचीन कदाचित 'द्यु' (जिसका अर्थ 'चमकता हुआ' है) है, जो कि ग्रीक लोगों का जीउस, रोमन लोगों के जुपिटर का प्रथम अक्षर ('जु'), सेकसन लोगों का टिउ, और जर्मन लोगों का जिओं है। बहुत सी आर्य भाषाओं में इस नाम के मिलने से ऐसा ज्ञान पड़ता है कि इन सब जातियों के पूर्व पुरुषा लोग अपने प्रथम प्राचीन निवासस्थान में इस देवता की पूजा करते थे।

परन्तु यद्यपि ग्रीस और रोम देश के देवताओं में जीउस और जुपिटर प्रधान रहे, परन्तु भारतवर्ष में उसकी स्थिति शीघ्र ही जाती रही और आकाश की अपनी एक विशेष शक्ति ने उसका स्थान ग्रहण किया। क्योंकि भारतवर्ष में नदियों की वार्षिक बाढ़, पृथ्वी का उपजाऊपन, और फ़सिल का अच्छा होना, हम लोगों के ऊपर चमकने वाले आकाश पर निर्भर नहीं है वरन् बरसने वाले मेघ पर निर्भर है। अतएव इन्द्र जिसका अर्थ 'वृष्टि करने वाला' है, वैदिक देवताओं में शीघ्र ही प्रधान हो गया।

अकाश का एक दूसरा नाम वरुण था, जो कि ग्रीक लोगों का 'उरेनस' है। इस शब्द का अर्थ 'ढांकना' है, और वरुण, वह आकाश, कदाचित बिना प्रकाश का अथवा रात्रि का आकाश— था जो पृथ्वी को ढांके हुए है, क्योंकि दिन के उज्वल आकाश के लिये हम लोगों को एक दूसरा शब्द 'मित्र' मिलता है, जो कि ज़ंदवस्ता का 'मिथ्र' है। संस्कृत भाष्यकार लोग स्वभावतः ही वरुण को रात्रि और मित्र को दिन बतलाते हैं और इरानी लोग मिथ्र के नाम से सूर्य को पूजते हैं और 'वरुण' को यदि आकाश नहीं तो एक सुखमय लोक कहते हैं।

इन सब बातों से प्रगट होता है कि आकाश के देवता वरुण का नाम और उसकी कल्पना आर्य जातियों के पूर्व पुरुषों को उनके

अलग होकर यूनान, फारस और भारतवर्ष में जाने के पहिले से ज्ञात थी। वास्तव में प्रख्यात जर्मन विद्वान डाक्टर राथ का मत है कि हिन्दू-आर्य और ईरानियों के जुदा होने के पहिले वरुण उन लोगों के देवताओं में सब से श्रेष्ठ और पवित्र था और उनके धर्म के आध्यात्मिक अंश को निरूपण करता था। उनके अलग होने के पीछे यह साधुवृत्त का देवता ईरानियों का परम देवता 'अहुरमज्द' हो गया और भारतवर्ष में यद्यपि वरुण ने देवताओं में अपना प्रधान स्थान युवा और प्रबल वृष्टि के देवता इन्द्र को दे दिया परन्तु फिर भी उसने उस पवित्रता को कदापि नहीं खोया जो उसकी पहिली कल्पना में वर्तमान थी और ऋग्वेद के सबसे पवित्र सूक्त उसीके हैं, न कि इन्द्र के। यह सम्मति चाहे जैसी हो, परन्तु ऋग्वेद में वरुण की प्रधान पवित्रता तो अस्वीकार नहीं की जा सकती और इसके उदाहरण के लिये हम वरुण के सूक्तों में से कुछ का अनुवाद देते हैं—

"(६) हे वरुण! जो चिड़ियां उड़ती हैं उन्होंने तुम्हारा बल या तुम्हारी शक्ति नहीं पाई है। निरन्तर बहने वाला पानी और चलती हुई हवा भी तुम्हारी गति का मुकाबला नहीं कर सकते।

"(७) निष्कलंकित शक्ति का राजा वरुण आकाश में रहता है और ऊपर प्रकाश की किरणों को पकड़े रहता है। ये किरणें नीचे की ओर उतरती हैं, परन्तु आती हैं ऊपर ही से। उनसे हमारा जीवन बना रहे।

"(८) राजा वरुण ने सूर्य की परिक्रमा के लिये मार्ग फैला दिया है। उसने मार्ग रहित आकाश में सूर्य के लिये मार्ग बना दिया है। वह हमारे उन शत्रुओं को निन्दित करे जो कि हमारे हृदय को दुखित करते हैं।

"(९) हे राजा वरुण! सैकड़ों, हजारों जड़ी बूटी तेरी हैं। तेरी दया अधिक और विस्तृत हो। हम लोगों से पाप को दूर रख। जो पाप हमने किए हैं उनसे हमारा उद्धार कर।

"(१०) वे सब तारे * जो कि ऊपर स्थित हैं और रात को दिखाई देते है, दिन में कहां चले जाते हैं? वरुण के कार्य अनिवार्य हैं, चन्द्रमा उसी की आज्ञा से शोभायमान होकर चमकता है।" (१, २४)

"(३) हे वरुण! मैं उत्सुक हृदय से तुझसे अपने पापों के विषय में पूछता हूँ। मैं पण्डितों के पास इसकी पूछपाछ के लिये गया हूँ। सब पण्डितों ने मुझसे यही कहा है कि वरुण तुझसे अप्रसन्न हैं।

"(४) हे वरुण! मैंने ऐसा क्या किया है कि जिससे तू अपने मित्र, अपने पूजने वाले को नाश किया चाहता है? हे महाशक्तिमान्, तू मुझे इसका वृत्तान्त कह जिसमें कि मैं तुझे शीघ्र दण्डवत करूँ और तेरी शरण आऊँ।

"(५) हे वरुण! हमलोगों का हमारे पितरों के पापों से उद्धार कर, जो पाप हमलोगों ने स्वयं किये हैं उनसे हमारा उद्धार कर। हे वरुण, वशिष्ट का उद्धार कर जैसे एक बछड़े का रस्सी से और

---

* यहां पर "रिक्ष" शब्द आया है जिसका अभिप्राय या तो नक्षत्र मात्र से अथवा सप्तर्षि के नक्षत्र से भी हो सकता है। 'रिच' धातु का अर्थ 'चमकना' है। अतएव समय पाकर 'रिक्ष' शब्द का दो अर्थ हो गया अर्थात् एक तो किसी विशेष नक्षत्रपुंज के चमकते हुए तारे और दूसरे एक जानवर जिसकी चमकीली आँखें और चमकते हुए चिकने बाल होते हैं। इन दोनों अर्थों के स्वाभाविक गड़बड़ से स्वयम् वे नक्षत्र ही 'रिक्ष' कहलाने लगे। इस विषय पर मेक्समूलर साहब ने अपनी बनाई Science of Language नामक पुस्तक में बहुत स्पष्टता और पाण्डित्य के साथ विचार किया है। वे कहते हैं कि "बहुतेरे विचारवान पुरुषों ने जो इस बात पर आश्चर्य करते रहे हैं कि इन सातों नक्षत्रों का नाम रिक्ष क्यों रक्खा गया उनका समाधान मनुष्य की पहिले की भाषा पर ध्यान देने से हो जाता है।"

चोर का जिसने एक चुराए हुए जानवर का भोजन किया है उद्धार होता है।

"(६) हे वरुण! ये सब पाप हमने जान बूझ कर नहीं किये हैं। भूल, मद्य, क्रोध, द्यूत, अथवा अविचार से पाप होते हैं। एक बड़ा भाई भी छोटे को कुमार्ग पर लगाता है। स्वप्नों में पाप होता है।

"(७) पाप से मुक्त हो कर दास की भांति मैं उस वरुण की सेवा करूंगा जो हमारे मनोरथों को पूरा करता और हमें सहायता देता है। हम अज्ञ हैं। आर्य देवता हमें ज्ञान दें। बुद्धिमान देवता हमारी प्रार्थना स्वीकार करें और हमें धन दें।" (७,८६)

"(१) हे वरुण राजा, मैं कभी भौमिक गृह में न जाऊं। हे महद्शक्ति, दया कर, दया कर।

"(२) हे शस्त्र सज्जित वरुण, मैं कांपता हुआ आता हूं जैसे वायु के आगे मेघ आता है। हे महद्शक्ति, दया कर, दया कर।

"(३) हे धनी और पवित्र वरुण, दृढ़ता के अभाव से मैं सत् कर्मों से विमुख रहा हूं। हे महद्शक्ति, दया कर, दया कर।

"(४) तेरी पूजा करने वाला पानी में रह कर भी प्यासा रहा है। हे महद्शक्ति, दया कर, दया कर।

"(५) हे वरुण, हम नाशवान हैं। जिस किसी तरह हमने देवताओं के विरुद्ध पाप किया हो, जिस किसी भांति हमने अज्ञान से तेरा काम न किया हो—इन पापों के लिये हमें नष्ट न कर।" (७,८९)

इन तथा और अनेक सूक्तों से विदित होता है कि भारतवर्ष में वरुण की वह पवित्र भावना अपहरण नहीं हो गई जिससे कि उसकी आदि में पूजा की जाती थी। परन्तु फिर भी द्यु की नाईं वरुण का प्रभाव युवा इन्द्र के सामने हट गया। यह इन्द्र विशेषतः भारतवर्ष ही का देवता है, अन्य आर्य जातियों में इस देवता का पता नहीं चलता।

इन्द्र के विषय की एक बड़ी प्रसिद्ध कथा, जो कि आर्य संसार में कदाचित सबसे अधिक प्रसिद्ध है, वृष्टि करने के सम्बन्ध की

है। वे काले घने बादल जिन्हें मनुष्य उत्कण्ठा से देखते है परन्तु जो उन्हें अकाल में बहुधा निराश करते हैं, उन्हें "वृत्र" का प्राचीन नाम दिया गया है।

ऐसी कल्पना की जाती है कि वृत्र जल को रोक लेता है और नीचे नहीं आने देता जब तक कि आकाश या वृष्टि का देवता इन्द्र इस दुष्ट को अपने वज्र से न मारे। तब यह रुका हुआ जल अनेक धाराओं में नीचे आता है। नदियां शीघ्रही बढ़ने लगती हैं और मनुष्य और देवता लोग प्रकृति की इस बदली हुई आकृति से प्रसन्न होते हैं। ऋग्वेद में बहुत से उत्तेजित सूक्त हैं जिनमें इस युद्ध का वर्णन बड़ी प्रसन्नता और हर्ष के साथ किया गया है। इस युद्ध में आंधी के देवता मरुत्स इन्द्र की सहायता करते हैं और गरजने के शब्द से पृथ्वी और आकाश कांपने लगते हैं। वृत्र बहुत देर तक युद्ध करता है और तब गिर कर मर जाता है, अकाल का अन्त हो जाता है और वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

हम कह आये हैं कि इन्द्र विशेषतः भारतवर्ष ही का देवता है और अन्य आर्य जातियां इसे नहीं जानतीं। परन्तु ऊपर की कथा और वृत्र का नाम भिन्न भिन्न आर्य जातियों में भिन्न भिन्न रूप से पाया जाता है। वृत्रघ्न अथवा वृत्र का मारने वाला, जन्दवस्ता में 'वेरेथ्रघ्न' के नाम से पूजा गया है और इसी पुस्तक में अहि (जो कि वेद में वृत्र का दूसरा नाम है) के नाश होने का भी वृत्तान्त दिया है। अहि का मारने वाला थ्रेयेतन है। प्रसिद्ध फरासीसी विद्वान बर्नोफ ने अपनी बुद्धि से इस बात का पता लगाया है कि यह थ्रेयेतन फ़र्दौसी के शाहनामे का 'फ़रुद्दीन' है। कदाचित् पाठकों को यह जान कर और भी आश्चर्य होगा कि विद्वानों ने वेद और अन्दवस्ता के इस अहि का पता यूनानी पुराण के 'एचिस' और 'एशिड्ना' नामक परवाले सांप में पाया है। एशिड्ना की सन्तान ओरथ्रोस (Orthros) में उन लोगों ने हमारे वृत्र अथवा मेघ को पहिचान लिया है और इसलिये ओथ्रोस का मारनेवाला हर्क्युलीज़ अन्दवस्ता के थ्रेयेतन अथवा ऋग्वेद के इन्द्र का समगुणापन्न है।

इन कथाओं का बढ़ाना बहुत सहज होगा परन्तु स्थानाभाव से हम ऐसा नहीं कर सकते। इसलिये हम यहां एक और कथा का, अर्थात् रात्रि के अन्धकार के पीछे इन्द्र द्वारा पूरे प्रकाश के आने की कथा का साधारणतः उल्लेख करेंगे। प्रकाश की किरणों की उन पशुओं से समानता की गई है जिन्हें अन्धकार की प्रबलता ने चुरा लिया है और जिनकी खोज इन्द्र (आकाश) व्यर्थ कर रहा है। वह सरमा अर्थात् प्रभात को उनकी खोज के लिये भेजता है और सरमा उस विलु अर्थात् किले को पा लेती है जिसमें कि पनिस अर्थात् अन्धकार की प्रवलता ने पशुओं को चुरा रक्खा है। पनिस सरमा को ललचाता है लेकिन उसका ललचाना सब व्यर्थ हुआ। सरमा इन्द्र के पास लौट कर आई, इन्द्र ने अपनी सेना सहित कूच किया और उस किले को नष्ट करके वह पशुओं को ले आया—अन्धकार दूर होगया और अब प्रकाश होगया। यह एक प्रसिद्ध वैदिक कथा है और इन्द्र के सूक्तों में इसके बराबर उल्लेख आए हैं।

प्रोफ़ेसर मेक्समूलर इस बात का समर्थन करते हैं कि ट्राय का युद्ध इसी सीधी सादी वैदिक कथा को बढ़ा कर लिखा गया है और यह केवल उसी युद्ध की पुनरुक्ति है जो नित्यप्रति पूर्व दिशा में सूर्य द्वारा हुआ करती है जिसका कि अति दीप्तिमान धन प्रति दिन सन्ध्या को पश्चिम दिशा में छीन लिया जाता है। उक्त प्रोफ़ेसर साहब के अनुसार इलिअम (Ilium) ऋग्वेद का विलु अर्थात् किला अथवा गुफा है, पेरिस (Paris) वेद का पनिस है जो कि ललचाता है और हेलेना (Helena) वेद की सरमा है जो कि वेद में लालच को रोकती है परन्तु यूनानी पुराण में लालच में आ जाती है।

हम यह नहीं कह सकते कि मेक्समूलर ने अपने सिद्धान्त को प्रमाणित कर दिया है परन्तु ट्राय के ऐतिहासिक मुहासारे का होना इस बात का खण्डन नहीं करता, क्यों कि प्राचीन समय के इतिहास में पौराणिक नामों और घटनाओं को बहुत करके ऐतिहासिक घटनाओं से मिला देते थे। कुरु और पाञ्चालों के ऐति-

हासिक युद्ध का नायक अर्जुन कल्पित है और यह वृष्टि के देवता इन्द्र का दूसरा नाम है। अतएव यह असम्भव नहीं है कि जिस कवि ने वृत्र के ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन किया है उसने इसकी घटनाओं और नामों में सौर्य कथाओं को मिला दिया हो। अब हम इन कथाओं को स्पष्ट दिखाने के लिये ऋग्वेद से कुछ थोड़े से वाक्य उद्धृत करेंगे—

"(१) हम उन वीरोचित कार्यों का वर्णन करेंगे जिन्हें कि वज्र धारण करने वाले इन्द्र ने किया है। उसने अहि का नाश किया और पानी बरसाया और पहाड़ी नदियों के बहने का मार्ग खोल दिया।

"(२) इन्द्र ने पहाड़ों पर विश्राम करते हुए अहि को मार डाला, त्वष्टि ने उसके लिये दूर तक पहुंचने वाले वज्र को बनाया था। पानी की धाराएं समुद्र की ओर इस भांति बहने लगीं जैसे गाय उत्सुक हो कर अपने बछड़ों की ओर दौड़ती हैं।

"(३) सांड़ की नाईं कुपित होकर इन्द्र सोम रस को पी गया। उसको तीनों यज्ञों में जो द्रव पदार्थ चढ़ाए गए उन्हें उसने पिया। तब उसने वह वज्र लिया और उससे सबसे बड़े अहि को मार डाला।

"(४) जब तुमने सबसे बड़े अहि को मारा उस समय तुमने चतुर उपाय रचने वालों की युक्तियों का नाश कर दिया। तुमने धूप, प्रभात तथा आकाश को साफ कर दिया और किसी शत्रु को छोड़ नहीं रक्खा।

"(५) इन्द्र ने अपने सर्वनाशी वज्र से अन्धकार करने वाले वृत्र (बादल) को मार डाला और उसके हाथ पैर काट डाले। अहि अब पृथ्वी पर इस तरह से पड़ा है जैसे कोई कुठार से गिराए हुए पेड़ का धड़।

"(६) घमण्डी वृत्र ने समझा कि हमारी बराबरी का कोई नहीं है और उसके नाश करने वाले तथा विजयी इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु वह मृत्यु से नहीं बचा और वह इन्द्र का शत्रु गिरा और उसके गिरने से नदियां नष्ट हो गईं।

"(८) प्रसन्नचित्त पानी उसके पड़े हुए शरीर के ऊपर से कूदता हुआ इस भांति बह रहा है जैसे गिरे हुए तटों के ऊपर से नदियां बहती हों। वृत्र जब जीवित था तो उसने अपने बल से पानी को रोक रक्खा था। अहि अब उसी पानी के नीचे पड़ा हुआ है।

"(९) उसका शरीर निरन्तर बहते हुए चंचल पानी के नीचे अज्ञात छिपा पड़ा है और पानी उसके ऊपर बहता है। वह इन्द्र का शत्रु अब चिरकाल के लिये सो रहा है।" (१,३२)

ऊपर का सूक्त वृत्र की कथा के सम्बन्ध का है। अब हम एक दूसरा सूक्त उद्धृत करते हैं जो कि सरमा से सम्बन्ध रखता है—

(१) पनिस कहता है—"हे सरमा! तू यहां क्यों आई है? यह स्थान बहुत दूर है। जो पीछे की ओर देखेगा वह इस मार्ग से नहीं आ सकता। हम लोगों के पास क्या है कि जिसके लिये तू आई है? तू ने कितनी दूर यात्रा की है? तू ने रसा नदी को कैसे पार किया?।

(२) सरमा उत्तर देती है—"मैं इन्द्र की भेजी हुई हूँ। हे पनिस! तुमने जो बहुत से पशुओं को छिपा रक्खा है उनको प्राप्त करनाही मेरा उद्देश्य है। जल ने मेरी सहायता की है मेरे पार होने पर जल ने भय माना और इस प्रकार मैं रसा को पार करके आई।"

(३) पनिस—"वह इन्द्र किसके समान है जिसकी भेजी हुई तू इतनी दूर से आती है? वह किसके समान देख पड़ता है? (वे परस्पर कहते हैं —) इसको आने दो, हमलोग इसे मित्र भाव से स्वीकार करेंगे। इसको हमारी गायें लेलेने दो।"

(४) सरमा—"मैं किसी को ऐसा नहीं देखती जो उस इन्द्र को जीत सके जिसकी भेजी हुई मैं बहुत दूर से आती हूं। वही, सबको जीतने वाला है। बड़ी बड़ी नदियां उसके मार्ग को नहीं रोक सकतीं। हे पनिस! तुम निस्सन्देह इन्द्र से मारे जाकर नीचे गिरोगे।"

(५) पनिस—"हे सुन्दर सरमा! तुम आकाश के सब से दूर के ओर से आई हो। हम तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें यह सब गाय बिना झगड़ा किए हुए देदेंगे। दूसरा और कौन इन गायों को बिना झगड़ा किए हुए देदेता? हमलोगों के पास बहुत से चोखे हथियार हैं।

(६) पनिस—"हे सरमा! तुमको उस देवता ने धमका कर भेजा है इसलिये तुम यहां आई हो। हमलोग तुमको अपनी बहिन की नाई स्वीकार करेंगे। तुम लौट कर मत जाओ। हे सुन्दर सरमा, हम तुमको इन पशुओं में से एक भाग देंगे।"

(१०) सरमा—"मेरी समझ में नहीं आता कि तुम कैसा भाई और बहिन कहते हो। इन्द्र और अङ्गिरस के प्रवल पुत्र यह सब जानते हैं। जब तक ये पशु न प्राप्त हो जांय तब तक उन पर दृष्टि रखने के लिये उन्होंने मुझको भेजा है। मैं उन्हीं की रक्षा के लिये यहां आई हूं। हे पनिस! यहां से दूर, बहुत दूर भाग जाओ।"(१०,१०८)

जो थोड़े से वाक्य ऊपर उद्धृत किए गए हैं उनसे जान पड़ेगा कि इन्द्र के सूक्तों में बल और शक्ति की विशेषता पाई जाती है, जैसा कि वरुण के सूक्तों में सदाचार के भावों की विशेषता है। सच पूछिए तो इन्द्र वैदिक देवताओं में सब से प्रवल है जो कि सोम मदिरा का अनुरागी, युद्ध में प्रसन्नता प्राप्त करने वाला, अपने साथी मरुत्सों का नायक बन कर अनावृष्टि से लड़ने वाला, काले आदिवासियों से लड़ने वाले आर्य लोगों के दलों का नेता और पंजाब की पांचो नदियों के तट पर सब से उपजाऊ भूमियों को खोदने में उनका सहायक है। पृथ्वी और आकाश ने उसे शत्रुओं के दण्ड देने के लिये उत्पन्न किया है (३,४९,१)। यह बलवान बच्चा जब अपनी माता अदिति के पास आहार के लिये गया तो उसने उसकी छाती पर सोम का रस देखा और अपनी माता का दूध पीने के पहिले उसने सोम का ही पान किया (३,४८,२ और ३)। और यह बड़ा पान करने वाला तथा लड़ने वाला बहुधा इस विचार में पड़ जाता है कि वह यज्ञ में जाय जहां कि सोम रस उसे चढ़ाया

जाता है, अथवा घर पर रहे जहां कि एक सुन्दर पत्नी उसके निकट रहती है। (३,५३,४-६)

हमने यहां तक द्यु, वरुण, मित्र और इन्द्र का ऋग्वेद के मुख्य मुख्य आकाश के देवताओं की नांई वर्णन किया है। परन्तु ये सब देवता प्रकाश के देवता भी समझे जा सकते हैं, क्योंकि इन सब देवताओं की (कहीं कहीं पर वरुण की भी) कल्पना में आकाश के उज्वल प्रकाश का ध्यान आता है। परन्तु अब हम कुछ ऐसे देवताओं का वर्णन करेंगे जो साफ साफ सौर्य गुण सम्पन्न हैं और जिनमें से कुछ आदित्य (अर्थात् अदिति के पुत्र) के साधारण नाम से पुकारे जाते हैं। यह नाम ऋग्वेद की कथाओं में बड़ा अद्भुत है। इन्द्र शब्द इन्द् से निकला है जिसका अर्थ वृष्टि होना है और द्यु शब्द का अर्थ चमकना है, परन्तु 'अदिति' शब्द इन दोनों हीं से अधिक मिश्रित विचार रखता है। अदिति का अर्थ अभिन्न, अपरिमित और अनन्त है। यह कहा जा चुका है कि वास्तव में यह पहिला नाम है जिसे कि मनुष्य ने अनन्त को,—अर्थात् दृश्यमान अनन्त, वा उस अनन्त विस्तार को जो कि पृथ्वी, मेघ और आकाश से भी परे है—प्रगट करने के लिये गढ़ा था। यह बात देवता की कल्पना में पाई जाती है। इसीसे प्रगट होता है कि प्राचीन हिन्दुओं की सभ्यता और उनके विचारों में बहुत ही अधिक उन्नति हुई थी। दूसरी आर्य जातियों के देवताओं में ऐसा शब्द नहीं पाया जाता और यह अवश्य आर्यों के इस देश में बस जाने के उपरान्त गढ़ा गया होगा। जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर राथ के अनुसार इस शब्द का अर्थ अनादि और अनिवार्य सिद्धान्त अर्थात् ईश्वरी प्रकाश है।

ऋग्वेद में यह बात बहुत ही स्पष्ट है कि इस ईश्वरी प्रकाश के पुत्र, आदित्य लोग कौन हैं। म० २ सू० २७ में वरुण और मित्र के सिवाय जिनका कि उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, अर्यमन, भग, दक्ष और अंस का नाम दिया है। मं० ६ सू० ११४ तथा मं० १० सू० ७२ में आदित्यों की संख्या ७ कही गई है परन्तु उनका नाम नहीं लिखा गया। हम देख चुके हैं कि इन्द्र अदिति का एक

पुत्र कहा गया है। सवितृ अर्थात् सूर्य भी बहुधा आदित्य कहा गया है और इसी भांति पूषण और विष्णु भी, जो कि सूर्य के दूसरे नाम हैं। आगे चल कर जब वर्ष १२ महीनों में बांटा गया तो आदित्यों की संख्या १२ स्थिर की गई और वे बारहो महीने के सूर्य हुए।

ऋग्वेद में 'सूर्य' और 'सवितृ' ये दोनों सूर्य के नाम बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनमें से पहिला नाम ठीक वही काम देता है जो कि ग्रीक हेलिओस (Helios), लेटिन सोल (Sol) और ईरानी खुरशेद (Khorshed)। भाष्यकारों ने सवितृ और सूर्य में यह भेद किया है कि सवितृ ऊगते हुए अथवा बिना ऊगे हुए सूर्य को कहा है और सूर्य ऊगे हुए प्रकाशित सूर्य को कहा है। सूर्य की सोनहली किरणों का दृष्टान्त स्वभावतः ही हाथों से दिया गया है यहां तक कि हिन्दुओं के पुराणों में यह कथा भी हो गई है कि सवितृ का हाथ एक यज्ञ में जाता रहा और उसके स्थान पर उसको एक सोनहला हाथ लगाया गया। यही कथा जर्मन देश के पुराणों में भी दूसरे रूप में पाई जाती है जिसमें यह वर्णन है कि सूर्य देवता अपना हाथ एक बाघ के मुँह में रख कर हस्तरहित हो गया।

अब हम सूर्य के विषय का जो एक मात्र सूक्त उद्धृत करते हैं वह ऋग्वेद के सूक्तों में सब से अधिक प्रसिद्ध, अर्थात गायत्री या उत्तरकाल के ब्राह्मणों का सवेरे के समय का सूक्त है। परन्तु ऋग्वेद में ब्राह्मण लोग नहीं माने गए हैं, उस समय जाति भेद ही नहीं हुआ था और यह उत्कृष्ट सूक्त उन प्राचीन हिन्दुओं की जातीय सम्पत्ति थी जो कि सिन्ध के तटों पर रहते थे। हम मूल सूक्त को तथा डाक्टर विलसन के अनुसार उसके अनुवाद को नीचे देते हैं—

" तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् "

"हम लोग उस दिव्य सवितृ के मनोहर प्रकाश का ध्यान करते हैं जो हम लोगों को पवित्र कर्मों में प्रवृत्त करता है।"(३,६२,१०

पूषन उन गोपों का सूर्य है जो नए नए चरागाहों की खोज में घूमा करते थे। वह बकरों से जुते हुए रथों पर चढ़ कर चलता है, मनुष्यों और पशुओं की यात्रा अथवा भ्रमण में उनको मार्ग दिखाता है, और पशुओं के झुंडों को जानता है तथा उनकी रक्षा करता है। अतएव पूषन के सूक्तों में बहुधा बड़ी सरलता पाई जाती है। ऐसे कुछ सूक्तों का अनुवाद पहिले दिया जा चुका है।

विष्णु ने आज कल के हिन्दू धर्म में सर्वोच्च देवता होने के कारण ऐसा प्रधान स्थान पा लिया है कि आज कल के कट्टर हिन्दू उसे उसके वैदिक रूप में अर्थात् केवल एक सूर्य देवता की नाईं स्वीकार करने में स्वभावतः हिचकते हैं। परन्तु ऋग्वेद में वह ऐसा ही है और वैदिक देवताओं में वह बहुत ही तुच्छ देवता है, जिसका पद इन्द्र वा वरुण, सवितृ अथवा अग्नि से कहीं नीचा है। पौराणिक समय में अर्थात् ईसा के बहुत पीछे आकर विष्णु परमात्मा समझा जाने लगा, इसके पीछे वह ऐसा नहीं समझा जाता था। वेद में लिखा है कि विष्णु तीन पद में अर्थात् उगते हुए, शिरोबिन्दु पर तथा अस्त होते हुए आकाश को पार कर देता है। पुराणों में इस सादे रूपक की एक बड़ी लम्बी चौड़ी कथा बना डाली गई है।

सब पुरानी जातियों में अग्नि एक पूजने की वस्तु थी परन्तु भारतवर्ष में होमाग्नि सब से अधिक सत्कार की दृष्टि से देखी जाती थी। अग्नि के बिना कोई होम किया ही नहीं जा सकता था अतएव अग्नि देवताओं का आवाहन करने वाली कही जाती थी। वह 'यविष्ठ' अर्थात् देवताओं में सब से छोटी भी कही जाती थी क्यों कि हर बार होम के समय वह अरनी को रगड़ कर नए सिरे से उत्पन्न की जाती थी। इसी कारण से वह 'प्रमन्थ' अर्थात् रगड़ से उत्पन्न होने वाली भी कही गई है। *

* कोक्स साहब का मत है कि बहुत से ग्रीक और लैटिन देवताओं की उत्पत्ति अग्नि के संस्कृत नामों से हुई है। "अग्नि का जो 'यविष्ठ' नाम है वह किसी वैदिक देवता को नहीं दिया

ऋग्वेद के देवताओं में अग्नि का इतना बड़ा सत्कार है कि जब प्राचीन भाष्यकार यास्क ने वैदिक देवताओं की संख्या कम करके उनकी संख्या ३३ कर देने का यत्न किया तो उसने अग्नि को पृथ्वी का देवता रक्खा, इन्द्र अथवा वायु को अन्तरिक्ष का देवता, और सूर्य को आकाश का देवता रक्खा।

परन्तु ऋग्वेद में अग्नि केवल इस पृथ्वी ही पर की अग्नि नहीं है वरन् वह बिजली तथा सूर्य में की आग भी है और उस का निवास स्थान अदृश्य स्वर्ग में है। भृगु ऋषियों ने उसे वहां पाया, मातरिश्वन उसे नीचे ले आए और अथर्वन तथा अङ्गिरा लोगों ने जो कि सब से प्रथम यज्ञ करने वाले थे उसे इस पृथ्वी पर मनुष्यों के रक्षक की भांति स्थापित किया।

वायु ने वैदिक कवीश्वरों से कम सम्मान पाया है और उसके सम्बन्ध मे बहुत थोड़े सूक्त पाए जाते हैं परन्तु हम देख चुके हैं कि मरुत्स अर्थात् आंधी के देवताओं को बहुधा आवाहन किया गया है जिस का कारण सम्भवतः यह है कि वे अधिक भय उत्पन्न करते थे और यह ख्याल किया जाता है कि रुष्ट मेघों से वृष्टि प्राप्त करने में वे इन्द्र के साथी होते थे। जब वे अपने हरिण जुते हुए रथ पर सवार होकर चलते थे तो पृथ्वी कांपने लगती थी

गया परन्तु इस नाम को हम Hllenic Hesphaistos में पाते हैं। नोट—इस प्रकार से 'अग्नि' को छोड़ कर आग वा आग के देवताओं के और सब नामों को पश्चिम के आर्य लोग भी अपने साथ ले गए। हम लोग 'प्रमन्थ' को 'प्रोमिथिअस' के रूप में, 'भरण्यु' को 'फोरोनस' के रूप में और संस्कृत के 'उल्का' को लेटिन में 'वल्केनस' के रूप में पाते हैं।" Cox's Mythology of Aryan nations.

"आग का देवता 'अग्नि' लेटिन में इग्निस् (Ignis) और सालवोनियन लोगों में ओग्नि (Ogni) के रूप में पाया जाता है"
Muir's Sanskrit Texts.

और मनुष्य उनके शस्त्रों तथा उनके आभूषणों की चमक को बिजली के रूप में देखते थे परन्तु यह सब होने पर भी वे परोपकारी थे और मनुष्यों के हित के लिये अपनी माता पृश्नि (बादलों) के स्तन से बहुत सी वृष्टि दुहते थे।

रुद्र, जो कि एक भयानक देवता है, मरुत्स का पिता है, वह बड़ा कोलाहल करनेवाला है जैसा कि उसके नाम ही से प्रगट होता है, और यास्क और सायन भाष्यकारों ने उसका रूप अग्नि बतलाया है। अतएव डाक्टर राथ के इस कथन में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस ओर से शब्द करनेवाली अग्नि का, आंधियों के इस देवता का असिल अर्थ बिजली से है। ऋग्वेद में विष्णु की नाईं रुद्र भी एक छोटा सा देवता है और उसके सम्बन्ध में केवल बहुत थोड़े से सूक्त पाए जाते हैं। विष्णु ही की नाईं रुद्र ने भी उत्तरकाल में विख्याति प्राप्त की है और वह पुराणों की त्रिमूर्ति में से एक है, अर्थात् परमेश्वर का एक अंश है। कुछ उपनिषदों में काली, कराली, इत्यादि नाम अग्नि का भिन्न भिन्न प्रकार की लपटों के लिये आया है और श्वेत यजुस्संहिता में 'अम्बिका' रुद्र की बहिन कही गई है। परन्तु पुराणों में जब रुद्र ने अधिक स्पष्टता प्राप्त की तो ये सब नाम उसकी पत्नी के भिन्न भिन्न नाम कर दिए गए! अब हमको केवल इतना ही कहना है कि इनमें से किसी देवी का अथवा लक्ष्मी का (जो कि पौराणिक विष्णु की पत्नी है) नाम तक भी ऋग्वेद में नहीं है।

दूसरा देवता जिसका चरित्र पुराणों में बदल गया है 'यम' अर्थात् मृतकों का देवता है। पुराणों में वह सूर्य का पुत्र कहा गया है और इस बात के विचारने के कुछ कारण हैं (जिन्हें प्रोफ़ेसर मेक्समूलर अपने स्वाभाविक फ़साहत से वर्णन करते हैं) कि ऋग्वेद में यम की आदि कल्पना अस्त होते हुए सूर्य से की गई है। सूर्य उसी तरह अस्त हो कर लोप हो जाता है जैसे कि मनुष्य के जीवन का अन्त हो जाता है। किसी सीधी सादी जाति का विचार सहज ही में एक भविष्यत लोक में विश्वास करने लगेगा

जहां कि यह देवता मरे हुए प्राणियों की आत्माओं पर अधिष्ठान करता है।

ऋग्वेद के अनुसार विवस्वत अर्थात् आकाश यम का पिता है, सरण्यु अर्थात् प्रभात उसकी माता, और यमी उसकी बहिन है।

आकाश और प्रभात का पुत्र सिवाय सूर्य अथवा दिन के और कौन हो सकता है? यम और यमी की आदि कल्पना दिन और रात से है, इस विचार का विरोध करना कठिन है। ऋग्वेद में एक अद्भुत वर्णन है जिसमें कि कामी बहिन यमी, यम से अपने पति की नाईं आलिंगन किया चाहती है परन्तु उसका भाई ऐसे अपवित्र समागम को स्वीकार नहीं करता। इस बात के तात्पर्य को समझ लेना बहुत कठिन नहीं है। दिन और रात यद्यपि सदा एक दूसरे का पीछा किया करते हैं परन्तु उनका परस्पर समागम नहीं हो सकता।

परन्तु यम की असिल कल्पना चाहे जो कुछ हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऋग्वेद में भी इस देवता ने एक अलग रूप प्राप्त करालिया है अर्थात् उसमें वह मृतकों का राजा है। यहां तक तो उसका वैदिक चरित्र उसके पौराणिक चरित्र से मिलता है परन्तु इसके आगे इस समानता का अन्त हो जाता है। वेद में वह उस सुखी लोक का परोपकारी राजा है जहां कि पुण्यात्मा लोग मृत्यु के उपरान्त रहते और सुख भोगते हैं। तेजवान शरीर धारण करके वे लोग प्रकाश तथा चमकीले पानियों के प्रदेश में यम के अगल बगल बैठते हैं, वहां अनन्त सुख भोगते हैं और यहां इस पृथ्वी पर उनकी पूजा 'पितरों' के नाम से की जाती है। परन्तु पुराण में यम का जो वर्णन पापियों के निष्ठुर और भयानक दण्ड देनेवाले की नाईं किया गया है वह वेद से कितना विपरीत है!

"(१) विवस्वत के पुत्र यम की पूजा भोगादि सहित करो। सब लोग उसीके पास जाते हैं। जिन लोगों ने पुण्य किया है उन्हें वह सुख के देश में ले जाता है। वह बहुतों के लिये मार्ग कर देता है।

"(२) यम ही ने पहिले पहिल हम लोगों के लिये मार्ग खोजा। वह मार्ग अब नष्ट नहीं होगा। सब जीवधारी लोग अपने कर्म के अनुसार उसी मार्ग से जांयगे जिससे कि हमारे पितर लोग गए हैं।" (१०, १४)

हम यहां पर सोम के विषय का भी एक सूक्त उद्धृत करेंगे जिसमें कि परलोक का इससे अधिक वर्णन दिया है। यह बात तो भली भांति विदित है कि सोम एक पौधे का रस था और वह यज्ञों में तर्पण के काम में आता था। सोम ने शीघ्रही देवता का पद प्राप्त कर लिया और नवें मण्डल के सब सूक्त उसी की स्तुति और प्रशंसा में बनाए गए हैं।

"(७) हे बहते हुए सोम! मुझे उस अमर और नाश न होने वाली भूमि में ले चलो जहां सदा प्रकाश वर्तमान रहता है और जो स्वर्ग में है। हे सोम! इन्द्र के लिये बहो।

"(८) मुझे वहां ले चलो जहां का राजा यम है, जहां स्वर्ग के फाटक हैं और जहां बड़ी बड़ी नदियां बहती हैं। मुझे वहां ले चल कर अमर बना दो। हे सोम! इन्द्र के लिये बहो।

"(९) मुझे वहां ले चलो जहां कि तीसरा स्वर्ग है,जहां आकाश के ऊपर प्रकाश का तीसरा लोक है और जहां मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार घूम सकते हैं। मुझे वहां ले चलो और अमर बना दो। हे सोम! तुम इन्द्र के लिये बहो।

"(१०) मुझे वहां ले चलो जहां कि सब इच्छाएं तृप्त हो जाती हैं, जहां ब्रध्न का निवासस्थान है और जहां भोजन और सन्तोष है। मुझे वहां लेचलकर अमर बना दो। हे सोम! तुम इन्द्र के लिये बहो।

"(११) मुझे वहां लेचलो जहां कि सुख, हर्ष और सन्तोष हैं जहां उत्सुक हृदय की सब इच्छाएं तृप्त होजाती हैं। मुझे वहां लेचलो और अमर बनाओ। हे सोम! तुम इन्द्र के लिये बहो।" (९,११३)।

हम ऊपर कह चुके हैं कि विवस्वत अर्थात् आकाश और सरण्यु अर्थात् प्रभात से यम और यमी ये दो सन्तान हुए। लेकिन यह एक अपूर्व बात है कि उन्हीं दोनों माता पिता से और एक यमज अर्थात् दोनों अश्विन हुए। इसमें संदेह नहीं हो सकता कि यम और यमी की नाईं इन दोनों की भी असिल कल्पना दिन और रात से अथवा प्रभात और सन्ध्या से हुई है।

परन्तु अश्विनों की असिल कल्पना चाहे जो कुछ हो पर ऋग्वेद में हम उन्हें बड़े भारी वैद्य पाते हैं जो कि रोगियों और घायलों की औषधि करनेवाले और बहुतों का बड़ी मेहरबानी के साथ उपचार करनेवाले वर्णन किए गए हैं। दोनों अश्विनों के बहुत से दयालु कार्यों का कई सूक्तों में वर्णन किया गया है और उन्हीं चिकित्साओं का बार बार उल्लेख है। ये दोनों अश्विन अपने तीन पहिये वाले रथ पर सवार होकर पृथ्वी की परिक्रमा प्रति दिन करते हैं और दुखी लोगों का उपकार करते हैं।

बृहस्पति अथवा ब्रह्मनस्पति सूक्तों के स्वामी हैं क्योंकि ऋग्वेद में ब्रह्मन का अर्थ सूक्त से है। इस देवता की कल्पना की उत्पत्ति उसी तरह हुई जिस तरह कि अग्नि और सोम देवताओं की कल्पना की उत्पत्ति हुई। जिस प्रकार से अग्नि और यज्ञ के हवन में शक्ति है उसी प्रकार स्तुति के सूक्तों में भी शक्ति है और स्तुति की इस शक्ति का रूप वैदिक देवता ब्रह्मनस्पति में कर दिया गया है।

ऋग्वेद में वह बिलकुल छोटा सा देवता है परन्तु उसका भविष्यत बहुत ऊंचा है क्योंकि कई शताब्दियों के पीछे उपनिषदों के तत्वज्ञों ने एक सर्वव्यापक परमात्मा की कल्पना की और उस को वैदिक नाम "ब्रह्मन" दिया। उसके उपरान्त जब देश में बौद्धमत फैला तब बौद्धमतवालों ने अपने देवताओं में 'ब्रह्मा' को एक कोमल और उपकारी देवता की नाईं रक्खा। और फिर जब पौराणिक हिन्दूधर्म ने भारतवर्ष में बौद्ध मत को दबा दिया तो पौराणिक काल के तत्वज्ञों ने सारे विश्व के रचने वाले को 'ब्रह्मा' का नाम दिया। इस प्रकार से अपनी जातीय पुस्तकों की

सब से पुरानी बातों के देखने से हमको पुराणों की उन चट-कीली भड़कीली कथाओं की उत्पत्ति के सीधे सादे कारण मालूम होते हैं जिन्होंने कि एक हजार वर्ष से ऊपर हुए कि हमारे करोड़ों देश भाइयों और देश भगिनियों के विश्वास और आचरण पर अपना प्रभुत्व जमाया है। यह कार्य उसी तरह का है जैसा कि हमारे भारतवर्ष की किसी ऐसी नदी के सोते का पता लगाना है जो कि अपने मुहाने के निकट कई मील तक फैली हुई हो परन्तु जो अपने सोते के पास केवल एक छोटी सी परन्तु साफ़ और चमकीली धारा से अनादि पहाड़ों से निकल रही हो ! काल पाकर विचार भी उसी तरह बढ़ कर परिपक्व होजाते हैं जैसे कि नदियां अपने मार्ग में नया पानी पाकर बढ़ती जाती हैं यहां तक कि वे अपने पहिले रूप को बिलकुल ही खो देती हैं यद्यपि उनका नाम वही रहता है । हम वैदिक ब्रह्मन । वैदिक विष्णु । वैदिक सूर्य और वैदिक रुद्र को पुराण के विश्वकर्ता, पालक और संहारक के रूप में उसी भांति नहीं पहिचान सकते जैसे कि हम हरिद्वार की चमकीली छोटी धारा को गङ्गा के उस समुद्रवत फैलाव मे नहीं पहिचान सकते जो कि उसके बङ्गाल की खाड़ी में मिलने के स्थान पर है।

ये ऋग्वेद के मुख्य देवता हैं। देवियों मे केवल दो हैं जिन्होंने कि कुछ स्पष्ट रूप पाया था अर्थात् उषस् वा प्रभात, और सर-स्वती जो कि इस नाम की नदी थी परन्तु पीछे से वाग्देवी हुई।

ऋग्वेद में प्रभात से सुन्दर और कोई कल्पना नहीं है। प्रभात के सम्बन्ध में जो सूक्त हैं उनसे अधिक वास्तविक कवितामय सूक्त वेद भर में कोई नहीं है और किसी प्राचीन जाति के सांगीत काव्य में इससे अधिक मनोहर कोई वस्तु नहीं पाई जाती। यहां पर हम इस सम्बन्ध के केवल कुछ सूक्त उद्धृत करसकते हैं ।

"(२०) हे अमर उषस् ! तू हमारी प्रार्थना की अनुरागिनी है। तुझे कौन जानता है ! हे तेजस्वनी, तू किसपर दयालु है ?

"(२१) हे दूर तक फैली हुई नाना रंगों की चमकीली उषस् !

हम लोग तेरा निवास स्थान नहीं जानते, चाहे वह निकट हो वा दूर।

"(२२) हे आकाश की पुत्री ! इन भेंटों को स्वीकार कर और हमारे सुखों को चिरस्थायी कर।" (१,३०)

"(७) आकाश की वह पुत्री जो युवती है, श्वेत वस्त्र धारण किए है और सारे सांसारिक खजाने की मालिक है, वह अन्धकार को दूर करके हम लोगों को प्रकाश देती है। हे शुभ उषस् ! इस स्थान पर हम लोगों पर प्रकाश कर।

"(८). जिस मार्ग से बहुतेरे प्रभात बीत गए हैं और जिस मार्ग से अनन्त प्रभात आने वाले हैं उसी मार्ग से चलती हुई तेजस्विनी उषस् अन्धकार को दूर करती है और जो लोग मृतकों की नाईं नींद में बेखबर पड़े हैं उन सब को जीवित कर के जगाती है।

"(१०) कितने दिनों से बराबर प्रभात होता रहा है और कितने दिनों तक वह बराबर होता रहेगा ? आज का प्रभात उन सब का पीछा करता है जो कि बीत गए हैं, आगामी प्रभात आज के चमकीले उषस का पीछा करेगा।

"(११) जिन प्राणियों ने प्राचीन उषस् को देखा था वे अब नहीं हैं, हम लोग उसे इस समय देखते हैं, और हमारे उपरान्त भी लोग होंगे जो कि भविष्यत में उसे देखेंगे।" (२,११३)

"(४) अहना धीरे से सब के घर में प्रवेश करती है। वह फैलने वाली प्रभा आती है और हम लोगों को आशीर्वाद दे कर हमरी भेंट स्वीकार करती है।

"(११) अपनी माता के द्वारा सिंगारी हुई दुलहिन की नाईं शोभाय मान हो कर तू अपना शरीर प्रगट करती है ! हे शुभ उषस् ! इस आच्छादित अन्धकार को दूर कर; तेरे सिवाय और कोई इसे छिन्न भिन्न नहीं कर सकता।" (१,१२३)

प्रभात बहुत से नामों से विख्यात था और इनमें से बहुत से नाम तथा उनके सम्बन्ध की कथाओं को हिन्दू लोग अपने आदि

निवास से ले आए थे क्योंकि इन नामों के सामानार्थवाची शब्द तथा इनमें से बहुत सी कथाओं की पुनरुक्ति भी यूनानी पुराण में पाई जाती हैं। उषस को हम यूनानी भाषा में इओस (Eos) और लेटिन भाषा में अरोरा (Aurora) के नाम से पाते हैं। भाषातत्ववेत्ताओं के अनुसार अर्जुनी वही है जो कि यूनानी अर्जिनोरिस् (Argynoris), बृसया, यूनानी ब्रिसेइस (Briseis) और दहना यूनानी दफ़ने (Daphne) है। सरमा, ध्वनि के अनुसार वही है जो कि यूनानी लोगों की हेलेना (Helena) । यम और अश्विनी की माता सरण्यु यूनानी में एरिनिस् (Erinys) है, और अहना प्रसिद्ध देवी एथिना (Athena) है।

हम सरण्यु की कथा का उल्लेख ऊपर ही कर चुके हैं कि वह अपने पति विवस्वत के यहां से निकल गई और तब उसने दोनों अश्विनों को जना। यही कथा हम ग्रीक लोगों में भी पाते हैं। उनका विश्वास है कि इरिनिस डेमेटर (Erinys Demeter) इसी भांति अपने पति के यहां से निकल गई थी और तब उसने एरिअन (Areion) और डेस्पोइना (Desposina) को जना था। दोनों कथाओं का आशय एक ही है। वह यह है कि जब दिन अथवा रात आती है तो प्रभात निकल भागती है। इसी आशय पर यूनान की एक दूसरी कथा की भी उत्पत्ति हुई है और इसकी उत्पत्ति का पता भी ऋग्वेद से लगता है। बहुत से स्थानों में (जैसे १, ११५, २ में) हम लोग सूर्य को प्रभात का पीछा करते हुए पाते हैं जिस तरह से कि कोई मनुष्य किसी स्त्री का पीछा करता हो। इसी तरह से यूनानी एपोलो (Apollo) दफ़ने का पीछा करता है यहां तक कि अन्त में उसका रुप बदल जाता है अर्थात् प्रभात का लोप हो जाता है।

सरस्वती, जैसा कि उसके नाम ही से प्रगट होता है, इस नाम की नदी की देवी थी। यह नदी इस कारण से पवित्र मानी जाती थी कि उसके तटों पर धार्मिक कार्य किए जाते थे और वहां पवित्र सूक्तों का उच्चारण किए जाते थे। परन्तु विचारों की स्वाभाविक प्रगति से यह देवी उन्हीं सूक्तों की देवी समझी जाने लगी

अर्थात् वह वाणी की देवी हो गई और इसी भाँति से उसकी अब भी पूजा की जाती है। वैदिक देवताओं में से केवल यही एक देवी है जिसकी पूजा कि भारतवर्ष में आज तक चली आती है। इस के और सब साथी अर्थात् दुर्गा, काली, लक्ष्मी, इत्यादि सब आधुनिक समय की रचना हैं।

ऋग्वेद की प्रकृति पूजा इस प्रकार की है। जिन देवताओं और देवियों की पूजा हमारे पुरखे लोग चार हजार वर्ष हुए कि सिन्धु के तटों पर करते थे वे इस प्रकार के थे। प्रकृति के देवताओं की कल्पना तथा जिस एक मात्र भक्ति के साथ उनकी पूजा की जाती थी उससे एक वीर जाति की सरलता तथा शक्ति प्रगट होती है और इससे उन लोगों की उन्नति तथा सविचारता भी प्रगट होती है जिन्होंने कि सभ्यता में बहुत कुछ उन्नति कर ली थी। वैदिक देवताओं की केवल कल्पना ही से एक उच्च भाव प्रगट होता है जिससे विदित होता है कि जिन लोगों ने इन देवताओं की कल्पना की होगी वे बड़े ही सदाचारी होंगे। एम० बार्थ साहब बहुत ठीक कहते हैं कि वैदिक देवता निकटवर्ती स्वामियों की नाईं हैं और वे मनुष्यों से अपने धर्म का उचित प्रतिपालन चाहते हैं। "लोगों को उनसे निष्कपट होना चाहिए, क्योंकि उनको धोखा नहीं दिया जा सकता। नहीं, स्वयम् वे भी किसी को धोखा नहीं देते अतएव यह उनका हक है कि वे मित्र, भाई और पिता की भाँति अपने ऊपर लोगों का विश्वास तथा प्रीति प्राप्त करें।...... मनुष्यों को बुरे होने की अनुज्ञा कैसे दी जा सकती है जब कि स्वयम् देवता लोग अच्छे हैं। सूक्तों में निस्सन्देह यह एक अ ुत बात है कि उनमें कोई दुष्ट प्रकृति के देवता नहीं पाए जाते, कोई नीच और हानिकारक बात नहीं पाई जाती......अत एव हम लोगों को यह स्वीकार करना चाहिए कि सूक्तों में एक उच्च और विस्तृत नीति की शिक्षा पाई जाती है और उनसे यह विदित होता है कि वैदिक कवीश्वरों को अदिति और आदित्यों के सामने निर्दोष होने का यत्न करने के सिवाय इस बात का भी ज्ञान था कि देवताओं को भेट चढ़ाने के सिवाय उनके और भी कर्तव्य थे।

ऋग्वेद में मनुष्यों के बनाए हुए ऐसे मन्दिरों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता जो कि पूजा के काम में लाए आते हों। इसके विरुद्ध प्रत्येक गृहस्थ, जो प्रत्येक घराने का मालिक था अपने घर ही में होमाग्नि प्रगट करता था और अपने घराने के सुख के लिये, बहुत से धन धान्य और पशु के लिये, रोग रहित रहने के लिये, और काले आदिवासियों पर जय पाने के लिये, देवताओं से वहीं प्रार्थना करता था। पुजारियों की कोई अलग जाति नहीं थी और न लोग धर्म पर विचार करने और इन सूक्तों को बनाने के लिये बनहीं में निकल जाया करते और वहां तपस्या करते थे। इसके विरुद्ध प्राचीन ऋषि लोग—अर्थात् वे सच्चे ऋषिलोग जिनका कि वर्णन ऋग्वेद में है और न कि वे कल्पित ऋषि जिनकी बनावटी कथाएं पुराणों में पाई जाती हैं—सांसारिक मनुष्य थे अर्थात् वे ऐसे मनुष्य थे जिनके पास अन्न और पशु के रुप में बहुत सा धन था, जोकि बड़े बड़े घरानों में रहते थे, समय पड़ने पर हल के बदले भाला और तलवार धारण करते थे और काले असभ्यों से सभ्यता के उन सुखों की रक्षा करते थे जिनको कि वे अपने देवताओं से मांगा करते थे और जिन्हे उन लोगों ने इतने कष्ट से प्राप्त किया था।

परन्तु यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ स्वयं पुजारी, योद्धा और कृषक तीनो ही होता था, फिर भी हम इस बात के प्रमाण पाते हैं कि राजा लोग बहुत करके ऐसे लोगों की सहायता से धर्मविधानों को करते थे जो लोग कि सूक्तों के गाने में विशेष निपुण होते थे, और इन लोगों को वे इस कार्य के लिये द्रव्य भी देते थे। जब हम ऋग्वेद के उत्तर काल के सूक्तों को देखते हैं तो हम इस प्रकार के पुजेरियों की प्रसिद्धि धन में बढ़ते हुए, सरदारों और राजाओं के यहां प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए, और पशु और रथों का पुरस्कार पाते हुए देखते हैं। हम कुछ घरानों को धार्मिक विधानों के करने में और सूक्तों के बनाने में विशेष निपुण पाते हैं और यह बहुत सम्भव है कि ऋग्वेद के वर्तमान सूक्त इन्हीं घरानों के लोगो के बनाए हुए हों और इन्हीं घरानों मे बाप से बेटे को सिखाए जाकर वे रक्षित रक्खे गए हों।

ऋग्वेद के सूक्त दस मण्डलों में बंटे हैं और वे उनके रचयिता ऋषियों के नाम के क्रम से हैं। पहिला मण्डल और अन्तिम मण्डल कई ऋषियों का बनाया हुआ है परन्तु बाकी के आठ मण्डलों में से प्रत्येक किसी एक ऋषि, अथवा यों कहिए कि ऋषियों के किसी एक घराने वा शाखा का बनाया हुआ है। हम पहिले कह चुके हैं कि दूसरे मण्डल के सूक्त भृगुवंशी गृत्समद के बनाए हुए हैं, तीसरा मण्डल विश्वामित्र का, चौथा वामदेव का. पांचवां अत्रि का, छठां भारद्वाज का, सातवां वसिष्ठ का, आठवां कन्व का, और नवां अङ्गिरा का बनाया हुआ है। ये सब नाम आधुनिक हिन्दुओं को उन अगणित कथाओं द्वारा परिचित हैं जो कि पौराणिक समय में रची गई थीं और आधुनिक हिन्दू लोग अब भी इन प्राचीन और पूज्य घरानों से अपनी उत्पत्ति बताना पसन्द करते हैं। हम इन ऋषियों और उनके सम्बन्ध की कथाओं के विषय में आगे के अध्याय में लिखेंगे।

इन्हीं तथा कुछ अन्य पूज्य घरानों ही के द्वारा आर्य जाति की सब से पुरानी रचना आज तक रक्षित है। लगातार कई शताब्दियों तक ये सूक्त जबानी सिखाए गए और पुजेरियों के घराने के युवक लोग अपने जीवन के प्रथम भाग को अपने वृद्ध पिता से इन पवित्र सूक्तों के सीखने में व्यतीत करते थे। इस प्रकार से ऋग्वेद का अमूल्य खजाना सैकड़ों वर्ष तक रक्षित रक्खा गया।

काल पाकर पुजेरी लोग बेधड़क सृष्टि की अधिक गूढ़ बातों पर विचार करने लगे। वे लोग सृष्टि की रचना तथा परलोक के विषय में सोचने लगे और उन्होंने प्रकृति के देवताओं को परमेश्वर में मिश्रित किया।

"(१) उस सर्वज्ञ पिता ने सब स्पष्ट देखा और उचित विचार के उपरान्त उसने आकाश और पृथ्वी को उनके द्रव रूप में एक दूसरे को छूते हुए बनाया। और जब इनकी सीमाएं दूर दूर खींची गई तो पृथ्वी और आकाश अलग अलग होगए।

"(२) वह जो सब का स्रष्टा है, बड़ा है। वह सब का उत्पन्न

करनेवाला और पालन करनेवाला है। वह सब के ऊपर है और सबको देखता है। वह सातों ऋषियों के स्थान से भी ऊपर है। ज्ञानी लोग ऐसाही कहते हैं और ज्ञानी लोगों की सब कामनाएं परिपूर्ण होती हैं।

"(३) वह जो हम लोगों को जीवन देता है, वह जो हमलोगों का बनानेवाला है, वह जो इस सृष्टि के सब स्थानों का जानने वाला है वह एक ही है, यद्यपि वह अनेक देवताओं के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे लोग भी उसको जानने की इच्छा रखते हैं।

"(७) तुम इन सब चीजों के बनानेवाले का चिन्तन नहीं कर सकते। वह तुम्हारे लिये अचिन्त्य है। लोग अन्धकार से घिरे रह कर केवल अनुमान करते हैं। वे अपने जीवन को रखने के लिये भोजन करते हैं और सूक्तों का पाठ करते हुए इधर उधर घूमते फिरते हैं।" (१०, ८२)

इस उच्च सूक्त से हमको बिना किसी सन्देह के यह विदित होता है कि वेद के भिन्न भिन्न देवता लोग केवल एक ही अचिन्त्य ईश्वर के भिन्न भिन्न नाम हैं। हम ऐसा ही एक दूसरा सूक्त नीचे उद्धृत करते हैं।

"(१) इस समय जो चीजें हैं वे उस समय नहीं थीं और जो इस समय नहीं हैं वे भी उस समय नहीं थीं। पृथ्वी नहीं थी और दूर तक फैला हुआ आकाश भी नहीं था। तो फिर कौन सी चीज़ ढके हुई थी? कौन स्थान किस चीज के लिये नियत था? क्या उस समय अलंघ्य और गहिरा जल था?

"(२) उस समय न तो मृत्यु थी और न अमरत्व, दिन और रात का भेद भी नहीं था। उस समय केवल वही एक था जो बिना हवा के सांस लेता था और अपनी आप रक्षा करता था। उसके सिवाय और कुछ नहीं था।

"(३) पहिले अन्धकार अन्धकार ही में ढका हुआ था। कोई चीज़ अपनी अपनी सीमा में न थी, सब जल के रुप में थीं। सृष्टि

बिलकुल शून्य थी और जो वस्तुएं नहीं थीं उनसे ढंकी थी, और उसकी रचना ध्यान द्वारा हुई।

" (४) मन में इच्छा प्रगट हुई और इस प्रकार से सृष्टि रचना का कारण उत्पन्न हुआ। ज्ञानी लोग विचार करते हैं और अपने ज्ञान के द्वारा, जो वस्तुएं नहीं है उनसे वर्तमान वस्तुओं की उत्पत्ति निश्चित करते हैं।

" (५) पुरुष लोग वीर्य के सहित उत्पन्न किए गए और शक्तियां भी उत्पन्न की गईं। उनकी किरणें दोनों ओर तथा ऊपर और नीचे की ओर फैलीं, एक स्वयं रक्षित सिद्धान्त नीचे और एक शक्ति ऊपर।

" (६) यथार्थ बात कौन जानता है ? कौन वर्णन करेगा ? सब की उत्पत्ति कब हुई ? इन सब की उत्पत्ति कहां से हुई ? देवता लोग सृष्टि के उपरान्त बनाए गए। यह कौन जानता है कि वे कहां से बनाए गए ?

" (७) ये सब वस्तुएं कहां से बनाई गईं, उनकी उत्पत्ति किस से हुई, किसीने उनको बनाया वा नहीं,—यह केवल उसीको ज्ञात है जो कि हम सब का ईश्वर हो कर सर्वोच्चतम स्थान में स्थित है। यदि वह भी न जानता हो (तो और कोई इस को नहीं जानता।) " (१०, १२०)

सृष्टि के भेद का पता लगाने के विषय में यह संसार की आर्य जातियों का सबसे पहिला यत्न है जो कि लिखा हुआ पाया जाता है। इस सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में हजारों वर्ष पहिले हमारे पुरुषों के हृदय में इस प्रकार के अभीत और उच्च, यद्यपि संदिग्ध, विचार उत्पन्न हुए थे।

हम यहां पर एक अद्भुत सूक्त को और उद्धृत करेंगे जिस से जान पड़ेगा कि उत्तर काल के ऋषि लोग किस प्रकार से प्रकृति के देवताओं की कल्पना से आगे बढ़ कर केवल एक मात्र परमेश्वर के उच्च विचार में प्रवृत्त हुए।

"(१) पहिले पहल हिरण्यगर्भ था। वह अपने जन्म से ही सब का स्वामी था। उसने इस पृथ्वी और आकाश को अपने अपने स्थान में रक्खा। हम लोग हव्य से किस की पूजा करें?

"(२) उसकी, जिसने कि जीवन और शक्ति दी है, जिसकी आज्ञा का सब देवता पालन करते है, जिसकी परछाहीं अमरत्व है और मृत्यु जिसका दास है। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(३) उसकी जो कि देखने और चलने वाले समस्त प्राणियों का एक मात्र अधिपति है, उसकी जो कि समस्त दो पैर वालों तथा चौपायों का मालिक है। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(४) उसकी जिसकी शक्ति से कि ये बरफ़वाले पहाड़ बने हैं और जिसकी रचना यह पृथ्वी और उसमें के समुद्र हैं। उस की जिस के कि हाथ ऋक्ष के अंश हैं। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(५) उसकी जिसने कि इस आकाश और इस पृथ्वी को अपने अपने स्थान पर स्थित किया है, उसकी जिसने कि आकाश को नापा है। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(६) उसकी जिसने कि शब्दमय आकाश और पृथ्वी को स्थित करके विस्तृत किया है, उसकी जिसको कि चमकीला आकाश तथा पृथ्वी सर्व शक्तिमान मानती है, उसकी जिसकी सहायता से सूर्य ऊगता और प्रकाश प्राप्त करता है। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(७) प्रबल जल सारे विश्व में व्याप्त था। उसने अपने गर्भ में अग्नि को धारण कर के उसे उत्पन्न किया। तब वह एक मात्र ईश्वर जो कि देवताओं का जीवन है, प्रगट हुआ। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें?

"(८) वह जिसने कि अपनी शक्ति से जल को (जिससे कि

शक्ति उत्पन्न हुई) प्रगट किया, वह, जो कि सब देवताओं का मालिक है, वह एक ही है। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें ?

"(९) वह सत्यधर्म्मा जो कि इस पृथ्वी का रचनेवाला है, इस आकाश का रचनेवाला है और हर्षजनक तथा प्रबल जल का रचनेवाला है, वह हम लोगों की हिंसा न करे। हम लोग हव्य से किस देवता की पूजा करें ?

"(१०) हे प्राणियों के स्वामी ! तेरे सिवाय और किसी ने इन सब वस्तुओं को नहीं उत्पन्न किया। जिस मनोरथ से हमलोग पूजा करते हैं वह पूरा हो। हम लोग धन और सुख को प्राप्त करें।" (१०, १२१)

अब हम लोग इस कथन के भाव को समझते हैं कि ऋग्वेद का धर्म प्रकृति से प्रकृति के देवताओं की ओर जाता है। पूजा करनेवाला प्रकृति के अद्भुत दृश्यों को समझता है और इन दृश्यों से सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता के भेदों को समझने का यत्न करता है।

अध्याय ७

---o---
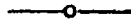
वैदिक ऋषि ।

हम पिछले अध्याय में कह चुके हैं कि वैदिक काल में कुछ धार्मिक और विद्वान वंशो को यज्ञ आदि की विधि जानने और सूक्त बनाने की शक्ति होने के कारण, श्रेष्ठता दी जाती थी। राजा लोग ऐसे वंशों का आदर करते थे और उन्हें पुरस्कार देते थे। इस के सिवाय, आर्य लोग वैदिक सूक्तों को पीढ़ी दर पीढ़ी बनाते रहने के कारण, इन्हीं वंशों के अनुग्रहीत हैं। आज कल के हिन्दू लोग इन पुराने वंशों से अपनी उत्पत्ति बताने में अपना गौरव समझते हैं और उनके नाम आधुनिक हिन्दू समाज मे प्रसिद्ध हैं। अतएव इन प्राचीन ऋषियों,—अर्थात् हिन्दूधर्म्म के पूज्य मार्गदर्शकों का कुछ वृत्तान्त हिन्दू पाठकों को अप्रिय न होगा।

वैदिक ऋषियों में, वा यों कहिए कि ऋषिकुलों में, सब से प्रधान विश्वामित्र और वशिष्ठ हैं। विद्वान और उद्योगी डाक्टर म्योर ने अपने 'संस्कृत टेक्स्ट्स' (Sanskrit texts) के पहिले भाग में उत्तर काल की संस्कृत पुस्तकों में से इन ऋषियों के विषय में बहुत सी कल्पित कथाओं का संग्रह किया है। परन्तु ऐसा कोई बिरला ही हिन्दू होगा जिसने इन पूज्य ऋषियों के विषय में इस प्रकार की अनेक कथाएं बचपन से ही न सुनी हों।

प्रबल विजयी सुदास, वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही को बड़ा मानता था। तीसरे मंडल के सूक्तों के बनानेवाले, विश्वामित्र कहे जाते हैं और उनके ५३ वें सूक्त में नीचे लिखे वाक्य मिलते हैं—"देवताओं से उत्पन्न हुए और देवताओं के भेजे हुए महर्षि ने जो कि मनुष्यों के देखने वाले हैं, जल की धारा को रोक दिया। जब विश्वामित्र ने सुदास के लिये यज्ञ किया, तो इन्द्र कौशिकों द्वारा सन्तुष्ट हुआ।" फिर, सातवां मण्डल वसिष्ठ का

बनाया हुआ कहा जाता है और उसके तेंतीसवें सूक्त में निम्न लिखित वाक्य मिलते हैं—" सफ़ेद वस्त्र पहिने हुए, दहिनी ओर जूट बांधे हुए और यज्ञादि करते हुए वसिष्ठ ने मुझे प्रसन्न किया है। मैं उठ कर लोगों को यज्ञ के शस्य के पास बुलाता हूं। वसिष्ठ हमारे द्वार से न जांय।"

इन दोनों ऋषिकुलों में स्वाभाविक ही कुछ द्वेष था और ये आपस में एक दूसरे को कटुवचन भी कहते थे। यह कहा जाता है कि मंडल ३ सूक्त ५३ की नीचे लिखी रिचाओं में वसिष्ट के कुल को ही कटुवचन कहा गया है—

"(२१) हे इन्द्र,आज तू हमलोगों के पास बहुत सी उत्तम सहायताओं के साथ आ; हम लोगों का मंगल कर। जो कोई हम लोगो से घृणा करता हो उसका अधोपतन हो और जिस किसी से हम लोग घृणा करते हैं उसके जीवन प्राण उससे निकल जांय।

"(२२) जिस तरह से पेड़ को फरसे से हानि पहुँचती है, जिस तरह सिम्बल का फूल तोड़ लिया जाता है, जिस तरह खौलते हुए कड़ाहे में से फेन निकलता है, वही दशा, हे इन्द्र,शत्रुओं की भी हो।

"(२३) नाशकर्ता की शक्ति नहीं देख पड़ती। लोग ऋषिओं को इस तरह दुरदुराते हैं जैसे कि वे पशु हों। बुद्धिमान लोग मूढ़ों की हँसी करने पर नहीं उतारू होते। वे लोग घोड़ों के आगे गदहों को नहीं ले चलते।

"(२४) इन भारतों ने (वसिष्ठों के साथ) हेल मेल करना नहीं सीखा वरन् दुराव करना सीखा है। वे शत्रुओं की नाईं उन लोगों के विरुद्ध घोड़ों को दौड़ाते हैं। वे युद्ध में धनुष धारण करते हैं।"

ऐसा विचारा जाता है कि वसिष्ठ ने म० ७ सू० १०४ की नीचे लिखी रिचाओं में इसी कुवाक्य का उत्तर दिया है—

"(१३) सोम बुरे लोगों को अथवा उस शासक को आशीर्वाद नहीं देता जो अपनी शक्ति को बुरी तरह से काम में लाता है। वह राक्षसों का नाश करता है; वह झूठे आदमियों का नाश करता है; दोनों इन्द्र के बन्धनों से बँधे हैं।

"(१४) हे जातवेदस्, यदि मैंने झूठे देवताओं की पूजा की होती वा यदि मैंने देवताओं का आह्वान झूठ मूठ किया होता,—परन्तु तू मुझ से अप्रसन्न क्यों है ? वृथा बकवाद करनेवाले तेरे संहार के नीचे पड़ें।

"(१५) यदि मैं यातुधान होऊँ वा यदि मैंने किसी के जीव को दुःख दिया हो, तो मैं अभी मर जाऊँ। पर जिसने मुझे झूठ मूठ यातुधान कहा हो वह अपने दस मित्रों के बीच से उठ जाय।

"(१६) यदि मैं यातुधान नहीं हूँ और कोई मुझे यातुधान कहता है अथवा सुन्दर राक्षस कहता है, तो इन्द्र उसे अपने बड़े शस्त्र से मारे। वह सब जीवों से अधम हो।"

यहां तक तो इन दोनों कुपित ऋषियों का द्वेष समझ में आने लायक और स्वाभाविक है, यद्यपि वह उनकी विद्या और पवित्रता के योग्य नहीं है। परन्तु जब हम लोग इसके पीछे के समय की संस्कृत पुस्तकों की ओर देखते हैं तो इन मानुषी और स्वाभाविक घटनाओं को अद्भुत और विलक्षण कथाओं के बादल से ढँका हुआ पाते हैं।

इन उत्तर काल की कथाओं में शुरू से यह माना गया है कि वसिष्ठ एक ब्राह्मण और विश्वामित्र एक क्षत्रिय था, यद्यपि ऋग्वेद में ऐसा कहीं नहीं माना गया और न उसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय की कोई जाति ही मानी गई है। इसके विरुद्ध, विश्वामित्र ने बहुत से श्रेष्ठतम सूक्त बनाए हैं, जिन्हें कि उत्तर काल के ब्राह्मण लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और जिनमें आज कल के ब्राह्मणों का प्रातःकाल का भजन अर्थात् गायत्री भी है।

यह मान कर कि विश्वामित्र ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया था, महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा उत्तर काल की दूसरी दूसरी पुस्तकों में उनके ब्राह्मण हो जाने की एक मनोरञ्जक कथा लिखी है। सत्यवती एक क्षत्राणी कन्या थी। उसका विवाह ऋचीक नामक ब्राह्मण से हुआ। ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये एक भोजन बनाया, जिसके खाने से उसे एक ब्राह्मण के गुणवाला पुत्र होता और एक

दूसरा भोजन अपनी सास के लिये बनाया जिसके खाने से उसे एक क्षत्री के गुणवाला पुत्र होता। परन्तु इन दोनों स्त्रियों ने अपने भोजन बदल लिए। अतएव क्षत्राणी को ब्राह्मण के गुणवाले विश्वामित्र हुए और ब्राह्मणी सत्यवती को जमदग्नि हुए जिनके पुत्र क्रोधी परशुराम, यद्यपि ब्राह्मण थे, परन्तु एक प्रसिद्ध और नाश करने वाले योधा हुए! उत्तर काल के लेखक गण, वैदिक ऋषियों को एक विशेष जाति मान कर और इस तरह से अपने को उलझन में डाल कर, इस उलझन को सुलझानें के लिये ऐसी ऐसी कथाएँ गढ़ते थे।

राजा हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कथा में विश्वामित्र का एक लोभी ब्राह्मण की नाईं वर्णन किया गया है। उसने राजा से केवल उसका राज्य हीं नहीं ले लिया वरन् अपनी निष्ठुर दक्षिणा लेने के लिये उसे अपनी स्त्री, पुत्र और अपने को भी दास की नाईं बेचने के लिये विवश किया! यदि ये कथाएँ ब्राह्मणों की भक्ति और मान सिखलाने के लिये गढ़ी गई हैं तो वे अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करतीं वरन् दूसरे ही भाव उत्पन्न करती हैं। वियोग से संतप्त हरिश्चन्द्र को अन्त में इसका अच्छा फल मिला। विश्वामित्र ने उसके पुत्र को राजगद्दी पर बैठाया और हरिश्चन्द्र स्वर्ग को गया। वसिष्ठ इससे कुपित हुआ और उसने विश्वामित्र को शाप दिया कि वह बक हो जाय और विश्वामित्र ने भी वसिष्ठ को अरि पक्षी बना दिया! इन दोनों पक्षियों में आपस में इतना युद्ध हुआ कि सारा ब्रह्मांड कांप उठा और अन्त में ब्रह्मा को मध्यस्थ होना पड़ा अर्थात् उन्होंने इन दोनों ऋषियों को उनके असिल रूप में करके उनमें मेल मिलाप करा दिया।

फिर त्रिशङ्कु की कथा सुनिए। यह राजा सदेह स्वर्ग में जाया चहता था। वसिष्ठ ने उसके इस मनोरथ को असम्भव कहा और जब राजा इस बात पर कुपित हुआ तो उसने उसे चाण्डाल बना दिया। अब क्रोधी विश्वामित्र इस स्थान पर आ उपस्थित हुए। उन्होंने राजा की इच्छा को पूर्णतया सम्भव कहा। उन्होंने एक बड़ा यज्ञ प्रारम्भ किया और वसिष्ठ के न सम्मिलित होने पर भी उसे

किया। तृशङ्कु स्वर्ग को चढ़ा परन्तु इन्द्र ने उसे ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया और उसका सिर नीचे और पैर ऊपर करके उसे पृथ्वी की ओर फेंका। परन्तु अनिवार्य विश्वामित्र ने इन्द्र, देवताओं और तारों के सहित एक दूसरा स्वर्ग बनाने को धमकाया! अतएव देवताओं को हार मानना पड़ा और तृशङ्कु पुनः स्वर्ग को चढ़ा और सूर्य के रास्ते से दूर तारे की नाईं चमकने लगा, यद्यपि कुछ असुखी स्थिति में अर्थात् उसका सिर अब तक भी नीचे की ओर था।

ऐसी ही ऐसी बहुतेरी कथाएं पाई जाती हैं जो हिन्दुओं के लड़के और लड़कियों के लिये घरेलू कहानियां ही होगई हैं और जिनमें ये दोनों ऋषी काल क्रम का अनादर करके सदैव एक दूसरे से वैर भाव में देख पड़ते हैं जो एक दूसरे से बीस, बीस, तीस, तीस अथवा पचास पचास पीढ़ी के अन्तर पर हुए हैं। किसी राज्यवंश या किसी दूसरे नायक की ऐसी ही कोई संस्कृत की लेख रचना होगी जिसमें हमें वसिष्ट और विश्वामित्र सदैव एक दूसरे के प्रति द्वन्दी न मिलें, यथा विष्णुपुराण में वसिष्ठ इक्ष्वाकु के पुत्र निमि का पुरोहित कहा गया है और वह सगर का भी जो इक्ष्वाकु से ३७ वीं पीढ़ी में हुआ, पुरोहित कहा गया है। फिर रामायण में वसिष्ठ राम का पुरोहित कहा गया है, जो कि इक्ष्वाकु से ६१ वीं पीढ़ी में हुआ! उत्तर काल की गढ़ी हुई कथा बनाने वाले लोग ऋग्वेद की सीधी सादी बातों को इस तरह पर काम में लाए हैं और उन्होंने पुराने वेद की सामान्य, स्वाभाविक और मानुषी बातों के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी झूठी कथाएं गढ़ डाली हैं। केवल वेद के ऋषियों ही की नहीं, वरन् प्रत्येक देवता और प्राकृतिक अद्भुत बातों के विषय की लगभग प्रत्येक उपमा वा रूप की भी उत्तर काल के कल्पनाशील हिन्दुओं ने ऐसी ही दशा की है।

परन्तु यद्यपि उत्तर काल में विश्वामित्र के ब्राह्मण हो जाने के विषय में सैकड़ों कथाएं गढ़ी गई हैं, पर इस बात का प्रत्यादेश करने का किसी ने विचार भी नहीं किया। महाभारत से लेकर मनुस्मृति और पुराणों तक की प्रत्येक कथा, प्रत्येक विद्याविशिष्ट

लेख, प्रत्येक बालोचित कहानी और प्रत्येक बड़े बड़े ग्रन्थ में यही लिखा है कि विश्वामित्र क्षत्री और ब्राह्मण दोनों ही थे। महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा है कि वसिष्ठ केवल ब्राह्मण ही नहीं वरन् इस बड़े कुशिक वंश का संस्थापक कैसे हुआ जिसमें कि ब्राह्मण और सैकड़ों ऋषी भी हुए। इस प्रश्न का उत्तर देना उस पौराणिक काल में कठिन होगा जिसमें कि महाभारत रचा गया था। परन्तु उस काल में इसका उत्तर कठिन न होगा जब कि जातिभेद अदृढ़ था। और स्वयम विश्वामित्र के, अर्थात् वेद के, काल में जब कि जातिभेद था ही नहीं, तो यह प्रश्न ही न उठता।

अब अंगिरा, वामदेव भारद्वाज और भृगु ऋषियों के हाल भी सुनिए, जो कि विश्वामित्र और वासिष्ठ से कम प्रसिद्ध नहीं हैं। ये सब वैदिक ऋषि, अर्थात् वैदिक सूक्तों के रचनेवाले थे। अतएव उत्तर काल के लेखकों को इनकी जाति के विषय में कुछ संदेह जान पड़ता है। ये लोग कभी तो क्षत्री गुणवाले ब्राह्मण कहे गए हैं, और कभी ब्राह्मण गुणवाले क्षत्री। कहीं कहीं पर निर्भयता से यह भी सत्य अनुमान किया गया है कि ये सब ऋषि उस समय रहते थे जब कि जाति भेद नहीं था।

अंगिरा ऋग्वेद के नौवें मंडल के बनानेवाले हैं। इनके विषय में विष्णुपुराण (म० ४, अ० २, श्लो० २) में यों लिखा है:—"नभाग का पुत्र नाभाग था, उसका पुत्र अम्बरीष था, उसका पुत्र विरूप था, उस से पृषदश्व उत्पन्न हुआ, और उससे रथीनर।" इस विषय में यह कहा है-"ये लोग, जो कि क्षत्री वंश से उत्पन्न हुए और पीछे अङ्गिरा कुल के कहलाए, रथीनरों के सरदार थे, अर्थात् ये लोग ब्राह्मण थे जिनमें क्षत्रियों के गुण भी थे।

वामदेव और भारद्वाज ऋग्वेद के चौथे और छठें मंडलों के बनानेवाले हैं। मत्स्यपुराण में (अध्याय १३२) इन्हें अङ्गिरा वंश का ही ठहराया है, जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

गृत्समद ऋग्वेद के दूसरे मंडल के सूक्तों के बनानेवाले कहे

जाते हैं। इनके विषय में भाष्यकार सायन यह कहते हैं कि यह पहिले अङ्गिरा के कुल के थे, परन्तु पश्चात् वे भृगुवंश के गृत्समद हो गए। इस अद्भुत कथा की टीका महाभारत के अनुशासन पर्व में इस तरह की गई है। उसमें लिखा है कि वीतहव्य एक क्षत्री राजा था और उसने भृगु के आश्रम में शरण ली थी। भृगु ने इस शरणागत की, उसके पीछा करनेवाले से रक्षा करने के लिये कहा "यहां कोई क्षत्री नहीं है, ये सब ब्राह्मण हैं।" भृगु के वाक्य झूठे नहीं हो सकते थे, अतएव शरणागत क्षत्री वीतहव्य तुरन्त ब्राह्मणत्व को प्राप्त होकर गृत्समद हो गया। यह बात अवश्य स्वीकार करने योग्य है कि ब्राह्मण हो जाने का यह रास्ता विश्वामित्र की अपेक्षा सहज है, जिसे कहा जाता है कि हजारों वर्ष तपस्या करनी पड़ी,—उसके अतिरिक्त कि उसकी माता ने एक ब्राह्मण की पत्नी से भोजन का बदला कर लिया है।

परन्तु गृत्समद के जाति बदलने की बात सब जगह स्वीकार नहीं की गई है। विष्णुपुराण और वायुपुराण ने सच सच कह ही दिया है कि गृत्समद जाति भेद होने के पहिले रहता था—"गृत्समद से सौनिक उत्पन्न हुआ, जिसने कि चारों जातियां बनाईं।" (विष्णुपुराण ४,८)

अन्त में कन्व और अत्रि का वृत्तान्त भी सुन लीजिए। कन्व ऋग्वेद के आठवें मंडल के बनानेवाले हैं। इनकी जाति के विषय में भी हमलोगों को वैसाही सन्देह है। विष्णुपुराण (४,१९) और भागवतपुराण (४,२०) में लिखा है कि कन्व पुरु की सन्तान था, जो कि क्षत्री था। परन्तु फिर भी कन्व के वंशवाले ब्राह्मण समझे जाते थे। "अजमीध से कन्व उत्पन्न हुआ और उससे मेधातिथि, जिससे कि कन्वनय ब्राह्मण उत्पन्न हुए।" (वि० पु० ४,१९)

अत्रि ऋग्वेद के पांचवे मंडल के बनानेवाले कहे जाते हैं, परन्तु उनकी जाति के विषय में भी वैसाही सन्देह पाया जाता है। विष्णुपुराण (४,६) में अत्रि पुरुरवा के दादा कहे गए हैं, जो कि क्षत्री था।

इतने उद्धृत वाक्य बहुत हैं। ये सब ऐसे ग्रन्थों से उद्धृत किए गए हैं जोकि वैदिक ऋषियों के दो तीन हजार वर्ष पीछे के बने हुए हैं। परन्तु इन उद्धृत वाक्यों से हम लोग वैदिक धर्माचार्यों और योधाओं की दशा और स्थिति विचार कर सकते हैं, अतएव वैदिक काल के वृत्तान्त में इनका उद्धृत करना अनुचित नहीं है। वैदिक काल के इतने पीछे के समय के लेखकों ने प्राय: प्राचीन बातों और कथाओं का असल तत्त्व नहीं समझा। परन्तु फिर भी पिछले समय की बातों में दृढ़ भक्ति होने के कारण, उन लोगों ने ऐसी ऐसी कथाओं में हस्तक्षेप नहीं किया। ये कथाएं ऐसे समाज की थीं जिसको हुए बहुत काल हो गया था और जो अब अस्पष्ट हो गया था। पुराणों के जाननेवाले यह नहीं सोच सकते थे कि धर्माचार्य और योधा दोनों एकही कुल से उत्पन्न हो सकते हैं, ऋषि भी योद्धा हो सकता है, अथवा योद्धा भी धर्माचार्य हो सकता है। अतएव उन लोगों ने इन कथाओं की हजारों तरह की कल्पनाओं और उपाख्यानों द्वारा व्याख्या करने का उद्योग किया है। पर फिर भी उन लोगों ने इन कथाओं को बिना बिकार वा परिवर्तन के भक्ति और निष्कपटता के साथ लिखा है। इसके उदाहरण के लिये हम एक वाक्य और उद्धृत करेंगे। मत्स्यपुराण में ६१ वैदिक ऋषियों के वर्णन के बाद अन्त में यों लिखा है (अध्याय १३२)—" इस तरह ९१ मनुष्यों का वर्णन किया गया है जिन्होंने कि सूक्तों को रचा। ये ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, सब ऋषियों के पुत्र थे।"

इस तरह से इस पुराण में भी यह पुरानी बात ठीक ठीक लिखी गई है कि वैदिक सूक्त सब आर्य जाति मात्र के बनाए हुए हैं। और अब ग्रन्थकार यह कहता है कि इन सूक्तों के बनानेवाले ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य थे तो इससे हम लोगों के यह अनुमान करने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ती कि ये सूक्त इन जातियों के संयुक्त पूर्वपुरुषों द्वारा बनाए गए थे।

आज कल के ग्रन्थकारों ने ऋषियों के तीन भेद किए हैं, देवर्षि अर्थात् नारद की नाईं देवताओं के तुल्य ऋषि लोग, ब्रह्मर्षि

अर्थात् शाकुन्तला नाटक के कन्व की नाईं साधु ब्राह्मण, और राजर्षि अर्थात् विदेह के राजा जनक की नाईं पुण्यात्मा क्षत्री लोग। पुराने वैदिक समय के ऋषि लोग इन तीनों में से किसी एक खास तरह के नहीं थे और इसी कारण आज कल के ग्रन्थकारों को उनके विषय में कठिनाई पड़ती थी। इस लिये उन लोगों ने एक ऐसी बात का कारण बतलाने के लिये कि जिसका कारण है ही नहीं, लाखों कथाएं गढ़ डालीं। परन्तु फिर भी उनके इन निराले अनुमानों में प्रायः यह यथार्थ अनुमान भी पाया जाता है कि वैदिक ऋषि लोग जाति भेद होने के पहिले रहे होंगे। इसलिये हम इन सब कल्पनाओं और कथाओं पर आश्चर्य नहीं करते वरन् उनके इस साहस की प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने कभी कभी इस बात का भी अनुमान किया है।

अन्त में इन अनमोल बातों से,—कि धर्माचार्य और योधा लोग एकही जाति के थे और प्रायः एकही ऋषि धर्माचार्य और योधा दोनों था—हम लोगों को वैदिक ऋषियों की सच्ची स्थिति समझ में आती है। क्योंकि यदि इन कथाओं की अद्भुत गढ़ी हुई बातों पर ध्यान न दिया जाय तो उनसे क्या विदित होता है? उनसे यह विदित होता है कि पुराने समय में वसिष्ठ, विश्वामित्र, अंगिरा और कन्व आदि की नाईं पूज्य वंशों में विद्वान पुरोहित और उसके साथही बड़े बड़े योधा लोग भी होते थे। जिस तरह परसी (Percy) अथवा डगलस (Douglas) के खानदान का कोई मनुष्य चाहे उत्साही पादरी वा चाहे कट्टर योधा हो सकता है उसी तरह कन्व या अंगिरा के वंश के लोगों का भी हाल था। यह बात निश्चित है कि जिस तरह से योरप के लोग विशेष करके बड़े विख्यात योधा होते थे उसी तरह हिन्दू लोग विशेष करके बड़े विख्यात पुरोहित होते थे, परन्तु जाति भेद जैसे योरप निवासियों में नहीं था उसी तरह हिन्दुओं में भी नहीं था। योरप में मध्य समय (Mediæval Europe) में उन जमींदारों (Barons) में से बहुतेरों के पिता, चाचा, पुत्र वा भतीजे पवित्र मठों के एकान्त में निवास करते थे, जिनका कि नाम अब तक धर्मार्थ युद्ध (Crusades)

के इतिहास में पाया जाता है। इसी तरह से वशिष्ठ अथवा वि-श्वामित्र के जिनके धार्मिक सूक्तों को हम लोग अब तक स्मरण करते और सत्कार की दृष्टि से देखते हैं। उनके पुत्र अथवा भतीजे वैदिक काल के उन युद्धों में लड़े थे जोकि आदिम निवासियों से भूमि लेने के लिये निरन्तर हुआ करते थे। ये बातें स्वयम् ऋग्वेद से सिद्ध होती हैं जिसके कुछ भाग हम एक पहिले के अध्याय में उद्धृत कर चुके हैं और वे कथाएं भी इनकी पुष्टि करती हैं जिन्हें हमने इस अध्याय में उत्तर काल के संस्कृत ग्रन्थों से उद्धृत किया है। वैदिक काल के ऋषि लोग सूक्त बनाते थे, वे युद्धों में लड़ते थे और खेतों में हल भी जोतते थे, परन्तु न तो ब्राह्मण थे, न क्षत्री थे, और न वैश्य ही थे। वैदिक समय के बड़े बड़े ऋषियों के वंश में भी पुरोहित और योद्धा दोनों ही उत्पन्न होते थे, परन्तु वे इसी तरह से न तो ब्राह्मण और न क्षत्री थे, जिस तरह से कि मध्य समय में योरप में परसी वा डगलस लोग ब्राह्मण वा क्षत्री नहीं थे।

काण्ड २

ऐतिहासिक काव्य काल, इस्वी से १४०० वर्ष पूर्व से १००० वर्ष पूर्व तक।

अध्याय १

———:o:———

इस काल के ग्रन्थ।

हम वैदिक काल का वृत्तान्त समाप्त कर चुके जब कि हिन्दू आर्य लोग उस सारी भूमि को जीत कर उसमें बस गए थे, जो कि सिन्ध और उसकी पांचो सहायक नदियों से सींची जाती है। हम दिखला चुके हैं कि उस समय का एक मात्र ग्रन्थ जो हम लोगों को प्राप्त है, केवल ऋग्वेद संहिता है और साथही इसके यह भी दिखला चुके हैं कि इस संहिता के सूक्तों से वैदिक काल की सभ्यता का पता किस भांति लगता है। अब हम उस काल की सभ्यता का वर्णन करेंगे जब हिन्दू लोग सतलज के आगे गंगा और यमुना के गर्भ में बढ़े और उन्होंने इनकी घाटियों में आधुनिक बनारस और उत्तरी बिहार तक बड़े बड़े राज्य स्थापित किए। वैदिक काल की नाईं इस काल का वृत्तान्त भी हम उस समय के ग्रन्थों में से देंगे।

परन्तु इस काल के कौन से ग्रन्थ हैं और उसके पीछे जो दार्शनिक काल हुआ उस समय के कौन कौन से ग्रन्थ हैं? ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् जिसमें गंगा की घाटी में रहने वाले कुरु, पाञ्चालों, कोशलों और विदेहों का बराबर वर्णन है, इस काल के ग्रन्थ हैं। इसी तरह से सूत्र, जिसमें भारतवर्ष में न्यायवाद के बढ़ने के चिन्ह मिलते हैं और जो कि उस समय बनाए गए थे जब कि आर्य लोग सारे भारतवर्ष में फैल गए थे, दार्शनिक काल के ग्रन्थ हैं।

तीस वर्ष के करीब हुआ कि प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने संस्कृत ग्रन्थों के बारे में एक पुस्तक छपवाई थी। उसमें उन्होंने वे सब कारण दिखलाए हैं जिनसे कि सूत्र ग्रन्थों को ब्राह्मण ग्रन्थों के पीछे का समझना चाहिए, और ये कारण प्रायः माने भी गए हैं। उन्होंने दिखलाया है कि सूत्र ग्रन्थों ने ब्राह्मण ग्रन्थों को मान लिया है और उनसे उद्धृत भी किया है। परन्तु इसके विपरीत ब्राह्मण ग्रन्थों में सूत्र ग्रन्थो का कोई चिन्ह नहीं मिलता। उन्होंने यह भी दिखलाया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों से यह झलकता है कि धर्माचार्यों का उस समय बड़ा प्रभुत्व था और उनमें लोगों की निस्संशय आज्ञापरता थी, जोकि सूत्र ग्रन्थों के व्यवहारिक, दार्शनिक और संशयात्मवादी समय के पहिले थी। फिर उन्होंने यह भी दिखलाया है कि उपनिषदों के समय तक ब्राह्मण ग्रन्थों को लोग भारतवर्ष में दैविक प्रकाश द्वारा प्राप्त मानते थे। परन्तु सूत्र ग्रन्थ मनुष्यों के बनाए समझे आते हैं। प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने इन सब बातों को उदाहरण के साथ ऐसे पांडित्य से वर्णन किया है कि जिससे बढ़ कर अब होही नहीं सकता। *

---

* इसके उपरान्त की खोज ने इस बात को और भी पुष्ट कर दिया है। केवल किसी विशेष संप्रदाय के सूत्र उस संप्रदाय ही के ब्राह्मण के पीछे नहीं बनाए गए वरन् सब सूत्र ग्रन्थ मात्र ब्राह्मण ग्रन्थों के पीछे बनाए गए हैं। इसके केवल एक उदाहरण के लिये हम डाक्टर बुलहर के वाक्य उद्धृत करते हैं जो कि इस विषय में मेक्समूलर से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। उन्होंने अपने "धर्मसूत्र" नामक पुस्तक की भूमिका में दिखलाया है कि उन सूत्रों में अनेक स्थानों पर भिन्न भिन्न ब्राह्मणों के विचार उद्धृत किए गए हैं। उन्होंने दिखलाया है कि गौतम का धर्म सूत्र जो कि सब से प्राचीन है उसमें श्यामयजुर्वेद के एक आरण्यक के, सामवेद के एक ब्राह्मण के और अथर्ववेद के भी एक उपनिषद के

यह कहने की कोई जरूरत नहीं है कि हम यहां पर इन प्रश्न झगड़ों को विस्तार के साथ नहीं लिख सकते। इस ग्रन्थ के उद्देश्यों के अनुसार हम ऊपर लिखी हुई बातों के विषय में कुछ साहित्य के सम्बन्ध की नहीं, वरन इतिहास के सम्बन्ध की बातें कहेंगे। भिन्न भिन्न श्रेणियों के पुराने संस्कृत ग्रन्थों में इस अनुक्रम का ऐतिहासिक कारण क्या है? प्राचीन हिन्दुओं ने कई शताब्दी तक अपने ग्रन्थ एक विशेष रूप में अर्थात् वैदिक सूक्तों के रूप में क्यों बनाए? फिर उन्होंने धीरे धीरे इस प्रणाली को छोड़ कर, कई आगे की शताब्दियों में सुविस्तर और गद्य में ब्राह्मणों को क्यों लिखा? और फिर धीरे धीरे इस प्रणाली को भी बदल कर इसके आगे की कई शताब्दियों में उन्होंने संक्षिप्त सूत्रों की प्रणाली क्यों ग्रहण की? ऐसी क्या बात थी कि जिससे प्राचीन हिन्दुओं ने अपने इतिहास के भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न प्रणाली में लेख लिखे हैं और इस तरह पर वे भविष्यत में इतिहास बनानेवालों के लिये अपने लेखों के काल का पता लगाने का मार्ग छोड़ गए हैं?

विचार पाए जाते हैं। उन्होंने दिखलाया है कि वशिष्ठ के धर्मसूत्र में ऋग्वेद के एक ब्राह्मण का, श्यामयजुर्वेद के एक आरण्यक का और स्वेतयजुर्वेद के एक ब्राह्मण का विचार उद्धृत किया गया है और उसमें अथर्ववेद के एक उपनिषद का भी उल्लेख है। इसी प्रकार से बौधायन के धर्मसूत्र में श्याम और स्वेत यजुर्वेद के ब्राह्मणों से उद्धृत विचार पाए जाते हैं। इसके विरुद्ध किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में कहीं पर भी किसी सूत्र ग्रन्थ के विचार उद्धृत नहीं पाए जाते।

कोई विद्वान भी इस बात को नहीं मानता कि सब से अन्तिम ब्राह्मण ग्रन्थ सबसे प्रथम सूत्रग्रन्थ के लिखे जाने के पहिले बना हो। परन्तु इन सब प्रमाणों से अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि एक समय ऐसा था जब कि लेख प्रणाली ब्राह्मण ग्रन्थों के ढंग की थी और उसके उपरान्त लिखने का ढंग सूत्रों का सा होगया।

इन प्रश्नों का पूछना जितना सहज है उतना ही सहज इनका उत्तर देना नहीं है। परन्तु इसका उत्तर इसी की नाईं एक प्रश्न पूछने से दिया जा सकता है। क्या ऐसी बात थी कि जिससे योरप के मध्य काल के इतिहास और कल्पित कथाएं उसी प्रणाली में नहीं बनाई गईं कि जिस प्रणाली में चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों के ग्रन्थ बनाए गए हैं? ह्यूम और गिबन ने मध्यकाल की प्रणाली के अनुसार इतिहास क्यों नहीं लिखा? और फीलडिङ्ग और स्काट ने मध्यकालीन कल्पित कथाएं क्यों नहीं लिखीं? फिर भी इन सबके विषय एकही थे। तो फिर लेख प्रणाली में इतना फर्क क्यों है कि यदि योरप के इतिहास का नाम भी मिट जाय तो भी केवल इन्हीं साहित्य की पुस्तकों से हमलोग आजकल के समय से फ्यूडल समय का विभाग कर सकते हैं?

कोई अंगरेज इन प्रश्नों का उत्तर यों देगा कि एलिज़बेथ के राज्य-काल के, और शेक्सपियर और बेकन के लेखों के पीछे भी मध्यकाल के इतिहासों और कल्पित कथाओं की प्रणाली में लेख लिखना असम्भव था, क्योंकि इसके पीछे योरप में एक नया प्रकाश उदय हो गया था, मनुष्यों की बुद्धि बढ़ गई थी, धर्म संशोधित हो गया था, पूर्वी गोलार्द्ध का पता लग गया था, आज कल की फ़िलासोफ़ी (न्याय शास्त्र) की उत्पत्ति हो गई थी, वाणिज्य और समुद्री व्यवसाय में अद्भुत उन्नति हो गई थी, सैनिक काश्तकारी पूरी तरह से उठ गई थी, सारांश यह कि योरोपियन सृष्टि ही बदल गई थी।

यदि पाठकों के सामने हिन्दू सभ्यता का इतिहास वैसी ही स्पष्टता से उपस्थित करना सम्भव होता जैसा कि उनके सामने योरप की सभ्यता का इतिहास है, तो वे भारतवर्ष के ऐतिहासिक कालों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही उत्तर दे सकते। ऐतिहासिक काव्य के काल में हिन्दुओं की विस्तृत सभ्यता और उनकी धार्मिक क्रियाओं के आडम्बर होने के पीछे यह बात असम्भव थी कि ग्रन्थ वैदिक सूक्तों की प्रणाली में लिखे जाते। वह सीधी सादी भक्ति जिससे कि पंजाब के आर्य लोग आकाश, प्रभात अथवा सूर्य को देखते थे, सदैव के लिये लोप हो गई थी। अब प्रकृति की वे सहज

शोभायें, गंगा की घटी में रहनेवाले सभ्य आर्यों की, जोकि अब बड़े आडम्बर के आचारों और यज्ञों में लिप्त थे, धार्मिक प्रशंसा विस्मय को आकर्षित नहीं करती थी। अब इस मकान में वृष्टि के देवता इन्द्र की अथवा प्रभात की देवी उषा की, भक्ति के साथ स्तुति करना सम्भव नहीं था, प्राचीन सरल सूक्तों का अर्थ और उद्देश्य ही भूल गया था और अब का मुख्य धर्म सादे प्रभात और सायंकाल के अर्घ्य से लेकर बड़े बड़े विधान के राजसूय यज्ञों तक, जो कई वर्षों में समाप्त होते थे, नाना प्रकार के यज्ञों ही में था। यज्ञों के नियम, छोटी छोटी बातों का गुरुत्व और उद्देश्य और तुच्छ रीतों के नियम, ये ही अब लोगों के धार्मिक हृदय में भरे थे, ये ही अब विद्वान राजाओं और राजगुरुओं में विचार के विषय थे, और इन्हीं का ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है। इसलिये इस समय के सभ्य ग्रन्थकारों और विद्वानों का पुरानी प्रणाली के अनुसार वैदिक सूक्तों की प्रणाली में लिखना वैसा ही असम्भव था जैसा कि योरप के मध्य काल के विद्वानों का पुराने समय की वन्य और सादी नारवेजियन प्रणाली में लिखना।

फिर, डेकार्ट और बेकन के लेखों के पीछे योरप में मध्य कालीन दर्शन शास्त्रों की विवेचना असम्भव थी। इसी प्रकार से, और इसी कारण से, भारतवर्ष में कपिल और गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के पीछे ब्राह्मणों की विस्तृत किन्तु व्यर्थ की बकवाद भी असम्भव थी। भारतवासियों के हृदय में एक नया प्रोत्साहन उदय हो गया था। विन्ध्याचल के आगे एक नई भूमि भी ज्ञात हो गई थी, यद्यपि उस मनुष्य का नाम जिसने कि पहिले पहिल इस दक्षिणी भूमि को ज्ञात किया, भूल गया है। उत्साह और भक्ति से पूर्ण उपनिषद लिखे जा चुके थे, जो ब्राह्मणों के विद्याभिमान के बड़े विरोध में थे। कपिल ने, जोकि भारतवर्ष का एक बड़ा भारी दर्शनज्ञ था, अपने सांख्यदर्शन से भारतवर्ष में हलचली मचा दी थी और गौतम ने, जो भारतवर्ष का बड़ा भारी सुधारक था, जिसने दीन दुखियों के लिये एक संशोधित धर्म चलाया और ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का दृढ़ विरोध किया। कई नए नए विद्वान

भी आविष्कृत हो गए थे और भारतवर्ष में एक नया प्रकाश उदय हो गया था।

ब्राह्मण साहित्य का लोप साधारणतः हुआ। विस्तृत और अर्थ विहीन नियमों पर अंधकार छा गया और भिन्न भिन्न प्राचीन धर्मसम्बन्धी कर्म्मों के नियम संक्षिप्त रूप में लिखे गए। दार्शनिक शास्त्रों के सूत्र बनाए गए और विद्या के प्रत्येक विभाग का रूप संक्षिप्त किया गया। मानवी विद्या के प्रत्येक विभाग पर संक्षेप रूप से ग्रन्थ लिखे गए कि जिसमें गुरू सुगमता से पढ़ा सके और विद्यार्थी मुंहज़बानी पढ़ सके। और यही कारण है कि दर्शन काल का समस्त साहित्य सूत्रों के रूप में लिखा गया।

इन तीनों प्रकार के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का, जो हिन्दू इतिहास के तीन भिन्न भिन्न कालों का वर्णन करते हैं, ऐतिहासिक गुरुत्व यह है। सूक्तों से वैदिक समय की वीरोचित सरलता प्रगट होती है, ब्राह्मण ऐतिहासिक काव्य काल के आडम्बर युक्त आचार प्रगट करते हैं और सूत्रों से विवेकमय काल की विद्या, शास्त्र और अविश्वास प्रगट होते हैं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि इनमें से प्रत्येक काल में हिन्दुओं का अभिनिवेश पूरब और दक्षिण की ओर बढ़ता गया, और जिन संस्कृत ग्रन्थों का ऊपर वर्णन हुआ है उनसे भी ये बातें प्रमाणित होती हैं। योरप में इटली, जर्मनी, फ्रांस और इंगलैंड में फ्यूडल समय के ग्रन्थों और आज कल के साहित्य की एक ही स्थल में वृद्धि हुई, परन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि आर्य लोग प्रत्येक काल में विजय करते हुए आगे बढ़ते गए और प्रत्येक काल के ग्रन्थों में भारतवर्ष के केवल उतने ही भाग का उल्लेख है जितने में कि उस काल में आर्य लोगों का अधिकार और राज्य था। और केवल इसी बात से हम लोगों को भिन्न भिन्न श्रेणी के ग्रन्थों के समय का बहुत कुछ पता लग सकता है।

ऋग्वेद के सूक्तों में केवल पंजाब का उल्लेख है, उसमें पंजाब के आगे के भारतवर्ष का कुछ समाचार नहीं है। उसमें दूरस्थ गंगा

और यमुना के तटों का कहीं विरले ही उल्लेख है। उसमें सब मुख्य सामाजिक संस्कारों और यज्ञों के स्थान केवल सिन्धु नदी, उसकी शाखाएं और सरस्वती के तट ही हैं। अतएव जिस समय ये सूक्त बनाए गए थे उस समय हिन्दुओं को भारतवर्ष का केवल इतना ही भाग मालूम था।

परन्तु हिन्दू लोग शीघ्र ही उत्तरी भारतवर्ष भर में जा बसे और कुछ ही शताब्दियों में इन लोगों ने उन्नति कर के बड़े बड़े राज्य स्थापित कर लिए और अपनी उन्नति और विद्या से अपनी जन्मभूमि पंजाब को दबा दिया। ब्राह्मणों में, आधुनिक दिल्ली के आस पास के देश में प्रबल कुरुओं का, आधुनिक कन्नौज के आस पास के देशों में प्रतापी पांचालों का, आज कल के उत्तरी विभाग में विदेहों का, अवध में कोशलों का, और आधुनिक बनारस के आस पास के देश में काशियों का उल्लेख मिलता है। इन लोगों ने बड़े आडम्बर के यज्ञादि कर्मों को बढ़ाया और इनमें जनक, अजातशत्रु, जनमेजय और परीक्षित की भांति प्रतापी और विद्वान राजा हुए। उन लोगों ने ग्रामों और नगरों में परिषद् अर्थात् पाठशालाएं स्थापित कीं और जातिभेद की एक नई सामाजिक रीति चलाई। ब्राह्मण ग्रन्थों में हम लोग ज्यादा करके इन्हीं लोगों का तथा इन की सभ्यता का उल्लेख पाते हैं। पंजाब उस समय प्रायः भूल सा गया था और दक्षिणी भारतवर्ष ज्ञात नहीं हुआ था। और यदि दक्षिणी भारतवर्ष का उल्लेख कहीं पर मिलता है तो वहां पर वह जंगली मनुष्यों और पशुओं का निवास स्थान कहा गया है। और अन्त में सूत्र ग्रन्थों में हम लोगों को दक्षिणी भारतवर्ष के बड़े बड़े राज्यों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार से भिन्न भिन्न ग्रन्थों में जिन देशों और जातियों का वर्णन है उससे उनके समय का पता लगता है।

हम इस पुस्तक के पहिले काण्ड में वैदिक काल के तथा ऋग्वेद के सूक्तों के विषय में लिख चुके हैं। अब इस दूसरे काण्ड में हम ऐतिहासिक काव्य काल के और ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में

और तीसरे काण्ड में दर्शन काल के तथा सूत्र ग्रन्थों के विषय में लिखेंगे।

हम ऊपर दिखला चुके हैं कि ऋग्वेद के सूक्त वैदिक काल में बनाए गए थे, परन्तु वे आख़ीर में ऐतिहासिक काव्य काल में संग्रहीत किए गए थे। अन्य तीनों वेद, अर्थात् सामवेद यजुर्वेद और अथर्ववेद भी इसी काल में संग्रहीत किए गए थे।

सामवेद और यजुर्वेद के संग्रहीत होने के कारण, कुछ निश्चित रूप से जाने जा सकते हैं। हम लोगों को ऋग्वेद के सूक्तों में भिन्न भिन्न प्रकार के धर्माचार्यों का उल्लेख मिलता है, जिन्हे यज्ञ में जुदे जुदे कार्य करने पड़ते थे। अध्वर्युओं को यज्ञ के सब प्रधान काम करने पड़ते थे, जैसे उन्हें भूमि नापनी पड़ती थी, मूर्त्ति और यज्ञ कुंड बनाना पड़ता था, लकड़ी और पानी लाना पड़ता था और पशुओं को बलिदान करना पड़ता था। पुरानी रीति के अनुसार यज्ञ में गाना भी होता था और यह गाने का काम उद्गात्री लोग करते थे। होत्री लोगों को वेद की ऋचाएं पढ़नी पड़ती थीं, और ब्राह्मण लोग यज्ञ में सब पर अधिष्ठान करते थे।

इन चारों प्रकार के धर्माचार्यों में न तो ब्राह्मणों और न होत्रियों को किसी विशेष पुस्तक की आवश्यकता थी क्योंकि ब्राह्मणों को केवल सब यज्ञकर्म जानने की आवश्यकता थी, जिसमें कि वे यज्ञ का अधिष्ठान कर सकें, दूसरे धर्माचार्यों को संदिग्ध विषयों में उनका कर्तव्य बता सकें और उनकी भूलों को सुधार सकें। होत्रियों को भी केवल ऋचाएं पढ़नी पड़ती थीं और यदि वे ऋग्वेद के सूक्तों को जानते हों तो उन्हें किसी दूसरी पुस्तक की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु अध्वर्युओं और उद्गात्रियों को विशेष शिक्षा की आवश्यकता थी। वैदिक समय में अध्वर्युओं के लिये कुछ विशेष याज्ञिक मंत्र अवश्य रहे होंगे और ऋग्वेद में उद्गात्रियों के लिये कुछ स्वर-ताल-बद्ध सूक्त भी अवश्य रहे होंगे क्योंकि ऋग्वेद में 'यजुस' और 'सामन' नाम पाए जाते हैं। इसके पीछे अर्थात् ऐतिहासिक काव्य काल में इन मंत्रों और गीतों का एक अलग

संग्रह किया गया और इन्हीं संग्रहों के जो अन्त में रूप होगए वे हमारे इस समय के यजुर्वेद और सामवेद हैं।

सामवेद के संग्रह करनेवाले का हमलोगों को कोई पता नहीं लगता। डाक्टर स्टिवेन्सन का जो अनुमान था उसे प्रोफेसर बेनफ़े ने सिद्ध कर दिखला दिया है कि सामवेद की कुछ ऋचाओं को छोड़ कर और सब ऋग्वेद में पाई जाती हैं। साथ ही इसके यह भी विचार किया जाता है कि ये बाकी की थोड़ी ऋचायें भी ऋग्वेद की किसी प्रति में, जो कि अब हमलोगों को अप्राप्त है, अवश्य रही होंगी। अतएव यह बात स्पष्ट है कि सामवेद केवल ऋग्वेद में से ही संग्रह किया गया है और वह एक विशेष कार्य के लिये सुर-ताल-बद्ध किया गया।

यजुर्वेद के संग्रह करनेवालों का हमें कुछ पता लगता है। श्याम यजुर्वेद तित्तिरि के नाम से तैतिरीय संहिता कहलाता है, और कदाचित इसी तित्तिरि ने इसे इसके आधुनिक रूपमें संग्रहीत या प्रकाशित किया था। इस वेद की आत्रेय प्रति की अनुक्रमणी में यह लिखा है कि यह वेद वैशम्पायन से याश्क पैङ्गि को प्राप्त हुआ, फिर याश्क से तित्तिरि को, तित्तिरि से उख को, और उख से आत्रेय को प्राप्त हुआ। इससे प्रगट होता है कि यजुर्वेद की जो इस समय सबसे पुरानी प्रति मिलती है वह आदि प्रति नहीं है।

स्वेत यजुर्वेद के विषय में हमें इससे भी अधिक पता लगता है। यह वेद अपने संग्रह करनेवाले अथवा प्रकाशित करनेवाले याज्ञवल्क्य वाजसनेय के नाम से वाजसनेयी संहिता कहलाता है। याज्ञवल्क्य, विदेह के राजा जनक की सभा में प्रधान पुरोहित थे और यह नया वेद कदाचित इसी विद्वान राजा की सभा से प्रकाशित हुआ। श्याम और स्वेत यजुर्वेदों के विषयों के क्रम में सबसे बड़ा भेद यह है कि पाहिले में तो याज्ञिक मंत्रों के आगे उनका व्याख्यान और उनके सम्बन्धी यज्ञकर्म का वर्णन दिया है, परन्तु दूसरी संहिता में केवल मंत्र ही दिए हैं, उनका व्याख्यान तथा

यज्ञकर्म का वर्णन एक अलग ब्राह्मण में दिया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः पुराने कर्म को सुधारने और मंत्रों को व्याख्या से अलग करने के लिये जनक की सभा के याज्ञवल्क्य ने एक नई वाजसनेयी सम्प्रदाय खोली और इसके उद्योगों का फल एक नई (वाजसनेयी) संहिता और एक पूर्णतया भिन्न (सतपथ) ब्राह्मण का बनाया जाना हुआ।

परन्तु यद्यपि स्वेत यजुर्वेद के प्रकाशक याज्ञवल्क्य कहे जाते हैं, पर इस वेद को देखने से जान पड़ेगा कि यह किसी एक मनुष्य वा किसी एक ही समय का भी संग्रह किया हुआ नहीं है। इसके चालिसो अध्यायों में से केवल प्रथम १८ अध्यायों के मंत्र सतपथ ब्राह्मण के प्रथम नौ खंडों में पूरे पूरे उद्धृत किये गए हैं और यथा क्रम उन पर टिप्पणी भी दी गई है। पुराने श्याम यजुर्वेद में इन्हीं अट्ठारहों अध्याओ के मंत्र पाए जाते है। इसलिये ये अट्ठारहों अध्याय स्वेत यजुर्वेद के सबसे पुराने भाग हैं और सम्भवतः इन्हें याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने संकालित वा प्रकाशित किया होगा। इसके आगे के सात अध्याय सम्भवतः उत्तरकाल के हैं और शेष १५ अध्याय तो निस्सन्देह और भी उत्तर काल के हैं जो कि साफ़ तरह से परिशिष्ट वा खिल कहे गए हैं।

अथर्व वेद के विषय में हमें केवल यह कहने ही की आवश्यकता है कि जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं, उसके बहुत पीछे तक भी इस ग्रन्थ की वेदों में गिनती नहीं की जाती थी। हां,ऐतिहासिक काव्य काल में एक प्रकार के ग्रन्थों की जिन्हें अथर्वाङ्गिर कहते हैं उत्पत्ति अवश्य हो रही थी जिसका उल्लेख कुछ ब्राह्मणों के उत्तर कालीन भागों में है। हिन्दू इतिहास के तीनों कालों में और मनु की तथा दूसरी छन्दोबद्ध स्मृतियों में भी, प्रायः तीन ही वेद माने गए हैं। यद्यपि कभी कभी अथर्वन, वेदों में गिने जाने के लिये उपस्थित किया जाता था,परन्तु फिर भी ईस्वी सन् के बहुत पीछे तक यह ग्रन्थ प्रायः चौथा वेद नहीं माना जाता था। जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं उस काल की पुस्तकों में से बहुतेरे वाक्य

उद्धृत किए जा सकते हैं जिनमें केवल तीन ही वेद माने गए हैं, परन्तु स्थान के अभाव से हम उन वाक्यों को यहां उद्धृत नहीं कर सकते। हम अपने पाठकों को केवल इन ग्रन्थों के निम्नलिखित भागों को देखने के लिये कहेंगे, अर्थात् ऐतरेय ब्राह्मण ५, ३२, सतपथ ब्राह्मण ४, ६, ७ ऐतरेय आरण्यक ३, २, ३, बृहदारण्यक उपनिषद् १, ५, और छान्देग्य उपनिषद् ३ और ७। इस अन्तिम पुस्तक में तीनों वेदों का नाम लिखने के पीछे अथर्वाङ्गिर की गिनती इतिहासों में की है। केवल अथर्व वेद ही के ब्राह्मण और उपनिषदों में इस पुस्तक को वेद माने जाने का बराबर उल्लेख मिलता है। यथा गोपथ ब्राह्मण का मुख्य उद्देश्य एक चौथे वेद की आवश्यकता दिखलाने का है। उसमें यह लिखा है कि चार पहियों बिना गाड़ी नहीं चल सकती, पशु भी चार टांगों बिना नहीं चल सकता, और न यज्ञ ही चार वेदों बिना पूरा हो सकता है। ऐसी विशेष युक्तियों से केवल यही सिद्ध होता है कि गोपथ ब्राह्मण के बनने के समय तक भी चौथा वेद प्रायः नहीं गिना जाता था।

अथर्वन और अङ्गिरा जैसा कि प्रोफेसर व्हिटनी कहते हैं,प्राचीन और पूज्य हिन्दू वंशों के अर्द्ध पौराणिक नाम हैं और इस आधुनिक वेद का इन प्राचीन नामों से किसी प्रकार सम्बन्ध करने का यत्न किया गया। इस वेद में २० कांड हैं, जिनमें लगभग ६ हजार ऋचाएं हैं। इसका छठां भाग गद्य में है और शेष अंश का छठां भाग ऋग्वेद के, प्रायः दसवें मंडल के, सूक्तों में मिलता है। उन्नीसवां कांड एक प्रकार से पहिले अट्ठारह कांड का परिशिष्ट है और बीसवें कांड में ऋग्वेद के उद्धृत भाग हैं।

इस सारे वेद में खास करके दैवी शक्तियों की हानि से, रोग से, हिंसक जानवरों से और शत्रुओं के शाप से मनुष्यों को अपनी रक्षा करने के लिये मंत्र हैं। इसमें बहुत से भूतों और पिशाचों का उल्लेख है और उनकी स्तुति की है जिसमें वे कोई हानि न करें। यह कल्पना की गई है कि ये मंत्र देवताओं से उन आवश्यक चीजों को भी दिलवाते हैं, जिनके देने के लिये उन देवताओं की इच्छा

नहीं होती । इस पुस्तक में दीर्घायु होने, धन प्राप्त करने अथवा रोग से अच्छे होने के लिये मंत्र और यात्रा, जुए आदि में सफलता प्राप्त करने के लिये स्तुतियां भरी हैं । ये मंत्र उन्हीं मंत्रों की नाईं हैं जो कि ऋग्वेद के आखरी मंडल में दिए हैं । परन्तु, जैसा कि प्रोफ़ेसर वेबर ने दिखलाया है, उनमें भेद केवल इतना ही है कि ऋग्वेद में वे साफ़ उस समय के बनाए हुए हैं जिस समय कि ऋग्वेद बना था, पर अथर्ववेद में वे आधुनिक समय के बनाए हुए हैं ।

अब हम ब्राह्मण रचना का वृतान्त देंगे जिसके कारण इस काल के ग्रन्थ ब्राह्मणों का साहित्य कहलाते हैं । हम दिखला चुके हैं कि श्याम यजुर्वेद में मूल के आगे सदा उसकी व्याख्या भी दी है । ऐसा विचारा जाता था कि यह व्याख्या मूल को स्पष्ट करती है और उसके छिपे हुए अर्थ को प्रगट करती है । इन व्याख्याओं में कई पीढ़ियों के धर्माचार्यों के विचार हैं । इस प्रकार की व्याख्या को "ब्राह्मण" कहते थे और उत्तर काल में इन व्याख्याओं के संग्रह अथवा उनके सारांश को 'ब्राह्मण' कहने लगे ।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं अर्थात् ऐतरेय और कौशीतकि । इनमें से पहिले के बनानेवाले इतरा के पुत्र महिदास ऐतरेय कहे जाते हैं और कौशीतकि ब्राह्मण में कौशीतक ऋषि का विशेष आदर किया गया है और इन्हींका कथन निश्चित समझा गया है । और सब बातों में ये दोनों ब्राह्मण, एक ही ग्रन्थ की केवल दो प्रतियां ज्ञान पड़ते हैं, जिन्हें क्रम से ऐतरेय और कौशीतकि लोग व्यवहार करते थे । ये ब्राह्मण एक दूसरे से अनेक बातों में मिलते हैं, सिवाय इसके कि ऐतरेय के अन्तिम दस अध्याय कौशीतकि में नहीं हैं, और कदाचित ये उत्तर काल के हैं ।

सामवेद के ताण्ड्य वा पञ्चविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, और सुप्रसिद्ध छान्दोग्य हैं ।

श्याम यजुर्वेद वा तैत्तिरीय संहिता का तैत्तिरीय ब्राह्मण है

और स्वेत यजुर्वेद वा वाजसनेयी संहिता का एक बड़ा भारी सतपथ ब्राह्मण है। हम ऊपर कह आए हैं कि सतपथ ब्राह्मण के बनाने वाले याज्ञवल्क्य कहे आते हैं, पर यह अधिक सम्भव है कि उन्होंने जो सम्प्रदाय स्थापित की थी उसीने इसे बनाया हो, क्योंकि इस पुस्तक में कई स्थान पर उसका उल्लेख किया गया है। परन्तु यह पूरा ग्रन्थ किसी एक ही सम्प्रदाय वा एक ही समय का बनाया हुआ नहीं है वरन स्वेत यजुर्वेद संहिता की नाईं, इस ब्राह्मण के भी भिन्न भिन्न समयों में बनाए जाने के प्रमाण मिलते हैं। इस संहिता के पहिले १८ अध्याय सब से पुराने हैं और इस ब्राह्मण के पहिले ६ कांड, जिनमें इन अट्ठारहो अध्यायों की व्याख्या दी है, सब से पुराने हैं। इसके शेष ५ कांड प्रथम ९ कांडों के पीछे के समय के हैं।

अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है जो कि बहुत ही थोड़े समय का बना हुआ जान पड़ता है। इसके लेख नाना प्रकार के मिश्रित हैं और अधिकांश भिन्न भिन्न स्थानों से लिए गए हैं।

ब्राह्मणों के पीछे आरण्यक बने, जो कि वास्तव में ब्राह्मणों के अन्तिम भाग समझे जा सकते हैं। सायन ने लिखा है कि वे आरण्यक इसलिये कहे जाते थे क्योंकि वे अरण्य अर्थात् बन में पढ़े जाते थे, परन्तु ब्राह्मण उन यज्ञों में व्यवहार किए जाते थे जिन्हें गृहस्थ लोग अपने घरों में करते थे।

ऋग्वेद के कौशीतकि आरण्यक और ऐतरेय आरण्यक हैं जिनमें से ऐतरेय आरण्यक महिदास ऐतरेय का बनाया हुआ कहा जाता है। श्याम यजुर्वेद का तैत्तिरीय आरण्यक है और सतपथ ब्राह्मण का अन्तिम अध्याय भी उसका आरण्यक कहा जाता है। सामवेद और अथर्व वेद के आरण्यक नहीं हैं।

इन आरण्यकों का विशेष गुरुत्व इसलिये है कि वे उन प्रसिद्ध धार्मिक विचारों के विशेष भंडार हैं जो उपनिषद कहलाते हैं। जो उपनिषद सुप्रसिद्ध और निस्सन्देह प्राचीन है वे ये हैं–

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौशीतकि उपनिषद् जो इन्हीं नामों के आरण्यकों में पाए जाते हैं, सामवेद के छान्दोग्य और तनलवकार (वा केन) उपनिषद्, श्वेत यजुर्वेद के वाजसनेयी (वा ईश) और बृहदारण्यक, श्याम यजुर्वेद के तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर, और अथर्ववेद के मुण्डक, प्रश्न और माण्डुक्य । ये बारह प्राचीन उपनिषद् हैं और शंकराचार्य ने अपने वेदान्त सूत्रों के भाष्य में मुख्यतः इन्हीं उपनिषदों से प्रमाण लिया है । परन्तु जब उपनिषद् पवित्र और प्रामाणिक गिने जाने लगे तो इस श्रेणी के नए नए ग्रन्थ बनने लगे यहां तक कि इनकी संख्या दो सै से भी अधिक होगई । उत्तर काल के उपनिषद् जो प्रायः अथर्ववेद उपनिषद् कहे जाते हैं, पौराणिक काल तक के बने हुए हैं। उनमें प्राचीन उपनिषदों की नाईं ब्रह्मज्ञान के विषय की वार्ता न होकर साम्प्रदायिक विचार पाए जाते हैं । वास्तव में उत्तर काल के उपनिषद्, भारतवर्ष में मुसलमानों के आने के बहुत पीछे तक के भी बने हैं और सम्राट अकबर जो एक सार्वभौम धर्म स्थापित करना चाहता था उसका विचार एक उपनिषद् में पाया जाता है, जिसका नाम अल्लाह उपनिषद् है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हम इस पुस्तक में उत्तर काल के उपनिषदों का नहीं वरन् केवल प्राचीन उपनिषदों का ही उल्लेख करेंगे ।

उपनिषदों के साथ ही ऐतिहासिक काव्य काल का अन्त होता है और भारतवर्ष के इश्वरप्राप्त साहित्यभंडार का भी अन्त होता है । इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में निसन्देह दूसरी श्रेणियों के भी ग्रन्थ थे, परन्तु अब लुप्त हो गए हैं अथवा उनमें से अधिकांश की जगह पर अब नए नए ग्रन्थ हो गए हैं । इस काल के बड़े भारी ग्रन्थ समूह का केवल एक अंश हम लोगों को प्राप्त है और इस अंश के मुख्य ग्रन्थों का अल्लेख ऊपर किया गया है ।

स्वयम् ऐतिहासिक काव्यों में से मुख्य महाभारत और रामायण का वर्णन हम अगले दो अध्यायों में करेंगे ।

———:o:———

अध्याय २

——:o:——

कुरु और पांचाल।

विजयी आर्य लोग आगे बढ़ते गए। यदि पाठक भारतवर्ष का नकशा लेकर देखेंगे तो उन्हें विदित होगा कि सतलज के किनारे से लेकर गंगा और यमुना के किनारों तक यात्रा करने के लिये कोई बहुत ही बड़ी भूमि नहीं है। आर्यलोगों के लिये, जो सारे पंजाब में बस गए थे, सतलज अथवा सरस्वती के ही तटों पर चुपचाप पड़ा रहना सम्भव नहीं था। वैदिक काल में ही उद्योगी अधिवासियों के कई झुंड इन नदियों को पार करके यमुना और गंगा के दूरस्थ तटों की छान बीन कर चुके थे और ये नदियां अविदित नहीं थी, यद्यपि सूक्तों में इनका हिन्दू संसार के पूर्णतया अन्त में होने की भांति उल्लेख आया है। कुछ काल में इन दोनों नदियों के उपजाऊ तटों पर के अधिवासी लोग संख्या में बहुत बढ़ गए होंगे यहां तक कि अन्त में इन्होंने आधुनिक दिल्ली के निकट एक बड़ा राज्य, अर्थात् कुरु लोगों का राज्य स्थापित किया।

ये अधिवासी वे ही भारत लोग थे जो सुदास के युद्धों में प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनके राजा कुरुवंशी थे और इसलिये उनकी जाति भारत और कुरु दोनों ही नामों से प्रसिद्ध है। कुरु लोग पंजाब के किस भाग से आए इसका अभी पता नहीं लगा है। ऐतरेय ब्राह्मण (७, १४) में यह इल्लेख है कि उत्तर कुरु तथा उत्तर माद्रलोग हिमालय के उस पार रहते थे। उत्तरकाल के ग्रन्थों अर्थात् महाभारत (१.४७,१९ इत्यादि) और रामायण (४, ४५ ८८, इत्यादि) में तो उत्तर कुरु लोगों की भूमि कल्पित देश सी हो गई है। यह स्थिर किया गया है कि टालमी का 'ओट्टोर कोर्र' उत्तर कुरु ही है और लेसेन उनका देश आधुनिक काशगर के पूर्व में किसी

स्थान पर बतलाता है। परन्तु जिन उत्तर कुरु लोगों का ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है उनका स्थान हमारे विचार में हिमालय की छोटी छोटी चोटियों के कहीं उत्तर में अर्थात्त काश्मीर में कहीं पर था। हम यह मान लेते हैं कि ईसा के लगभग १४०० वर्ष पहिले इन कुरु लोगों की राजधानी गंगा के तट पर उन्नति को प्राप्त हुई।

जब एक बार हिन्दू लोग जमुना और गंगा के तटों पर आकर बस गए तो फिर झुंड के झुंड लोग आकर इन नदियों के तटों पर बसने लगे और शीघ्र ही इन दोनों नदियों के बीच की उस सारी भूमि में बस गए जिसको द्वाब कहते हैं। जिस समय हमलोग कुरु अथवा भारत लोगों को आधुनिक दिल्ली के निकट बसते हुए पाते हैं उसी समय एक दूसरी उद्योगी जाति अर्थात् पांचालों को आधुनिक कन्नौज के निकट भी बसते हुए पाते हैं। पांचालों के आदि स्थान के विषय में कुरु लोगों की अपेक्षा और कम पता लगा है और यह कल्पना करली गई है कि वे लोग भी कुरुलोगों की नाईं उत्तरी पहाड़ियों से आकर बसे। पांचाल के अर्थ 'पांच जातिया हैं और इससे यह प्रगट होता है कि वे कदाचित् उस पञ्चकृष्टि अथवा पञ्चजनों में से थे जिनका उल्लेख ऋग्वेद में कई जगहों पर आया है।

सम्भवतः पांचालों के राज्य की अभिवृद्धि उसी समय हुई जिस समय कि कुरु लोगों के राज्य की हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन दोनों राज्यों का हिन्दू संसार के केन्द्र की नाईं कई जगह पर उल्लेख है, जो कि अपने पराक्रम, विद्या और सभ्यता के लिये प्रसिद्ध हैं। बहुतेरे ब्राह्मण ग्रन्थों में इन लोगों के विद्याभिवृद्धि का, इनके पुरोहितों की पवित्रता का, इनके राजाओं के आडम्बरयुक्त यज्ञों का तथा और लोगों के दृष्टान्त योग्य जीवनों का उल्लेख है।

आर्यों को सिन्ध के तट पर आकर बसे कई शताब्दियां हो गई थीं और उन्होंने इन शताब्दियों में उन्नति और सभ्यता में बहुत कुछ किया था। कुरु और पांचाल लोग अब उन खेतिहर योधाओं की नाईं नहीं थे जिन्होने कि सिन्ध और उसकी सहायक नदियों के

किनारों की भूमि को काले आदिम निवासियों से लड़े लड़ कर जीता था। अब रीति व्यवहार बदल गए थे, समाज अधिक सभ्य हो गया था और विद्या और कलाकौशल में बहुत कुछ उन्नति हो गई थी। राजा लोग पंडितों को अपनी सभा में बुलाते थे, अपने पुरोहितों से पाण्डित्यपूर्ण वादविवाद करते थे, उस समय के नियमानुसार बड़े आडम्बरयुक्त यज्ञ करते थे, रणक्षेत्र में माननीय और शिक्षित सेनाओं के नेता होते थे, सुयोग्य पुरुषों को कर उगाहने और न्याय करने के लिये नियुक्त करते थे, और सभ्य शासकों को जो जो कार्य करने चाहिए वे सब करते थे। राजा के सम्बन्धी तथा मित्र लोग और जाति के सब योधा लोग बचपन ही से धनुष चलाना और युद्ध में रथ हांकना सीखते थे और वेदों को तथा उस पवित्र विद्या को भी पढ़ते थे जो कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जबानी सिखाई जाती थी। पुरोहित लोग धर्म-सम्बन्धी क्रिया कर्मों के विधानों को बढ़ाए जाते थे, देश के प्राचीन साहित्य को रक्षित रखते थे, और लोगों को उनके धार्मिक कर्मों में शिक्षा और सहायता देते थे। लोग नगरों और ग्रामों में रहते थे, अपने घर में पवित्र होमाग्नि स्थापित रखते थे, शान्ति के उपायों का अवलम्बन करते थे। अपने लड़कों को बचपन से वेदों की तथा धार्मिक और सामाजिक कार्यों की शिक्षा देते थे और धीरे धीरे उन सामाजिक रीतियों को पुष्ट करते थे जो कि भारतवर्ष में कानून की तरह पर हैं। समाज में स्त्रियों का उचित प्रभाव था और उनके लिये किसी प्रकार की कैद अथवा रुकावट नहीं थी। भारतवर्ष में वैदिक काल की अपेक्षा, ईसा के चौदह सौ वर्ष पहिले समाज बहुत कुछ सभ्यता और उन्नति की अवस्था में था और उत्तरकाल की अपेक्षा उसमें बहुत कुछ स्वास्थ्य और ओजस्वीनी रहन सहन थी।

परन्तु यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि जहां सभ्यता हो वहां लड़ाई झगड़ा न हो। अस्तु, कुरुओं और पांचालों में भी लड़ाई झगड़े होते थे, परन्तु हम लोगों को उनमें से केवल एक ही भयानक युद्ध का वर्णन मिलता है जिसमें कि बहुत सी आस पास की

जातियां सम्मिलित हुई थीं और जो कि भारतवर्ष के दो महा-काव्यों में से एक का प्रसंग है।

महाभारत में युद्ध की जिन घटनाओं का वर्णन है वे उसी प्रकार की कल्पित हैं जैसा कि इलिअड (Iliad) की घटनाएं कल्पित हैं। पांचो पांडव और उन सब की एक मात्र पत्नी, एचिलस (Achilles), पेरिस (Paris) और हेलन (Helen) की नाईं कल्पित हैं। परन्तु फिर भी यह महाकाव्य बड़े भारतों के एक सच्चे युद्ध के आधार पर बनाया गया है और इसमें प्राचीन हिन्दुओं की चाल व्यवहार का वर्णन वैसाही ठीक ठीक किया गया है जैसा कि प्राचीन यूनान वासियों का वर्णन इलिअड में किया गया है।

महाभारत की कथा से प्राचीन हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था का बहुत अच्छा पता लगता है। अतएव मैं यहां पर इस कथा का संक्षेप में वर्णन कर देना आवश्यक समझता हूं। पाठकों को नामों पर अथवा कथा पर, जो कि अधिकतर कल्पित हैं, ध्यान देना नहीं चाहिए, वरन् उन्हें इस कथा में से ऐतिहासिक काव्य काल में (अर्थात् उस समय जब कि आर्य लोग गंगा की घाटी में फैल रहे थे) हिन्दू लोगों के जीवन का एक चित्र खींचनें का यत्न करना चाहिए।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय कुरु लोगों की राजधानी हस्तिनापुर में थी, जिसका अनुमानित खंडहर गंगा के ऊपरी भाग में, दिल्ली से लगभग ६५ मील उत्तर-पूरब में मिला है। हस्तिनापुर का वृद्ध राजा शान्तनु मर गया। उसके दो पुत्र हुए, एक तो भीष्म जिसने कुंआरे रहने का प्रण कर लिया था, और दूसरा छोटा भाई जो राजा हुआ। कुछ काल में यह युवा राजा मर गया। इसके दो पुत्र हुए, पहिला धृतराष्ट्र जो अन्धा था, और दूसरा पाण्डु जो राजगद्दी पर बैठा।

पाण्डु अपने पांच पुत्रों को छोड़ मर गया और येही पांचो पुत्र

इस महाकाव्य के नायक हैं। पांचो पांडवों तथा अपने लड़कों की बाल्यावस्था में धृतराष्ट्र वस्तुतः राजा था और धृतराष्ट्र का चचा, प्रसिद्ध योधा भीष्म, प्रधान मंत्री और राज्य का शुभचिन्तक था।

युवा पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों की शस्त्र विद्या के वर्णन से राज्यवंशों की चाल व्यवहार का बहुत कुछ पता लगता है। द्रोण एक ब्राह्मण और प्रसिद्ध योधा था, क्योंकि अभी तक जाति भेद पूरी तरह से नहीं माना जाता था, अभी तक क्षत्रियों को शस्त्र प्रयोग करने का और ब्राह्मणों को धार्मिक शिक्षा का ठेका नहीं मिल गया था। द्रोण का उसके मित्र अर्थात् पांचालों के राजा ने अनादर किया था। इसलिये वह घृणा से कुरुओं के यहां आकर रहा और उसने राजकुमारों को शस्त्र चलाने में शिक्षा देने का भार लिया।

पाण्डवों में सब से बड़े युधिष्ठिर कोई बड़े योधा नहीं हुए परन्तु उन्होंने उस समय की धार्मिक शिक्षा में बड़ी निपुणता प्राप्त की और वे इस महाकाव्य में बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं। दूसरे पाण्डव भीम ने गदा चलाना बहुत अच्छी तरह से सीखा और वह अपने बड़े भारी शरीर और बहुत ही अधिक बल के लिये प्रसिद्ध थे (और वह इस महाकाव्य के पजाक्स हैं)। तीसरे, अर्जुन शस्त्र चलाने में सब राजकुमारों से बढ़ गए और इसी कारण से धृतराष्ट्र के पुत्र, बाल्यावस्था में भी, इनसे द्वेष तथा घृणा रखते थे। चौथे नकुल ने घोड़ों को आधीन करना सीखा और पांचवें सहदेव ज्योतिष में बड़े निपुण हुए। धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन गदा चलाने में निपुण था और वह भीम का प्रतिद्वन्द्वी था।

अन्त को राजकुमारों ने शस्त्र चलाने में जो निपुणता प्राप्त की थी उसे सब लोगों को दिखलाने का दिन आया। एक बड़ी भारी रंगभूमि बनाई गई और इसके चारों ओर प्राचीन योधाओं, सरदारों, स्त्रियों और सभासदों के बैठने के लिये स्थान बनाया गया। कुरुभूमि के सब निवासी अपने राजकुमारों की निपुणता देखने के लिये चारों ओर से इकट्ठे हुए। अन्धा राजा धृतराष्ट्र अपने

स्थान पर बैठाया गया और स्त्रियों में अग्रसर धृतराष्ट्र की रानी गान्धारी, और प्रथम तीन पाण्डवों की माता कुन्ती थीं। अन्तिम दोनों पाण्डव, पाण्डु की दूसरी स्त्री से हुए थे।

एक निशाने पर तीर चलाई गई और ढाल, तलवार और गदाओं से युद्ध हुआ। दुर्योधन और भीम शीघ्रही बड़े जोश से लड़ने लगे और एक दूसरे की ओर मदान्ध हाथियों की नाईं झपटे। हल्ला आकाश तक पहुंचने लगा और शीघ्रही लड़ाई का परिणाम दुखान्त जान पड़ने लगा। अन्त को ये दोनों क्रोधान्ध युवा छोड़ा दिए गए और शान्ति हो गई।

तब अर्जुन अपनी अद्भुत धनुष के साथ इसमें सम्मिलित हुआ। उसकी धनुष चलाने की निपुणता ने उसकी प्रशंसा करनेवालों को बड़ा आश्चर्यित कर दिया और उसकी माता के हृदय को हर्ष से भर दिया। लोग प्रशंसा कर के समुद्र की गरज की नाईं हल्ला मचा रहे थे। तब उसने तलवार चलाई जो कि बिजली की नाईं चमकती थी, फिर चोखा चक्र चलाया जिसका निशाना कभी खाली नहीं गया। अन्त में उसने पाश से घोड़ों और हरिणों को भूशायी किया और एकत्रित लोगों की जयध्वनि के बीच अपने योग्य गुरु द्रोण को दंडवत कर के खेल की समाप्ति की।

इससे धृतराष्ट्र के पुत्रों को बड़ा द्वेष हुआ। इसलिये वे रंगभूमि में एक अपरिचित योधा कर्ण को लाए जो धनुर्विद्या में अर्जुन का प्रतिद्वंद्वी था। योरप के प्राचीन योधाओं (Knights) की भांति राजपुत्र लोग केवल अपने बराबरवालों के साथ लड़ सकते थे, इसलिये धृतराष्ट्र ने इस अपरिचित योधा को उसी स्थान पर राजा बनाया, जिसमें अर्जुन को लड़ाई अस्वीकार करने का कोई बहाना न मिले। कर्ण से जो बेढब प्रश्न किए गए उसका उत्तर उसने यह दिया कि नदियां और योधा लोग अपनी उत्पत्ति और जन्म के विषय में कुछ नहीं जानते, उनका बल ही उनकी वंशावली है। परन्तु पांडवों ने युद्ध अस्वीकार किया और घमंडी कर्ण चुपचाप क्रोधित होकर चला गया।

द्रोण ने अब अपनी गुरुदक्षिणा मांगी । प्राचीन वीर योधाओं की नाईं वह बदला लेने में सब से अधिक प्रसन्न होता था । इसलिये उसने अपनी दक्षिणा में पाञ्चालों के राजा द्रुपद से जिसने कि उसका अपमान किया था बदला लेने के लिये कुरुओं की सहायता मांगी। उसने जो कुछ मांगा वह अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। द्रोण सेना सहित लड़ाई करने को चला, उसने पांचाल के राजा को पराजित किया, और उसका आधा राज्य छीन लिया। द्रुपद ने भी इसका बदला लेने का संकल्प कर लिया।

कौरव देश को अब भयानक मेघों ने आ घेरा। अब यह समय आ गया था कि धृतराष्ट्र एक युवराज को अर्थात् उस राजकुमार को जो कि उसकी वृद्धावस्था में राज करेगा, चुने। युधिष्ठिर का अपने पिता के राज्य पर स्वत्व अस्वीकार नहीं किया जासकता था और वही युवराज बनाया गया। परन्तु घमण्डी दुर्योधन ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और धृतराष्ट्र को उसकी इच्छा के अनुसार काम करना पड़ा। उसने पांचो पाण्डवों को वारणावत में जो आधुनिक इलाहाबाद के निकट कहा जाता है और जो उस समय हिन्दू राज्य का सीमाप्रान्त था, निकाल दिया। परन्तु दुर्योधन के द्वेष ने उनका वहां भी पीछा किया। जिस घर में पांडव लोग रहते थे उसमें आग लगा दी गई। पांडव लोग तथा उनकी माता एक सुरंग के मार्ग से बच गए और बहुत दिनों तक ब्राह्मणों के वेष में घूमते रहे।

इस समय देश देश में दूत लोग जाकर यह प्रकाशित कर रहे थे कि पांचाल देश के राजा द्रुपद की कन्या इस समय के सब से निपुण योधाओं में से अपना पति चुनेगी। जैसा कि ऐसे स्वयम्बर के अवसर पर हुआ करता था, सब बड़े बड़े राजा राजकुमार और योधा लोग चारो ओर से द्रुपद की सभा में इकट्ठे हो रहे थे। इनमें से प्रत्येक यह आशा करता था कि मैं इस सुन्दर दुलहिन को जो कि युवा हो चुकी है और अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है, पाऊंगा। वह सब से निपुण योधा से ब्याही जाने वाली थी और

इसके लिये जो परीक्षा नियत की गई थी वह तनिक कठिन थी। एक बहुत बड़े भारी धनुष को चलाना था और तीर एक चक्र में से होकर एक सोने की मछली की आंख में लगने को था, जो कि बहुत ऊंचे एक डंडे के सिरे पर लगाई गई थी।

पांचालों की राजधानी काम्पिल्य में केवल राजकुमार और योधा ही नहीं, वरन् देश के सब हिस्सों से देखनेवालों के झुंड के झुंड भी इकट्ठे हो रहे थे। बैठने के स्थान में राजकुमार लोग भरे हुए थे और ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे थे। तब द्रौपदी अपने हाथ में हार लिए हुए आई, जो कि आज के विजयी को पहिनाने के लिये था। उसके साथ उसका भाई धृष्टद्युम्न था और उसने आज की परीक्षा का कार्य कहा।

राजा लोग एक एक करके उठे और उन्होंने उस धनुष को चलाना चाहा, परन्तु उनमें से कोई भी कृतकार्य नहीं हुआ। तब घमण्डी तथा निपुण कर्ण परीक्षा के लिये उठा परन्तु वह रोका गया।

तब अचानक एक ब्राह्मण उठा और उसने धनुष तान कर चक्र में से सोने की मछली की आंख में तीर मारा। इस पर जयध्वनि उठी! और क्षत्री की कन्या द्रौपदी ने वीर ब्राह्मण के गले में जयमाल डाल दिया और यह ब्राह्मण उसे अपनी पत्नी की भांति ले चला। परन्तु एक ब्राह्मण के विजय प्राप्त करने और योधाओं के मान भंग होने के कारण क्षत्री लोग तूफानी समुद्र की नाईं असन्तोष में झुनझुनाने लगे। वे दुलहिन के पिता को घेर कर मार पीट करने को धमकाने लगे। अब पांडवों ने अपना भेष उतार दिया और आज के विजयी ने अपने को सच्चा क्षत्रिय अर्जुन प्रकाशित किया।

इसके आगे एक अद्भुत कल्पित कथा दी है कि पाण्डव लोग अपनी माता के पास गए और बोले कि हमने एक बहुमूल्य वस्तु जीती है। उनकी माता ने यह न जान कर कि यह वस्तु क्या है, अपने पुत्रों से उसे बांट लेने के लिये कहा। माता की आज्ञा उल्लङ्घन न करने के कारण पांचो भाइयों ने द्रौपदी से विवाह किया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि द्रौपदी और पांचो पांडवों की कथा बनावटी है। पांडवों ने अब पांचालों के प्रबल राजा के धसा संधि करके अन्धे राजा धृतराष्ट्र को इस बात के लिये विवश किया कि वह कुरु देश को उन लोगों में और अपने पुत्रों में बांट दे। परन्तु, बंटवारा बराबर नहीं किया गया। जमुना और गंगा के बीच की उपजाऊ भूमि तो धृतराष्ट्र के पुत्रो के पास रही और पांडवों को पश्चिम का जंङ्गल दिया गया। यह खाण्डवप्रस्थ जंङ्गल शीघ्र ही आग लगा कर साफ कर दिया गाय और इसमें एक नई राजधानी इन्द्रप्रस्थ बनाई गई, जिसका अनुमानित खंड हर आधुनिक दिल्ली आनेवालों को दिखलाया जाता है।

अब पांडवों ने चारों ओर सेना लेकर आक्रमण किया। परन्तु इन आक्रमणों का वर्णन हम नहीं करेंगे, विशेषतः इस कारण से कि ये दूर दूर के आक्रमण, आधुनिक समय के जोड़े हुए हैं। जब हमको महाभारत में लंका अथवा बंगाल के आक्रमणों का उल्लेख मिलता है तो हम बिना संशय के कह सकते हैं कि ये उत्तरकाल के जोड़े हुए लेख हैं।

अब युधिष्ठिर राजसूय अर्थात् राज्याभिषेक का उत्सव करने को था। उसने सब राजाओं को, और अपने हस्तिनापुर के कुटुम्बियों को, भी निमंत्रण दिया। सब से पूज्य स्थान गुजरात के यादवों के नायक कृष्ण को दिया गया। चेदिवंश के शिशुपाल ने इसका बड़ा विरोध किया, और कृष्ण ने उसे वहीं मार डाला। महाभारत के प्राचीन भागों में कृष्ण केवल एक बड़ा नायक है, कोई देवता नहीं है, और उसकी कथा से विदित होता है कि ऐतिहासिक काव्य के काल में गुजरात को जमुना के तटों से जाकर लोगों ने बसाया था।

यह कोलाहल शान्त होने पर नवीन राजा पर पवित्र जल छिड़का गया और ब्राह्मण लोग दान से लदे हुए विदा किए गए।

परन्तु नवीन राजा के भाग्य में बहुत दिनों तक राज्य भोगना नहीं बदा था। सब सदाचारों के रहते भी युधिष्ठिर को उस समय

के दूसरे नायकों की नांई जुआ खेलने का व्यसन था और दीर्घ-द्वेषी और कठोरचित्त दुर्योधन ने उसे जुआ खेलने के लिये लल-कारा। युधिष्ठिर राज्य, धन, अपने को, अपने भाइयों को, और अपनी स्त्री को भी बाजी लगा कर हार गया, और अब पांचो पांडव और द्रौपदी दुर्योधन के गुलाम हो गए। अभिमानी द्रौपदी ने अपनी इस दशा में दबना अस्वीकार किया, परन्तु दुःशासन उसके झोंट पकड़ कर उसे सभा भवन में घसीट ले गया और दुर्योधन ने मुग्ध सभा के सामने उसे बलात् अपने चरणों पर गिराया। पांडवों का क्रोध बढ़ रहा था, परन्तु इस समय वृद्ध धृतराष्ट्र के सभागृह में आने से यह कोलाहल शान्त हो गया। यह निश्चय हुआ कि पांडव लोग अपना राज्य हार गए, परन्तु वे दास नहीं हो सकते। उन्होंने बारह वर्ष के लिये देश से निकल जाना, और इसके पीछे एक वर्ष तक छिप कर रहना स्वीकार किया, । यदि धृतराष्ट्र के पुत्र उस वर्ष में उनका पता न लगा सकें तो उन्हें उनका राज्य फिर मिल जायगा।

इस प्रकार से पांडव लोग दूसरी बार देश से निकाले गए और बारह वर्ष तक भिन्न भिन्न स्थानों में घूमने के पीछे तेरहवें वर्ष में भेष बदल कर उन्होंने विराट के राजा के यहां नौकरी कर ली। युधिष्ठिर का काम राजा को जुआ सिखलाने का था। भीम प्रधान रसोइयां था, अर्जुन राजपुत्री को नाचना और गाना सिखलाता था, नकुल और सहदेव यथाक्रम घोड़ों और पशुओं के अध्यक्ष थे, और द्रौपदी रानी की परिचारिका थी। परन्तु इसमें एक कठिनाई उपस्थित हुई। रानी का भाई इस नई परिचारिका के अत्यन्त सौन्दर्य पर मोहित हो गया। वह उसे कुबचन कहता था और उसने उससे विवाह करने का संकल्प कर लिया था। अतएव भीम ने इसमें हस्तक्षेप करके उसे गुप्त रीति से मार डाला।

उस समय के राजाओं में पशुओं की चोरी कोई असामान्य बात नहीं थी। हस्तिनापुर के राजकुमार विराट से कुछ पशु चोरा ले गए। नृत्यशिक्षक अर्जुन इसे न सह सका। उसने अपने शस्त्र लिये रथ पर सवार होकर वहां गया और पशुओं को ले आया। परन्तु

ऐसा करने से वह प्रगट हो गया। परन्तु उसके प्रगट होने के समय उनके छिप कर रहने का वर्ष समाप्त हो गया था अथवा नहीं, सो कभी निर्णय नहीं हुआ।

अब पांडवों ने अपने राज्य को फिर से पाने के लिये दूत को हास्तिनापुर भेजा। परन्तु उनका स्वत्व अस्वीकार किया गया और दोनों दल युद्ध की तैयारियां करने लगे। यह ऐसा युद्ध था कि जिसके समान भारतवर्ष में कभी कोई युद्ध नहीं हुआ था। इस युद्ध में सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजा लोग एक अथवा दूसरे दल में सम्मिलित हुए और यह दिल्ली के उत्तर कुरुक्षेत्र में अट्ठारह दिन तक हुआ और इसका परिमाण भयानक बध और हिंसा हुई।

युद्ध की लम्बी कथा और अगणित उपकथाओं का वर्णन हम यहां नहीं करेंगे। भीष्म जिस समय युद्ध से रुकने के लिये विवश हुए उस समय अर्जुन ने उन्हें अन्याय से मार डाला। द्रोण ने अपने अभेद्य चक्रव्यूह से अपने पुराने शत्रु द्रुपद को मार डाला, परन्तु द्रुपद के पुत्र ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया और द्रोण को अनुचित रीति से मार डाला। भीम का दुःशासन से सामना हुआ, कि जिसने जुआ खेलनेवाले गृह में द्रौपदी का अपमान किया था। भीम ने उसकी मूड़ी काट डाली और बदला लेने के क्रोध में उसका रक्त पान किया। अन्त में कर्ण और अर्जुन में, जिनमें कि जन्म भर द्वेष था, बड़ा भारी युद्ध हुआ। जिस समय कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँस गया था और वह न हिल सकता था और न लड़ सकता था उस समय अर्जुन ने उसे अनुचित रीति से मार डाला। अन्तिम अर्थात् अट्ठारहवें दिन दुर्योधन भीम के आगे से भागा परन्तु बोली ठोली और ताने से वह फिर कर लड़ने को विवश हुआ। भीम ने एक अनुचित आघात से (क्योंकि आघात कमर के नीचे किया गया था) उस जंघे को चकनाचूर कर डाला जिस पर दुर्योधन ने एक समय द्रौपदी को खींचा था। और यह घायल योद्धा मरजाने के लिये वहीं छोड़ दिया गया। अभी मारहत्या का अन्त नहीं हुआ, क्योंकि द्रोण के पुत्र ने रात्रि के समय शत्रु

के बल पर आक्रमण करके द्रुपद के पुत्र को मार डाला, और इस प्रकार से पुराने कलह को रक्त बहाकर शान्त किया।

शेष कथा अब बहुत थोड़ी रह गई है। पांडव हस्तिनापुर को गए और युधिष्ठिर राजा हुआ। कहा जाता है कि उसने आर्यावर्त के सब राजाओं को पराजित किया और अन्त में अश्वमेधयज्ञ किया। एक घोड़ा छोड़ा दिया गया जो अपनी इच्छा के अनुसार एक वर्ष तक घूमता रहा और किसी राजा ने उसे रोकने का साहस नहीं किया। इससे सब आस पास के राजाओं का वशवर्ती होना समझा गया और वे लोग इस बड़े अश्वमेध में निमंत्रित किए गए। हम लोग देख चुके हैं कि वैदिक काल में घोड़ा केवल खाने के लिये मारा जाता था। ऐतिहासिक काव्य काल में अश्वमेध पापों के प्रायश्चित के लिये किया जाने लगा और राजाओं में इससे आधिपत्य की कल्पना की जाने लगी।

महाभारत की, उसके अगणित उपाख्यानों और उपकथाओं, और अमानुषी प्रसंगों और वृत्तान्तों को छोड़ कर, यह कथा है। कृष्ण द्वैपायन, (यादवों के नायक कृष्ण नहीं) जिन्होंने वेदों को सङ्कलित किया था उस कुमारी कन्या के पुत्र कहे जाते हैं जिसने पीछे से शान्तनु से विवाह किया। अतएव वह भीष्म के अर्धभ्राता थे। वह अकस्मात् अमानुषिक रीति से दिखलाई पड़ते हैं और उपदेश और शिक्षा देते हैं। इस कथा से एक ऐतिहासिक बात विदित होती है। वह यह कि वेद कुरु और पाञ्चालों के युद्ध के पहिले सङ्कलित किए गए थे।

ऊपर के संक्षिप्त वृत्तान्त से जान पड़ेगा कि गङ्गा की घाटी के प्रथम हिन्दू अधिवासियों ने उस समय तक वैदिक काल की वह प्रबल वीरता और दृढ़ रणप्रिय विचार नहीं खोए थे। अब, राजा लोग अधिक देशों और लोगों पर राज्य करते थे, आचार व्यवहार अधिक सभ्य हो गए थे, सामाजिक और युद्ध के नियम अधिक उत्तमता से बढ़ गए थे, और स्वयं युद्ध शास्त्र अच्छी तरह से बन गया था। परन्तु फिर भी कुरुओं और पांचालों के सभ्य आचारों

में वैदिक योधाओं की कठोर और निर्दय वीरता झलकती है और उन जातियों ने, यद्यपि सभ्यता प्राप्त की थी, पर जातीय जीवन की वीरता बहुत नहीं खोई थी। इन कठोर जातियों में जातिभेद कैसी अधूरी तरह से था सो कई बातों से विदित होता है, जो कि उत्तर काल के लेखकों के जोड़े हुए लेखों के रहते भी अब तक मिलती हैं। हस्तिनापुर के प्राचीन राजा शान्तनु का भाई देवापि एक पुरोहित था। महाभारत का सबसे विद्वान नायक, युधिष्ठिर क्षत्री है और सबसे निपुण योधा द्रोण ब्राह्मण है। और वेदों को सङ्कलित करनेवाले स्वयम् पूज्य कृष्णद्वैपायन ब्राह्मण थे अथवा क्षत्री?

अध्याय ३

——:०:——

विदेह कोशल और काशी।

आर्यों के जीते हुए देश की सीमा बढ़ती गई। जब जमुना और गंगा के बीच का देश पूरी तरह से जीता जाकर बस गया और हिन्दुओं का हो गया, तो उद्योगी अधिवासियों के नए झुंडों ने गंगा को पार करके नए नए अधिनिवेशों और हिन्दु राज्यों को स्थापित करने के लिये पूरब की ओर और आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। इस प्रकार से उन्होंने एक एक नदियों को पार किया, एक एक जंगल को ढूंढ कर के साफ़ किया और एक एक देश को धीरे धीरे जीता, बसाया और हिन्दूओं का बनाया। इन देशों में दीर्घकाल तक लड़ाइयों और धीरे धीरे हिन्दुओं का अधिकार होने का इतिहास अब हम लोगों को अप्राप्त है और जो ग्रन्थ इस समय तक बचे हैं उनसे हम लोगों को गंगा के पूरब में प्रबल और सभ्य हिन्दू राज्यों के, अर्थात् आधुनिक अवध देश में कोशलों के राज्य, उत्तरी बिहार में विदेहों के राज्य, और आधुनिक बनारस के आस पास काशियों के राज्य, स्थापित होने का पता लगता है।

विदेहों के पूरब की ओर बढ़ने का कुछ अस्पष्ट सा हाल नीचे उद्धृत किए हुए सतपथ ब्राह्मण के वाक्यों में मिलता है—

"(१०) माधव विदेघ के मुँह में अग्नि वैस्वानर थी। उसके कुल का पुरोहित ऋषि गोतम राहूगण था। जब वह उससे बोलाता था तो माधव इस भय से कोई उत्तर नहीं देता था कि कहीं अग्नि उसके मुंह से गिर न पड़े।

"(१३) फिर भी उसने उत्तर नहीं दिया। (तब पुरोहित ने कहा) 'हे घृतस्न, हम तेरा आवाहन करते हैं!' (ऋग्वेद म० ५

सू० २६ रि०२)। उसका इतना कहना था कि घृत का नाम सुनते ही अग्नि वैश्वानर राजा के मुंह से निकल पड़ी। वह उसे रोक न सका। वह उसके मुंह से निकल कर इस भूमि पर गिर पड़ी।

"(१४) माधव विदेघ उस समय सरस्वती नदी पर था। वहां से वह (अग्नि) इस पृथ्वी को जलाते हुए पूरब की ओर बढ़ी। और ज्यों ज्यों वह जलाती हुई बढ़ती जाती थी त्यों त्यों गौतम राहूगण और विदेघ माधव उसके पीछे पीछे चले जाते थे। उसने इन सब नदियों को जला डाला (सुखा डाला)। अब वह नदी जो सदानीर (गण्डक) कहलाती है उत्तरी (हिमालय) पर्वत से बहती है। उस नदी को उसने नहीं जलाया। पूर्व काल में ब्राह्मणों ने इस नदी को यही सोच कर पार नहीं किया क्योंकि अग्निवैश्वानर ने उसे नहीं जलाया था।

"(१५) परन्तु इस समय उसके पूरब में बहुत से ब्राह्मण हैं। उस समय वह (सदानीर के पूरब की भूमि) बहुत करके जोती बोई नहीं जाती थी और बड़ी दलदलही थी, क्योंकि अग्निवैश्वानर ने उसे नहीं चक्खा था।

"(१६) परन्तु इस समय वह बहुत जोती बोई हुई है क्योंकि ब्राह्मणों ने उसमें होमादि करके उसे अग्नि से चखवाया है। अभी भी गरमी में वह नदी उमड़ चलती है। वह इतनी ठंढी है, क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने उसे नहीं जलाया।

"(१७) माधव विदेघ ने तब अग्नि से पूछा कि 'मैं कहां रहूं ?' उसने उत्तर दिया कि "तेरा निवास इस नदी के पूरब हो।" अब तक भी यह नदी कोशलों और विदेहों की सीमा है, क्योंकि ये माधव की सन्तति हैं।" (सतपथ ब्राह्मण १,४,१)

ऊपर के वाक्यों में हम लोगों को कल्पित कथा के रूप में अधिवासियों के सरस्वती के तट से गण्डक तक धीरे धीरे बढ़ने का वृत्तान्त मिलता है। यह नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। कोशल लोग उसके पश्चिम में रहते थे और विदेह लोग उसके पूरब में।

वर्षों में, सम्भवतः कई शताब्दियों में विदेहों का राज्य शक्ति और सभ्यता में बढ़ा, यहां तक कि वह उत्तरी भारतवर्ष में सब से प्रधान राज्य हो गया।

भारतवर्ष के ऐतिहासिक काव्य काल के इतिहास में विदेहों का राजा जनक कदाचित सब से प्रधान व्यक्ति है। इस सम्राट ने केवल भारतवर्ष के हिन्दू राज्य की दूरतम सीमा तक अपना प्रभुत्व ही नहीं स्थापित कर लिया था वरन् उसने अपने निकट उस समय के बड़े बड़े विद्वानों को रक्खा था, उनसे वह शास्त्रार्थ किया करता था और जगदीश्वर के विषय में उन्हें शिक्षा दिया करता था। यही कारण है कि जनक के नाम ने अक्षय कीर्ति प्राप्त की है। काशियों के राजा अजातशत्रु ने, जोकि स्वयम् एक विद्वान था और विद्या का एक प्रसिद्ध फैलानेवाला था, निराश हो कर कहा कि "सचमुच, सब लोग यह कह कर भागे जाते हैं कि हमारा रक्षक जनक है!" (बृहदारण्यक उपनिषद् ११,३१)

जनक के बड़े यश का कारण कुछ अंश में उसकी सभा के प्रधान पुरोहित याज्ञवल्क्य वाजसनेयी की बुद्धि और विद्या है। राजा जनक के आश्रय में इस पुरोहित ने उस समय के यजुर्वेद को दोहराने, मन्त्रों को व्याख्यानों से अलग करने, उनको संक्षिप्त करके नए यजुर्वेद (शुक्ल यजुर्वेद) के रूप में बनाने, तथा इसका विस्तृत वर्णन एक बड़े ब्राह्मण (सतपथ ब्राह्मण) में करने का साहस किया। इस महतकार्य में ब्राह्मणों ने कई पीढ़ी तक श्रम किया, परन्तु इस कार्य को आरम्भ करने का गौरव इस शाखा के संस्थापक याज्ञवल्क्य वाजसनेयी और उसके विद्वान आश्रयदाता, विदेहों के राजा जनक को ही प्राप्त है।

परन्तु जनक इससे भी अधिक सत्कार और प्रशंसा किए जाने योग्य है। जब कि ब्राह्मण लोग क्रिया संस्कारों को बढ़ाए जाते थे और प्रत्येक क्रिया के लिये स्वमतानुसार कारण बतलाते जाते थे तो क्षत्री लोग ब्राह्मणों के इस पाण्डित्य दर्प से कुछ अधीर से जान पड़ते हैं। विचारवान और सच्चे लोग यह सोचने लगे कि

क्या धर्म केवल इन्हीं क्रिया संस्कारों और विधियों को सिखला सकता है। विद्वान क्षत्री लोग, यद्यपि अब तक ब्राह्मणों के बनाए हुए क्रिया संस्कारों को करते थे, परन्तु उन्हों ने अधिकपुष्ट विचार प्रचलित किए और आत्मा के उद्देश और ईश्वर के विषय में खोज की। ये नए तथा कृतोद्यम विचार ऐसे वीरोचित, पुष्ट और दृढ़ थे कि ब्राह्मण लोगों ने, जो कि अपने ही विचार से अपने को बुद्धिमान समझते थे, अन्त को हार मानी और वे क्षत्रियों के पास इस नई सम्प्रदाय के पाण्डित्य को समझने के लिये आए। उपनिषदों में येही दृढ़ तथा पुष्ट विचार हैं जो ऐतिहासिक काव्य काल के अन्त में प्रचलित हुए थे और विदेह के राजा जनक का उपनिषदों के इन विचारों को उत्पन्न करने के कारण, उस समय के अन्य राजाओं की अपेक्षा बहुत अधिक सत्कार किया जाता है।

उपनिषदों की शिक्षा के विषय में पूरा पूरा वर्णन हम आगे चलकर किसी अध्याय में करेंगे; परन्तु जनक तथा उस समय के और राजाओं का वृतान्त पूरा न होगा जब तक कि हम यहां उनमें से कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत न करें जिनसे ब्राह्मणों का उनसे सम्बन्ध तथा कृतोद्यम वेदान्तिक विचारों के लिये भारतवर्ष में उनके उद्योग, प्रगट होते हैं।

"विदेह के जनक की भेट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो कि अभी आए थे। ये स्वेत केतु आरुणेय, सोमसुष्म सत्ययज्ञि, और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा कि 'आप अग्निहोत्र कैसे करते हैं?"

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया, पर किसी का उत्तर ठीक नहीं था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था, परन्तु वह पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे ऐसा कहा और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।

ब्राह्मणों ने कहा "इस राजन्य ने हम लोगों का अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया और उससे शंका निवारण की (सतपथ ब्राह्मण ११,४,५) "अब से जनक ब्राह्मण हो गया" (सतपथ ब्राह्मण ११,६,२१)

छान्दोग्य उपनिषद (५, ३) में लिखा है कि ऊपर के तीनों ब्राह्मणों में से एक, अर्थात् स्वेतकेतु आरुणेय, पांचालों की एक सभा में गया और प्रवाहन जैवलि नामक एक क्षत्री ने उससे कुछ प्रश्न किए, जिसका उत्तर वह न दे सका। वह उदासचित्त अपने पिता के पास आया और बोला "उस राजन्य ने मुझसे पांच प्रश्न किए और मैं उनमें से एक का भी उत्तर न दे सका।" उसका पिता गौतम भी स्वयम् इन प्रश्नों को न समझ सका और वह अपना समाधान करने के लिये उस क्षत्री के पास गया। प्रवाहन जैवलि ने उत्तर दिया कि "हे गौतम, यह ज्ञान तुम्हारे पहिले और किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया और इसलिये यह शिक्षा इस सृष्टि भर में केवल क्षत्री जाति की ही है।" और तब उसने गौतम को वह ज्ञान दिया।

इस उपनिषद में एक दूसरे स्थान पर, इसी प्रवाहन ने दो घमण्डी ब्राह्मणो को निरुत्तर कर दिया और तब उन्हें परमेश्वर के विषय में सच्चा ज्ञान दिया।

सतपथ ब्राह्मण (१०, ६, १, १) में यह कथा लिखी है और वही छान्दोग्य उपनिषद (५, २) मे भी लिखी है कि पांच ब्राह्मण गृहस्थों और वेदान्तियों को इस बात की जिज्ञासा हुई कि 'आत्मा क्या है और ईश्वर क्या है?' वे लोग यह ज्ञान प्राप्त करने के लिये उद्दालक आरुणी के पास गए। परन्तु आरुणी को भी इसमें सन्देह था और इसलिये वह उन्हें क्षत्री राजा अश्वपति कैकेय के पास ले गया, जिसने उन्हें उस यज्ञ में विनयपूर्वक ठहरने को निमंत्रित किया जिसे वह किया चाहता था। उसने कहा "मेरे राज्य में कोई चोर, कंजूस, शराबी, कोई ऐसा मनुष्य जिसके यहां मूर्ति न हो, कोई मूर्ख, व्यभिचारी अथवा व्यभिचारिणी नहीं है। महाशयो, मैं यज्ञ करता हूं और जितना धन मैं प्रत्येक ऋत्विक को दूंगा उतना आप लोगों को भी दूंगा। कृपाकर आप यहां ठहरिए।"

वे लोग ठहरे और उन्होंने अपने आने का अभिप्राय कहा और "दूसरे दिन प्रातः काल वे लोग अपने हाथों में ईंधन लिए (शिष्यों

की नाईं) उसके निकट गए और उसने बिना किसी संस्कार की विधि के उन्हें वह ज्ञान दे दिया जिसके लिये वे आए थे।

यह बात आश्चर्यजनक है कि भिन्न भिन्न उपनिषदों में पुनः पुनः एकही नाम और भिन्न भिन्न रूपों में एक ही कथाएं मिलती हैं, जिससे प्रगट होता है कि प्राचीन उपनिषद् लगभग एकही समय में बनाए गए थे। उद्दालक आरुणी, जिसका नाम गौतम भी है, और उसके पुत्र स्वेतकेतु का वर्णन फिर कौशीनाकि उपनिषद् में भी मिलता है। उसमें पिता और पुत्र हाथ में ईंधन लेकर चित्र-गांग्यायनी के पास ज्ञान सीखने को गए। क्षत्री राजा चित्र ने कहा "हे गौतम तुम ब्राह्मण होने योग्य हो, क्योंकि तुम में अभिमान नहीं आया। यहां आओ, हम तुम्हारा समाधान कर देंगे।" (१,१)

कौशीनाकि उपनिषद् में (४) प्रसिद्ध विद्वान गार्ग्य बालाकि और काशियों के विद्वान राजा अजातशत्रु के वादविवाद के विषय में एक प्रसिद्ध कथा लिखी है। इस घमंडी ब्राह्मण ने राजा को ललकारा, परन्तु इस पर जो शास्त्रार्थ हुआ उसमें उसकी हार हुई और वह निरुत्तर हो गया। अजातशत्रु ने उससे कहा 'हे बालाकि, तुम यहीं तक जानते हो?' बालाकि ने उत्तर दिया 'केवल यहीं तक'। अब अजातशत्रु ने उससे कहा कि 'तुमने मुझे व्यर्थही यह कहकर ललकारा कि क्या मैं तुम्हें ईश्वर के विषय का ज्ञान दूं?' 'हे बालाकि, वह जो उन सब वस्तुओं का (जिसका तुमने वर्णन किया है) कर्ता है, वह जिसकी यह सब माया है, केवल उसीका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।'

तब बालाकि अपने हाथ में ईंधन लेकर यह कहता हुआ आया कि 'क्या मैं आपके निकट शिष्य की नाईं आऊं?' अजातशत्रु ने उसे कहा 'मै इसे अनुचित समझता हूं कि कोई क्षत्री किसी ब्राह्मण को शिष्य बनावे। आओ, मैं तुम पर सब बात स्पष्ट कर देता हूं।"

यह कथा, तथा स्वेतकेतु आरुणेय और क्षत्री राजा प्रवाहन जैवलि की कथा भी बृहदारण्यक उपनिषद् में पुनः दी है।

उपनिषदों में ऐसे अगणित वाक्य मिलते हैं जिनमें क्षत्री लोग सच्चे धार्मिक ज्ञान के सिखलाने वाले लिखे गए हैं। परन्तु यहां पर अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। जितना हम ऊपर कह आए हैं वह यह दिखलाने के लिये बहुत है कि हिन्दू धर्म तथा वेदान्त के इतिहास में ऐतिहासिक काव्य काल के अन्त में क्षत्री लोग किस अवस्था में थे। मानुषी ज्ञान के इतिहास में उपनिषद् एक नया समय स्थिर करते हैं। यह ज्ञान, जिसका समय ईसा के लगभग १००० वर्ष पहिले है "पहिले किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था। वह इस सृष्टि में केवल क्षत्रियों ही का था।"

येही *यथार्थ* कारण हैं जिससे हम लोगों को विदेह के राजा जनक की प्रशंसा करनी चाहिए और उनका कृतज्ञ होना चाहिए। यह बड़े कौतूहल की बात है कि हम लोग जनक, विदेहों तथा कोशलों से एक कल्पित कथा द्वारा भी परिचित हैं, जो कि इन पूज्य नामों के विषय में कही गई है। यह कल्पित कथा आर्य लोगों के दक्षिणी भारतवर्ष को विजय करने से सम्बन्ध रखती है। परन्तु उत्तरकाल के कवियों ने भक्ति और कृतज्ञता में चूर होकर इस बड़ी ऐतिहासिक घटना का सम्बन्ध उन प्राचीन राजाओं के नाम से कर दिया है जिनका इस विजय से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। योरप में उस अन्धकारमय समय का भी इतिहास कभी ऐसा अस्पष्ट नहीं था कि कोई कवि जेरुसलेम का प्रत्युद्धार शार्लमेगन अथवा एल्फ्रेड दी ग्रेट द्वारा वर्णन करता! परन्तु भारतवर्ष का दूसरा महाकाव्य लंका का विजय होना एक कोशिलों के राजा द्वारा वर्णन करता है, जिसका विवाह विदेहों के राजा जनक की कन्या से हुआ था।

हमारे आधुनिक ज्ञान से इस बात का निर्णय करना सम्भव नहीं है कि रामायण पहिले पहिल कब बनाई गई। हम लोगों को सूत्र ग्रन्थों में महाभारत के उल्लेख मिलते हैं परन्तु उनमें रामायण का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ईसा के पांच शताब्दी पहिले बङ्गाल के विजय नामी राजा ने लंका का पता लगाया था और उसे जीता

था। अतएव पहिले पहिल लोगों का यह विचार हो सकता है कि यह महाकाव्य उसी समय में रचा गया होगा। परन्तु इसके विरुद्ध यही इस टापू का होना, विजय के कई शताब्दी पहिले से हिन्दुओं को मालूम था। अतएव रामायण, जिसमें कि विजय की जीत का उल्लेख कहीं पर नहीं आया है, विजय के पहिले उस समय में बनी होगी जब कि यह द्वीप हिन्दुओं को बहुत ही अस्पष्ट रीति से ज्ञात था।

इस अनुमान का अधिक सम्भव होना इस बात से भी प्रगट होता है कि विन्ध्या पर्वत के दक्षिण का भारतवर्ष का भाग रामायण में एक अनन्त बन की नांई वर्णन किया गया है और वहां के आदि वासियों का बन्दरों और भालुओं की नांई उल्लेख है। हम लोगों को यह मालूम है कि आर्य लोग गोदावरी और कृष्णा नदी के तट पर दर्शनकाल के आदि में बसे और ईसा के कई शताब्दि पहिले अन्ध्र आदि वंशों के बड़े बड़े राज्य विभव को प्राप्त हुए और शास्त्र तथा विद्या के नए नए सम्प्रदाय स्थापित हुए। अतएव रामायण, दक्षिण में इन सब बातों के होने के पहिले ही रची गई होगी, क्योंकि उसमें विन्ध्या के दक्षिण में आर्य लोगों की सभ्यता का उल्लेख कहीं भी नहीं है। अतः आदि महाभारत की नांई आदि रामायण भी ऐतिहासिक, काव्य काल ही में बनी थी।

महाभारत की नांई रामायण में भी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन नहीं है वरन् उसीकी भांति इसके नायक भी कल्पित मात्र हैं।

ऋग्वेद के समय ही से खेत की हल रेखा, सीता ने देवी की ख्याति प्राप्त की थी और उसकी पूजा भी देवी की भांति की जाती थी। अतएव जब दक्षिणी भारतवर्ष में धीरे धीरे कृषि फैलती गई तो कवियों के लिये यह रचना करना कुछ कठिन नहीं था कि लोग सीता को चोरा कर दक्षिण में ले गए। और जब इस देवी तथा स्त्री ने, जोकि मानुषी कल्पना की सबसे उत्तम रचना है, यद्यपि

तथा स्नेह प्राप्त कर लिया था, तो वह स्वभावतः ही राजाओं में सब से पुण्यात्मा और विद्वान, विदेहों के राजा जनक की कन्या कही गई।

परन्तु इस महाकाव्य में जिस सीता के पति और कोशलों के राजा राम का वर्णन है, वह कौन हैं? उत्तरकाल के पुराणों में लिखा है कि वे विष्णु का अवतार थे। परन्तु जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय तक स्वयम् विष्णु ने श्रेष्ठता नहीं प्राप्त की थी। उस समय भी ऐतिहासिक काव्य काल के देवताओं में इन्द्र प्रधान माना जाता था और सूत्र ग्रन्थों (यथा पारस्कर गृह्य सूत्र २, १७, ९) में हलरेखा की देवी, सीता इन्द्र की पत्नी कही गई है। तो क्या यह अनुमान ठीक नहीं है कि महाभारत के नायक अर्जुन की नांई रामायण के नायक राम की रचना, केवल दूसरे रूप में अनावृष्टि के दैत्यों से लड़ते हुए इन्द्र की कथा से की गई हो? इस प्रकार से इस महाकाव्य का, जो उत्तरी भारतवर्ष के ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन करता है, और उस महाकाव्य का सम्बन्ध, जो दक्षिणी भारतवर्ष की ऐतिहासिक विजय वर्णन करता है, इन्द्र की कथा के द्वारा कर दिया गया है।

परन्तु यद्यपि रामायण ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन की भांति बिलकुल निरर्थक है, फिर भी महाभारत की नांई उससे भारतवर्ष की पुरानी सामाजिक दशा का पता लगता है। अतएव यहां पर उसकी कथा का संक्षेप में लिखना आवश्यक जान पड़ता है। परन्तु इसके पहिले केवल इतना और कहना है कि जीवन के दृश्य के लिये भी रामायण, महाभारत के समय से बहुत पीछे की अर्थात् ऐतिहासिक काव्य काल के बिलकुल अन्त की है। रामायण में महाभारत के क्षत्रियों की प्रचण्ड वीरता तथा आत्मरक्षा नहीं पाई जाती। उसमें लोग ब्राह्मणों के अधिक आधीन पाए जाते हैं। स्वयम् जनक, क्षत्रियों की विद्या और गौरव का अभिमानी प्रतिपादक नहीं, वरन् ब्राह्मणों का एक नम्र सेवक वर्णन किया गया है। और इस महाकाव्य का नायक, स्वयम् राम, यद्यपि एक क्षत्री

योधा परशुराम से सामना करके उसे पराजित करना है, परन्तु वह इसे अनेक क्षमा प्रार्थनाओं के साथ करता है! कदाचित परशुराम की कथा में एक बड़ी ऐतिहासिक बात है। यह वर्णन किया गया है कि उसने क्षत्रियों से लड़ कर उस जाति को निर्मूल कर दिया और फिर इस महाकाव्य के नायक राम ने उसे पराजित किया। ऐसा जान पड़ता है कि यह कथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वास्तविक विरोध और द्वेष को प्रगट करती है, जिसके चिन्ह हम लोग कथा के रूप में उपनिषदों में देख चुके हैं।

सारांश यह कि रामायण के पढ़ने से यह विदित होता है कि भारतवर्ष की सच्ची सूरता का समय बीत गया था और आर्यलोग गंगा की घाटी में कई शताब्दियों तक पड़े रहने के कारण शिथिल से हो गए थे। उसमें महाभारत की वे वीरोचित, यद्यपि कुछ अशिष्ट और आचार व्यवहार की बातें नहीं मिलतीं। उसमें सच्ची वीरता के मनुष्य और सच्ची दृढ़ता और संकल्प के साथ लड़े हुए युद्ध नहीं मिलते। उसमें कर्ण, दुर्योधन और भीम की नाईं शारीरिक बल के तथा अभिमानी और दृढ़चित्त मनुष्य नहीं मिलते। रामायण में उन्नति को प्राप्त नायकाएं हैं, जैसे अभिमानी और भीतरी मार करने वाली कैकेयी, अथवा शान्त और सदा दुःख सहती हुई सीता। रामायण के नायक लोग किंचित् सीधे और साधारण मनुष्य हैं जोकि ब्राह्मणों के बड़े माननेवाले और शिष्टाचार और धर्म के नियमों का पालन करने में बड़े उत्सुक और बड़े युद्ध करने वाले हैं, परन्तु उनमें सच्चे लड़नेवालों की दृढ़ता नहीं है! जाति की सूरता में परिवर्तन होगया था, और यदि राजा प्रजा बहुत सभ्य और नियमानुसार चलनेवाले होगए थे तो उनमें दृढ़ता और वीरता भी कम होगई थी। तेरहीं शताब्दी के, अर्थात् जब दृढ़ और विजयी कुरु और पांचाल लोग द्वाब में राज्य करते थे उस समय के हिन्दू लोगों का जीवन जानने के लिये हम अपने पाठकों को महाभारत पढ़ने को कहेंगे और ग्यारहवीं शताब्दी के अर्थात् जब कोशल और विदेह लोग गंगा की घाटी में अधिक काल तक रहने से नियमानुकूल चलनेवाले ब्राह्मणों के आधीन, विद्वान और शिथिल हो

गए थे, उस समय के हिन्दुओं के जीवन का वृतान्त जानने के लिये हम पाठकों को रामायण पढ़ने को कहेंगे। ऐतिहासिक काव्य काल के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक हिन्दू समाज में जो परिवर्तन हुआ वह इन दोनों महाकाव्यों से प्रगट होता है।

अब हम रामायण की कथा प्रारम्भ करते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि जो लोग गंगा और गंडक नदी के बीच के विस्तृत देश में रहते थे वे कोशलों के नाम से प्रसिद्ध थे। इस जाति के एक प्रसिद्ध राजा दशरथ की राजधानी अयोध्या अथवा अवध में थी और इस प्राचीन नगर का खंडहर अब तक यात्री लोगों को कुछ टूहों के रूप में दिखलाया जाता है। दशरथ का रानियों में से तीन का सब से अधिक सत्कार किया जाता था। इनमें से कौशल्या से उसे उसका सब से बड़ा पुत्र राम हुआ, कैकेयी से भारत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। दशरथ ने अपनी वृद्धावस्था में राम को युवराज बनाने का विचार किया परन्तु अभिमानी और सुन्दर कैकेयी ने यह हठ किया कि उसीका पुत्र युवराज बनाया जाय, और दुर्बल वृद्ध राजा को अपनी पत्नी की इस दृढ़ इच्छा को मानना पड़ा।

उसके पहिलेही राम ने एक स्वयम्बर में विदेहों के राजा जनक की कन्या सीता को प्राप्त किया था। इस स्वयम्बर में बहुतेरे राजे और राजकुमार इकट्ठे हुए थे, परन्तु उनमें से केवल राम ही भारी धनुष को उठाकर उसके दो टुकड़े कर सके थे। परन्तु इस समय जब कि राम के युवराज बनाए जाने की आशा में सारी अयोध्या में हर्ष हो रहा था, कैकेयी के महल में यह निश्चय हुआ कि भरत युवराज हों और राम १४ वर्ष के लिये देश से निकाल दिए जांय।

राम इतना आज्ञाकारी और धर्मज्ञ था कि इस आज्ञा को टालना तो दूर रहा, उसने इसपर रोष भी नहीं किया। उसका श्रद्धालु भाई लक्ष्मण भी उसके साथ हुआ और सुशीला सीता तो अपने पति से अलग होने की बात ही नहीं सुनती थी। अतः अयोध्या

वासियों को दुःख में रोते छोड़कर राम सीता और लक्ष्मण नगर से बाहर निकल गए।

ये लोग पहिले प्रयाग या इलाहाबाद में भारद्वाज मुनि के आश्रम में और फिर वहां से आधुनिक बुन्देलखंड के निकट चित्रकूट में वाल्मीकि के आश्रम में गए। वाल्मीकि रामायण के बनानेवाले कहे जाते हैं, ठीक उसी तरह से जैसे कि वेदों के संकलित करनेवाले कृष्णद्वैपायन व्यास महाभारत के बनानेवाले कहे जाते हैं।

दशरथ राम के शोक में मर गए और भरत ने चित्रकूट में राम के पास जाकर पिता की मृत्यु का समाचार कहा और लौट चलने की प्रार्थना की। परन्तु राम ने प्रतिज्ञा की थी उससे उसने अपने को बँधा समझा और अन्त में यह स्थिर हुआ कि १४ वर्ष बीत जाने पर राम लौट कर राजगद्दी पर बैठें। भरत अयोध्या को लौट आए।

चित्रकूट छोड़कर राम दण्डक बन में और गोदावरी के उद्गम के निकट के बनों और अनार्य जातियों में घूमते रहे। क्योंकि अभी दक्षिणी भारतवर्ष में आर्य लोग आकर नहीं बसे थे। इस प्रकार से १३ वर्ष बीत गए।

लंका और दक्षिणी भारतवर्ष के राक्षसों के राजा रावण ने सीता की जो अब बनों में थी, सुन्दरता का समाचार पाया और राम की अनुपस्थिति में वह उसे उनकी कुटी से चोरा कर लंका को लेगया। राम ने बहुत खोज करने पर इसका पता पाया। उसने दक्षिणी भारतवर्ष की अनार्य जातियों से जो बन्दर और भालू वर्णन किए गए हैं, मेल किया और लंका जाकर अपनी पत्नी को प्राप्त करने की तैयारियां कीं।

अनार्य जातियों में बाली एक राजा था। उसका भाई सुग्रीव उसका राज्य और उसकी स्त्री छीनना चाहता था। राम ने बाली से लड़कर उसे मार डाला, सुग्रीव को राज्य और बाली की विधवा स्त्री को पाने में सहायता दी, और तब सुग्रीव ने अपनी सेना लेकर लंका को प्रस्थान किया।

हनुमान जो कि अनार्य सेना का प्रधान सेनापति था मार्ग दिख-लाता हुआ चला। वह उस साठ मील के जलडमरू मध्य को लांघ गया जो भारतवर्ष को लंका से अलग करता है, वहां उसने सीता को पाया और उसे राम की भेजी हुई अंगूठी दी। तब उसने रावण की राजधानी में आग लगा दी और राम के पास लौट आया।

अब इस अन्तरीप में पत्थरों से एक सेतु बनाया गया। पाठक जानते होंगे कि इस अन्तरीप के लगभग आर पार एक प्राकृतिक सेतु है और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस स्थान के प्राकृतिक रूप ने ही कवि के मन में यह विचार उत्पन्न किया कि यह सेतु राम की सेना के अमानुषी परिश्रम से बनाया गया था। तब सब सेना ने पार होकर रावण की राजधानी में घेरा डाला।

इसके पीछे जो युद्ध का वर्णन दिया है वह यद्यपि काव्यमय घटनाओं और उत्तेजक वर्णनों से भरा है, पर अस्वाभाविक और चित्त को उचा देनेवाला है। रावण ने इन आक्रमण करनेवालों को भगाने के लिये एक एक करके अपने सब सरदारों को भेजा। परन्तु वे सब राम के अमानुषी शस्त्रों और गुप्त मंत्रों से युद्ध में मारे गए। रावण के अभिमानी पुत्र इन्द्रजीत ने बादलों पर से युद्ध किया पर लक्ष्मण ने उसे मार डाला। रावण क्रोधित होकर आया और उस-ने लक्ष्मण को मार डाला, परन्तु यह मृतक वीर, दृढ़ भक्त हनुमान की लाई हुई किसी औषधि के प्रभाव से फिर जी उठा। रावण का एक भाई विभीषण अपने भाई को छोड़ कर राम से मिल गया था। उसने राम से वह भेद बता दिया था जिससे प्रत्येक योधा मारा जा सकता था, और इस प्रकार से रावण की अभिमानी सेना के सब नायक एक एक करके मरते जाते थे। अन्त में स्वयम् रावण आया और राम के हाथों मारा गया। सीता पुनः प्राप्त हो गई परन्तु उसे अपने सतीत्व का प्रमाण जलती हुई चिता में कूद कर और फिर उसमें से बिना जले हुए निकल कर देना पड़ा।

अब चौदह वर्ष बीत गए थे, इसलिये राम और सीता अयोध्या को लौट आकर राजगद्दी पर बैठे। परन्तु लोग सीता पर सन्देह

करते थे, क्योंकि वह रावण के यहाँ रही थी और इसलिये वे लोग विचारते थे कि उसका सतीत्व अवश्य भ्रष्ट हो गया होगा। इसलिये राम ने अपने पिता की नाई दुर्बल होकर, बिचारी दुःख सहती हुई सीता को, जो उस वक्त गर्भवती थी, देश से निकाल दिया।

वाल्मीकि ने उसका चित्रकूट में स्वागत किया और वहाँ उसे दो पुत्र, लव और कुश हुए। वाल्मीकि ने रामायण बनाई और इन लड़कों को उसे कंठ कराया। इस प्रकार से कई वर्ष बीत गए।

तब राम ने अश्वमेध करना निश्चय किया और इसके लिये घोड़ा छोड़ा गया। वह वाल्मीकि के आश्रम तक आया और वहाँ इन लड़कों ने उसे खेलवाड़ में पकड़ कर रख लिया। राम की सेना ने व्यर्थही इस घोड़े को उनसे ले लेने का यत्न किया। अन्त को स्वयम् राम आए और उन्होंने इन राजकुमारों को देखा, परन्तु यह नहीं जाना कि ये कौन हैं। राम ने उनके मुख से रामायण का पाठ सुना, और अन्त में उन्हें अपना पुत्र जानकर गले से लगाया।

परन्तु सीता के भाग्य में अब भी सुख नहीं था। लोगों का सन्देह अब तक भी शान्त नहीं हुआ था और राम इतने दुर्बल मन के थे कि लोगों के विरुद्ध काम नहीं कर सकते थे। जिस पृथ्वी ने सीता को जन्म दिया था वह फट गई और दीर्घकाल तक दुःख सहते हुए अपने बालक को उसने ले लिया।

सीता की वैदिक कल्पना अर्थात् क्षेत्रों की हल रेखा की स्पष्टता इस अन्तिम घटना से प्रगट होती है। परन्तु लाखों हिन्दुओं के लिये सीता वास्तव में कोई मनुष्यधारी प्राणी हुई थी जो स्त्री धर्म और आत्मनिग्रह की आदर्श है। अब तक हिन्दू लोग अपनी कन्या का नाम सीता रखते हुए डरते हैं क्योंकि यदि उसका नम्र स्वभाव, उसका पातिव्रत धर्म, उसका अविचल अनुराग और अपने पति के लिये उसका अजित प्रेम मानवी प्राणियों से बढ़ कर था तो उसका दुःख और संताप भी उससे कहीं बढ़ कर था जैसा

कि संसारी जीवों के भाग्य में प्रायः बदा होता है। समस्त भारतवर्ष में एक भी ऐसी स्त्री न होगी जिसे संतप्त सीता की कथा विदित न हो और जिसे उसका चरित्र आदर्शमय और अनुकरणशील न हो और राम भी चाहे वे चरित्र में सीता की बराबरी न कर सकते हों, मनुष्यों के लिये अपने सत्याचरण, आज्ञापालन और पवित्रता में आदर्श हैं। इसी प्रकार से यह कथा लाखों भारतवासियों के लिये नीतिशिक्षा का उपाय है और उसका गौरव इस कारण से बहुत है।

अध्याय ४

---:o:---

आर्य और अनार्य लोग।

उत्तरी भारतवर्ष की नदियां, आर्यों के विजय का भाग निश्चय करती हैं। जब कोई इन नदियों का मार्ग देखता है तो उसे आर्यों के विजय का दस शताब्दियों का इतिहास विदित होता है। और जब कोई सिन्धु और उसकी सहायक नदियों का मार्ग और फिर बनारस और उत्तरी बिहार तक गंगा और यमुना का मार्ग देख चुकता है तो उसने ऐतिहासिककाव्य काल के अन्त तक अर्थात् ईसा के १००० वर्ष पहिले का हिन्दू-आर्यों का सारा राज्य देख लिया। इस हिन्दुओं के राज्य की बड़ी भूमि के आगे का सारा भारतवर्ष आर्यों से बिना अनुसन्धान किया हुआ अथवा यों कहिए कि बिना विजय किया हुआ पड़ा था जिसमें भिन्न भिन्न आदिवासिनी जातियां बसती थीं। इस अनार्यभूमि का एक चौड़ा भाग, जो हिन्दू राज्य को पूरब, दक्षिण और पश्चिम में घेरे हुए था, ऐतिहासिक काव्य काल के अन्त में हिन्दुओं को ज्ञात होता जाता था। दक्षिणी बिहार, मालवा, दक्षिण का एक भाग और राजपूताना मरुस्थल के दक्षिण के देश, यह एक अर्धमंडलाकार भूमि थे जो कि हिन्दुओं की नहीं हो गई थी परन्तु हिन्दुओं को धीरे धीरे विदित हो गई थी। इस लिये इस भूमि का उल्लेख सब से उत्तरकाल के ब्राह्मणों में कहीं कहीं पर आया है कि इसमें सत्व लोग, अर्थात् जीवित लोग जोकि कठिनता से मनुष्य कहे जा सकते हैं, रहते थे। हम लोग साहसी आधिवासियों को इस अज्ञात और असभ्य भूमि में घुसते हुए, जहां जहां वे गए वहां आदिवासियों पर अपना प्रभुत्व प्राप्त करते हुए, उपजाऊ नदियों के तटों पर जहां तहां बस्तियां स्थापित करते हुए, और विस्मित असभ्यों को सभ्य शासन और सभ्य जीवन के कुछ फल दिखलाते हुए, अनुमान कर सकते हैं।

हम लोग पुण्यात्मा साधुओं को इन जंगलों में शान्ति से आकर पर्वतों की चोटियों पर वा उपजाऊ घाटियों में जो कि विद्या और पवित्रता का स्थान थी आश्रम बना कर रहते हुए ध्यान कर सकते हैं। और अन्त में साहसी राजकीय शिकारी भी बहुधा इन जंगलों में जाते थे, और दुर्भागे राजा लोग जिन्हें उनसे अधिक बलवान प्रतिद्वंदी लोग देश से निकाल देते थे वे भी बहुधा संसार से विरक्त होकर इन्हीं एकान्त जंगलों में आकर बसते थे। यह अनार्यों का देश जो धीरे धीरे हिन्दुओं को विदित होता जाता था ऐसी दशा में था। हम यहां पर कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत करेंगे जिससे जान पड़ेगा कि हिन्दुओं को इस देश के विषय में कितना ज्ञान था और वे लोग उन भिन्न भिन्न आदिवासियों को किस नाम से पुकारते थे, जोकि इसमें सम्भवतः ईसा के पहिले ग्यारहवीं शताब्दी में रहते थे।

ऐतरेय ब्राह्मण की अन्तिम पुस्तक में एक ऐसा वाक्य है जिस में उस समय के मुख्य मुख्य हिन्दू राज्यों के वर्णन के साथ ही साथ दक्षिण और दक्षिण पश्चिम की आदिवासिनी जातियों का भी उल्लेख है। अतएव वह यहां पर उद्धृत करने योग्य है—

"तब पूरब दिशा में वासवों ने सारे संसार का राज्य पाने के लिये ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक् और यजु की रिचाओं और उन गम्भीर शब्दों से (जिनका वर्णन अभी किया जा चुका है) उस (इन्द्र) का प्रतिष्ठापन किया। इसी लिये पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के किए इस आदर्श के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भांति राजतिलक दिया जाता है और वे सम्राट् कहलाते हैं।

"तब दक्षिण देश में रुद्रलोगों ने सुखभोग प्राप्त करने के लिये इन्द्र को ३१ दिन तक इन तीनों ऋकों अर्थात् यजुस् और उन गम्भीर शब्दों से (जिसका उल्लेख अभी हो चुका है) प्रतिष्ठापन किया। इसी लिये दक्षिण देश के जीवों के राजाओं को सुखभोग के लिये राजतिलक दिए जाते हैं और वे भोज अर्थात् भोग करने वाले कहलाते हैं।

"तब पश्चिम देश में दैवी आदित्यों ने स्वतंत्र राज्य पाने के लिये उसका उन तीनों ऋचों अर्थात् यजुस् की रिचाओं और उन गम्भीर शब्दों से प्रतिष्ठापन किया। इसी लिये पश्चिम देशों के नीच्यों और अपाच्यों के सब राजे स्वतंत्र राज्य करते हैं और 'स्वराज' अर्थात् स्वतंत्र राजा कहलाते हैं।

"तब उत्तरी देश में विश्वदेवों ने प्रख्यात शासन के लिये उसका उन्हीं तीनो रिचाओं से प्रतिष्ठापन किया। इसी लिये हिमालय के उस ओर के उत्तरी देशों से सब लोग, जैसे उत्तर कुरुलोग, उत्तरमाद्र लोग, बिना राजा के बसने के लिये स्थिर किए गए और वे "विराज" अर्थात् बिना राजा के कहलाते हैं।

"तब मध्य देश में, जो कि एक दृढ़ स्थापित स्थान है, साध्यों और अपत्यों ने राज्य के लिये इन्द्र का ३१ दिन तक प्रतिष्ठापन किया। इसी लिये कुरु, पांचालों तथा वसों और उसीनरों के राजाओं को राज्यतिलक दिया जाता है और वे 'राजा' कहलाते हैं।

इन उद्धृत वाक्यों से हम एक दम से ऐतिहासिक काव्य काल के अन्त में जहां तक हिन्दुओं का राज्य था वह सब विदित हो जाता है। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, सब से पूरब में विदेह, काशी और कोशल लोग रहते थे और ये सब से नए हिन्दू अधिवासी विद्या और प्रसिद्धता में अपने पश्चिम में रहनेवाले भाइयों से बढ़े हुए थे। उनके राजा लोग, यथा जनक, अजात शत्रु आदि गर्व से 'सम्राज' की पदवी ग्रहण करते थे और अपनी विद्या और बल से अपनी प्रतिष्ठा का निर्वाह योग्यता से करते थे।

दक्षिण में कुछ आर्य अधिवासी लोग चम्बल की घाटी तक आ कर आधुनिक मालवा देश में रहनेवाले आदिम निवासियों से अवश्य परिचित हो गए होंगे। ये जातियां 'सत्व' अर्थात् ऐसे जीव जो मनुष्य कहे जाने योग्य नहीं हैं, कहलाती थीं। यहां पर यह लिख देना भी उचित है कि इस ओर का राज्य तो 'भोज' के नाम से कहलाता ही था (इस शब्द की उत्पत्ति चाहे कैसीही कल्पित क्यों

न दी गई हो), पर उत्तर काल में उस देश का नाम भी, जो कि विन्ध्य पर्वतों से सटा हुआ दक्षिण में चम्बल की घाटी में है, 'भोज' था।

इस स्थान से आर्य अधिवासी वा साहसी लोग पश्चिम की ओर बढ़े, यहाँ तक कि वे अरब के समुद्र के तटों तक पहुँच गए जिसके आगे वे नहीं बढ़ सकते थे। इन दूरस्थ देशों के आदिवासियों को सभ्य अधिवासी लोग कुछ तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे और इसी अभिप्राय से उन्हें 'नीच्यों' और 'अपाच्यों' का नाम दिया गया था और उनके शासक लोग 'स्वराट' अर्थात् स्वतंत्र राजा कहलाते थे। ये ही लोग जो कि ऐतिहासिक काव्य काल के अन्त में बहुत कम प्रसिद्ध थे, उत्तर काल की सब से अधिक अभिमानी और रण, प्रिय हिन्दू जाति के अर्थात् मरहट्ठों के पूर्वपुरुष थे।

लिखा है कि उत्तर में उत्तर कुरु लोग, उत्तर माद्र लोग तथा अन्य जातियां हिमालय के उस ओर रहती थीं, परन्तु इससे सम्भवतः यह तात्पर्य है कि वे नीची पर्वतश्रेणियों के उस ओर हिमालय की घाटियों में रहती थीं। अब तक भी इन पहाड़ियों के रहने वाले स्वतन्त्रता से प्राथमिक समाज में रहते हैं और सरदारों अथवा राजाओं से उनका सम्बन्ध बहुत कम होता है। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि प्राचीन काल में वे 'बिना राजा के' कहे जाते थे।

अतः हिन्दू सृष्टि के बिलकुल बीच में गंगा की घाटी में कुरु और पांचालों की प्रबल जातियां तथा वसों और उसीनरों की कम प्रसिद्ध जातियां रहती थीं।

पश्चिम में, राजपुताने के मरुस्थलों का आर्य लोगों ने कुछ भी अनुसंधान नहीं किया था। इन मरुस्थलों और पर्वतों के भील आदिवासी तब तक बिना छेड़ छाड़ किए ही छोड़ दिए गए थे जब तक कि ईस्वी सन् के पीछे नए तथा भयानक आक्रमण करने वाले भारतवर्ष में आकर इन भागों में नहीं बसे।

दूर पूरब में दक्षिणी बिहार तब तक हिन्दुओं के अधिकार में नहीं हुआ था। प्रोफ़ेसर वेबर ने अथर्व वेद में एक वाक्य दिखलाया है जिसमें अङ्गों और मगधों का एक विशेष, परन्तु उनके विरुद्ध, उल्लेख है। इस वाक्य से जान पड़ता है कि दक्षिणी बिहार के लोग तब तक हिन्दू जाति में सम्मिलित नहीं हुए थे, परन्तु आर्य लोग उनसे परिचित होते जाते थे। बङ्गाल प्रान्त अब तक ज्ञात नहीं हुआ था।

दक्षिणी भारतवर्ष अर्थात् विन्ध्य पर्वतों के उत्तर के भारतवर्ष में हिन्दू लोग तब तक नहीं बसे थे। ऐतरेय ब्राह्मण (७,१८) में कुछ नीच असभ्य जातियों का, और उनमें अन्ध्रों का भी, नाम दिया है। हम आगे चल कर दिखलावेंगे कि दर्शन काल में अन्ध्र लोगों ने बड़ी उन्नति की थी और दाक्षिण में उनका एक बड़ा सभ्य हिन्दू राज्य हो गया था।

अब हम ऐतिहासिक काव्य काल की सब मुख्य मुख्य आर्य जातियों और राज्यों का तथा उन अनार्य राज्यों का जो कि हिन्दू राज्य के दक्षिण में अर्द्धावृत्त में थे, वर्णन कर चुके। आगे के अध्यायों में हम इन लोगों की सामाजिक रीतियों और गृहाचारों का वर्णन करेंगे। परन्तु राजाओं का वृत्तान्त समाप्त करने के पहिले, ऐतिहासिक राज्याभिषेक की बृहद् रीति का कुछ वर्णन करेंगे, जैसा कि ऐतिहासिक काव्य काल के बहुत से ग्रन्थों में दिया है। यह रीति तथा अश्वमेध, ये दोनों प्राचीन भारतवर्ष की बड़ी ही गम्भीर और आडम्बरयुक्त राजकीय रीतें हैं और इनका कुछ वर्णन हम हिन्दुओं के दोनों महाकाव्यों के सम्बन्ध में कर चुके हैं। यहां पर राज्याभिषेक के सम्बन्ध के केवल एक दो वाक्य ही उद्धृत करने की आवश्यकता है।—

"वह सिंहासन पर व्याघ्र का चर्म इस प्रकार से बिछाता है कि रोएं ऊपर की ओर हों और उसकी गर्दन के ऊपरवाला भाग पूरब की ओर हो, क्योंकि व्याघ्र बन के पशुओं का क्षत्र है। क्षत्र राजकीय पुरुष है। इस क्षत्र के द्वारा राजा अपने क्षत्र की समृद्धि

करता है । राजा सिंहासन पर बैठने के लिये अपना मुंह पूरब की ओर किए हुए उसके पीछे से आता है, पैर पर पैर रख कर घुटने के बल इस प्रकार से बैठता है कि उसका दहिना घुटना पृथ्वी से लगा रहता है और अपने हाथों से सिंहासन को पकड़ कर उसकी प्रार्थना यथोचित मंत्र द्वारा करता है।

"तब पुरोहित राजा के सिर पर पवित्र जल छिड़कता है और यह कहता है— 'इसी जल को, जो कि शुभ, सब रोगों को अच्छा करनेवाला और राज्य की समृद्धि करनेवाला है, अमर प्रजापति ने इन्द्र पर छिड़का था, इसी को सोम ने वरुण राज पर छिड़का था, और मनु पर यम ने छिड़का था, सो इसीको हम तेरे ऊपर छिड़कते हैं। तू इस संसार के राजाओं का राजा हो। तेरी प्रख्यात माता ने तुझे संसार भर के मनुष्यों का महाराजा होने के लिये जन्म दिया है । भाग्यवती माता ने तुझे जन्म दिया है, इत्यादि'। फिर पुरोहित राजा को सोम की मदिरा देता है और क्रिया समाप्त होती है।" (ऐतरेय ब्राह्मण ८, ६-७)

इसके आगे लिखा है कि पुरोहितों ने इसी रीति से कई राजाओं का अभिषेक किया, जिनके नाम से कि हम परिचित हो चुके हैं। कवष के पुत्र तुर ने इसी प्रकार से परीक्षित के पुत्र जनमेजय का अभिषेक किया था। "वहां से जनमेजय सब जगह गया, उसने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त किया, और अश्वमेध के घोड़े का बलिदान किया।" पर्वत और नारद ने इसी प्रकार से उग्रसेन के पुत्र युधंश्रौष्टि का राज्याभिषेक किया था। इसी प्रकार से वसिष्ठ ने ऋग्वेद के महा विजयी सुदास का, और दीर्घतमस् ने दुःषन्त के पुत्र भारत का राज्याभिषेक किया था।

श्वेत यजुर्वेद में भी राज्याभिषेक की रीति का एक दूसरा अच्छा वर्णन मिलता है। उसमें से हम यहां एक अद्भुत वाक्य उद्धृत करते हैं जिसमें पुरोहित नए राजा को आशीर्वाद देता है "वह ईश्वर जो जगत का राज्य करता है, तुम्हे अपनी प्रजा का राज्य करने की शक्ति दे। वह अग्नि जो गृहस्थों से पूजी जाती है, तुम्हें गृ-

हस्यों पर प्रभुत्व दे। वृक्षों का स्वामी सोम तुम्हें वनों पर प्रभुत्व दे। वाणी का देवता बृहस्पति तुम्हें बोलने में प्रभुत्व दे । देवताओं में सबसे बड़ा इन्द्र, तुम्हें सबसे बड़ा प्रभुत्व दे । जीवों का पालक रुद्र तुम्हे जीवों पर प्रभुत्व दे । मित्र, जोकि सत्य का अवतार है, तुम्हे सत्यता में अति श्रेष्ठ बनावे। वरुण जो पुण्य कार्यों का रक्षक है, तुम्हें पुण्य के कार्यों में अति श्रेष्ठ बनावे।"

इसके आगे प्रजा को जो वचन कहे गए हैं उसमें पुरोहित उन्हे कहता है— " हे अमुक अमुक जातियां, यह तुम्हारा राजा है।" काण्व में यह पाठ है कि " हे कुरु और पांचाल लोग, यह तुम्हारा राजा है।"

हम इस अध्याय को वह उत्तम उपदेश देकर समाप्त करेंगे जो कि इसी वेद में आगे चल कर राजाओं के लिये दिया है और जिसे यदि आज कल के शासक लोग स्मरण रक्खेंगे तो बहुत लाभ होगा। "यदि तुम शासक हुआ चाहते हो तो आज से समर्थों और असमर्थों पर बराबर न्याय करो। प्रजा पर निरन्तर हित करने का दृढ़ विचार करलो और सब आपत्तियों से देश की रक्षा करो।"(१०,२७)

अध्याय ५

——:o:——

जाति भेद।

हिन्दू आर्यलोग सैकड़ों वरन् हजारों वर्ष तक बाहरी लोगों से बिलकुल अलग रहे जैसा कि हम लोग और किसी जाति के इतिहास में नहीं पाते। इस प्रकार से अलग रहने में लाभ और हानि दोनों ही थी। इसके अन्य फलों में एक यह भी फल हुआ कि सामाजिक नियम अधिक दृढ़ और कठोर होते गए और इससे लोगो की स्वतंत्रता और स्वाधीनता पूर्वक कार्य करने की शक्ति धीरे धीरे क्षीण होती गई। गंगा और जमुना के उपजाऊ और रमणीक तटों पर चार पांच शताब्दियों तक शान्ति पूर्वक रहने के कारण ये सभ्य राज्य स्थापित कर सके थे, दर्शन, विज्ञान तथा शिल्प की उन्नति कर सके थे और अपने समाज तथा धर्म की भी उन्नति कर सके थे पर इन्हीं शान्त, परन्तु दुर्बल करनेवाले प्रभावों से लोग उन सामाजिक वर्गों में भी अलग हो गए जो 'जातियां' कहलाते हैं।

हम देख चुके हैं कि वैदिक काल के अन्त के लगभग धर्माध्यक्ष लोगों का एक जुदा व्यवसाय ही होगया था और पुत्र लोग भी अपने पिता ही का काम करने लग गए थे। ऐतिहासिक काव्य काल में जब धार्मिक रीतों में बड़ा आडम्बर होगया और जब उपजाऊ दोआब में नए नए राज्य स्थापित होगए और राजा लोग अनगिन्ती रीति विधानों के बड़े बड़े यज्ञ करने ही में अपना गौरव समझने लगे तो ऐसी अवस्था में यह बहुत सीधी बात है कि केवल धर्माध्यक्ष लोगों के ही ऐसे कठिन विधानों को कर सकने के कारण लोग उन्हें सत्कार की दृष्टि से देखने लगे यहां तक कि वे अन्त में स्वभावतः ही सामान्य लोगों से अलग तथा श्रेष्ठतर श्रेणी के अर्थात् एक अलग जाति के समझे जाने लगे। वे अपना

जीवन केवल इन्हीं विधानों के सीखने में बिताते थे और केवल वे लोग ही उन्हें विस्तार पूर्वक करसकते थे, और इसलिये लोग सम्भवतः यह विचारने लगे कि केवल वे ही इन पवित्र कर्मों को करने के पात्र हैं । और जब वंशपरम्परागत पुरोहित लोग इन आडम्बर युक्त विधानों के वास्तविक ज्ञान और लोगों की कल्पित पवित्रता के कारण पूर्णतया जुदे होगए तो उनके लिये अपनी श्रेणी के लोगों को छोड़ कर किसी अन्य से सम्बन्ध करना अच्छा नहीं समझा जाता था। फिर भी वे किसी किसी कुल की कन्याओं से विवाह करके उसका मान बढ़ा सकते थे। परन्तु पुरोहितों के घर की कन्या अपनी श्रेणी के लोगों को छोड़ कर और किसी से विवाह नहीं कर सकती थी। आज कल के हिन्दुओं की जो भावना और रीति है वह शीघ्रही गंगा के तटों पर रहनेवाले हिन्दुओं का जो नियमानुसार चलनेवाले थे और बाहरी सृष्टि से अलग थे धार्मिक तथा अलंघ्य नियम होगई।

ठीक ऐसे ही कारण राजकीय जाति की उत्पत्ति के भी थे। पंजाब के हिन्दुओं में राज्याधिकार ने बहुत ही अधिक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त की थी। रणप्रिय सरदार लोग अपनी जाति को एक के पीछे दूसरी को विजय के लिये आगे बढ़ाते थे और उनमें से वसिष्ठों और विश्वामित्रों के आश्रयदाता सुदास की नांई बड़े बड़े सरदार लोग प्रबल राजा ही की नांई नहीं समझे जाते थे वरन् वे मनुष्यों के नायक और जातियों के रक्षक की भांति समझे जाते थे। परन्तु गंगा के तटों पर रहनेवाले हिन्दुओं में यह बात नहीं थी। सम्भवतः रणप्रिय कुरुओं और पांचालों के समय के आरम्भ में जाति भेद पूरी तरह से नहीं हो गया था। परन्तु इसके पीछे शान्त कोसल और विदेह लोगों को जो कि सब राजसी ठाट बाट से युक्त थे, प्रजा देवतुल्य समझती थी। इसलिये ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं था कि राजकीय वा क्षत्री जाति की कन्याएं दूसरी स्थिति के मनुष्यों से विवाह करें। ऐसे अनुचित विवाह तो सारे संसार ही में दूषित समझे जाते हैं, परन्तु भारतवर्ष में यह एक अलंघनीय नियम होगया। इस प्रकार से जब ब्राह्मण और क्षत्री

लोग दृढ़ और अलङ्घनीय नियमों द्वारा अन्य लोगों से जुदे हो गए, यहां तक कि ब्राह्मण जाति की दीनातिदीन कन्या भी वैश्यों के सब से बड़े और धनाढ्य मनुष्य से भी विवाह नहीं कर सकती थी।

योरप के समाजिक इतिहास में भारतवर्ष के जाति भेद के समान कोई भी उल्लेख मिलना कठिन है। फिर भी योरप में एक समय ऐसा था जब कि भारतवर्ष के जाति भेद ही के समान रीति वहां उन्हीं कारणों से प्रचलित हुई थी जिनसे कि भारतवर्ष में हुई थी। अर्थात् जन साधारण की दुर्बलता और योधाओं और धर्माध्यक्षों की प्रबलता के कारण। जब रोम का राज्य टूटा और सरदार और बेरन लोग योरप के सब से अच्छे अच्छे भाग ले रहे थे, उस समय जन साधारण में राजनैतिक उत्साह तथा स्वतंत्रता नहीं थी। योरप में प्रबल पादरियों तथा सैनिकों और निरुत्साही और दुर्बल जन साधारण में सैनिक राज्य प्रणाली के दिनों में जितना अधिक भेद था उतना और कभी नहीं रहा। योरप भर में बड़े बड़े मठ बने, प्रत्येक नाव चलने योग नदी पर और प्रत्येक तुच्छ गाँव में सैनिक दुर्ग देख पड़ते थे और ग्रामीणों तथा छोटे छोटे नगरों के दीन शिल्पकारों के साथ गुलामों का सा बर्ताव किया जाता था। मध्यकाल में योरप के पादरी, योधा (Knights) और जन साधारण लोग भारतवर्ष के ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों के कुछ कुछ समान थे।

परन्तु यह समता केवल देखने ही में है। सैनिक योरप के पादरी लोग विवाह नहीं करते थे, और जन साधारण में जो सब से योग्य, सब से बुद्धिमान, और सब से विद्वान होते थे उन्हीं में से पादरी बनाए जाते थे। नाइट लोग भी जन साधारण में से शूर पुरुष और वीर योधाओं को अपनी श्रेणी में प्रसन्नता से सम्मिलित कर लेते थे। जन साधारण ने भी अपने वाणिज्य की रक्षा के लिये शीघ्र ही एका कर लिया, लुटेरे सरदारों से सामना करने के लिये अपने नगरों को सुरक्षित कर लिया, म्युनिसिपैलिटियां बनाईं और उस भययुक्त काल में अपनी रक्षा करने के लिये शस्त्र चलाना सीखा। उमंगी बेरन लोग भी बहुधा जन साधारण में मिल जाते

थे और मंत्रणा के लिये सभा तथा रणक्षेत्र में उनकी सहायता करते थे। इस सुखकर हेलमेल ने, जिसे कि भारतवर्ष में जातिभेद ने रोक दिया था, योरप के लोगों को पुनर्जीवित और दृढ़ बना दिया। ज्यों ज्यों जन साधारण में व्यापार और राजनैतिक जीवन की उन्नति होती गई त्यों त्यों सैनिक राज्य प्रणाली तथा पादरियों की प्रबलता नष्ट होती गई, और इस प्रकार से योरप में लोगों के तीन जातियों में बंट जाने का यदि कोई भय था तो वह सदा के लिये जाता रहा।

जाति भेद की उत्पत्ति का जो स्पष्ट कारण ऊपर दिखलाया गया है वह हिन्दुओं के ग्रन्थों में विचित्र कल्पित कथाओं में वर्णन किया गया है। परन्तु इन अद्भुत कल्पित कथाओं के रहते उत्तर काल के हिन्दू ग्रन्थकार लोग इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ कभी नहीं हुए थे कि जातिभेद वास्तव में केवल व्यवसाय ही के कारण हुआ था। जाति भेद की उत्पत्ति का यह स्पष्ट और स्वाभाविक कारण कई स्थानों पर उन्हीं पुराणों में पाया जाता है जोकि दूसरे स्थानों पर इनकी उत्पत्ति के विषय में अद्भुत और विचित्र कल्पित कथाएं वर्णन करते हैं। यहां पर हमको केवल एक ही दो ऐसे वाक्यों के उद्धृत करने का स्थान है।

वायु पुराण में लिखा है कि आदि वा कृत युग में जाति भेद नहीं था और इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मनुष्यों के कार्य के अनुसार उनमें भेद किया। "उनमें से जो लोग शासन करने योग्य थे और लड़ाई भिड़ाई के काम में उद्यत थे उन्हें औरों की रक्षा करने के कारण उसने क्षत्री बनाया। वे निस्वार्थी लोग जो उनके साथ रहते थे, सत्य बोलते थे और वेदों का उच्चारण भली भांति करते थे ब्राह्मण हुए। जो लोग पहिले दुर्बल थे, किसानों का काम करते थे, भूमि जोतते बोते थे, और उद्यमी थे, वे वैश्य अर्थात् कृषक और जीविका उत्पन्न करनेवाले हुए। जो लोग सफाई करने वाले थे और नौकरी करते थे और जिनमें बहुत ही कम बल वा पराक्रम था वे शूद्र कहलाए।" ऐसे ही ऐसे वर्णन और पुराणों में भी पाए जाते हैं।

रामायण अपने आधुनिक रुप में बहुत पीछे के काल में बनाई गई थी, जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं। उत्तर काण्ड के ७४ वें अध्याय में लिखा है कि कृत युग में केवल ब्राह्मण ही लोग तपस्या करते थे; त्रेता युग में क्षत्री लोग उत्पन्न हुए और तब आधुनिक चार जातियां बनी। इस कथा की भाषा का ऐतिहासिक भाषा में उलथा कर डालने से इसका यह अर्थ होता है कि वैदिक युग में हिन्दू आर्य लोग संयुक्त थे और हिन्दुओं के कृत्य करते थे परन्तु ऐतिहासिक काव्य काल में धर्माध्यक्ष और राजा लोग जुदे होकर जुदी जुदी जाति के हो गए और जनसाधारण भी वैश्यों और शूद्रों की नीचस्थ जातियों में बंट गए।

हम यह भी देख चुके हैं कि महाभारत भी अपने आधुनिक रुप में बहुत पीछे के समय का ग्रन्थ है। परन्तु उसमें भी जाति की उत्पत्ति के प्रत्यक्ष और यथार्थ वर्णन पाए आते हैं। शान्ति पर्व के १८८ वें अध्याय में लिखा है कि "लाल अंगवाले द्विज लोग जो सुख भोग में आसक्त थे, क्रोधी और साहसी थे और अपनी यज्ञादि की क्रिया को भूल गए थे, वे क्षत्री के वर्णों में हो गए। पीत रंग के द्विज लोग जो गौओं और खेती बारी से अपनी जीविका पाते थे और अपनी धार्मिक क्रियाओं को नहीं करते थे वे वैश्यवर्ण में हो गए। काले द्विज लोग जो अपवित्र दुष्ट, झूठे और लालची थे और जो हर प्रकार के काम करके अपना पेट भरते थे, शूद्र वर्ण के हुए। इस प्रकार से द्विज लोग अपने अपने कामों के अनुसार जुदे होकर, भिन्न भिन्न जातियों में बंट गए।"

इन वाक्यों के तथा ऐसेही दूसरे वाक्यों के लिखनेवाले निसन्देह इस कथा को जानते थे कि चारो जातियों की उत्पत्ति ब्रह्मा की देह के चार भागों से हुई है। परन्तु उन लोगों ने इसे स्वीकार न करके इसे कवि का अलंकारमय वर्णन समझा है जैसी कि वह यथार्थ में है भी! वे बराबर इस बात को लिखते हैं कि पहिले पहिल जातियां नहीं थीं और वे बहुत ही अच्छा तथा न्याय संगत अनुमान करते हैं कि काम काज और व्यवसाय के भेद के कारण पीछे

से जाति भेद हुआ। अब हम इस प्रसंग को छोड़ कर इस बात पर थोड़ा विचार करेंगे कि ऐतिहासिक काव्य काल में जाति भेद किस प्रकार का था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि पहिले पहिल जाति भेद गंगा के तटों के शान्त वासियों ही में हुआ। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल तब तक नहीं दिखाई दिए, और न तब तक दिखाई देही सकते थे, जब तक कि हिन्दू लोगों के स्वतन्त्र जाति होने का अन्त नहीं होगया। ऐतिहासिक काव्य काल में भी लोग ठीक ब्राह्मणों और क्षत्रियों की नाईं धर्म विषयक ज्ञान और विद्या सीखने के अधिकारी समझे जाते थे। और ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों में किसी किसी अवस्था में परस्पर विवाह भी होसकता था। इसलिये प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास पढ़नेवाले इस जाति भेद की रीति के आरम्भ होने के लिये चाहे कितनाही अफ़सोस क्यों न करें पर उसे याद रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल भारतवर्ष में मुसल्मानों के आने के पहिले दिखाई नहीं पड़े थे।

श्वेत यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में कई व्यवसायों के नाम मिलते हैं जिससे कि उस समय के समाज का पता लगता है जिस समय इस अध्याय का संग्रह किया गया था। यह बात तो स्पष्ट है कि इसमें जो नाम दिए हैं वे जुदे जुदे व्यवसायों के नाम हैं कुछ जुदी जुदी जातियों के नाम नहीं हैं। जैसे २० और २१ कण्डिका में भिन्न भिन्न प्रकार के चोरों का उल्लेख है और २६ वीं में घोड़ सवारों, सारथियों और पैदल सिपाहियों का। इसी प्रकार से २७ वीं कण्डिका में जो बढ़इयों, रथ बनानेवालों कुम्हारों और लोहारों का उल्लेख है वे भी भिन्न भिन्न कार्य करनेवाले हैं कुछ भिन्न जातियां नहीं हैं। उसी कण्डिका में निषाद और दूसरे दूसरे लोगों का भी वर्णन है। यह स्पष्ट है कि ये लोग यहां की आदि देशवासिनी जातियों में से थे और आज कल की नाईं उस समय की हिन्दू समाज में सब से नीचे थे।

इसी ग्रन्थ के ३० वें अध्याय में यह नामावली बहुत बढ़ा कर

की है। हम पहिले दिखला चुके हैं कि यह अध्याय बहुत पीछे के समय का है और वास्तव में उपोद्घात है । पर इसमें भी बहुत से ऐसे नाम मिलते हैं जो केवल व्यवसाय प्रगट करते हैं और बहुत से ऐसे हैं जो निस्सदेह आदिवासियों के हैं । और उसमें इसका तो कहीं प्रमाण ही नहीं मिलता कि वैश्यलोग कई जातियों में बटे थे। उसमें नाचनेवाले, वक्ताओं और सभासदों के नाम, रथ बनानेवालों, बढ़इयों, कुम्हारों, अवहिरियों, खेतिहरों, तीर बनानेवालों और धनुष बनानेवालों के नाम, बौने, कुबड़े, अन्धे, और बहिरे लोगो के, वैद्य और ज्योतिषियों के, हाथी घोड़े और पशु रखने वालों के, नौकर, द्वारपाल, रसोइये, और लकड़िहारों के, चित्रकार और नामादि खोदने वालों के, धोबी रंगरेज और नाइयों के, विद्वान मनुष्य, घमंडी मनुष्य और कई प्रकार की स्त्रियों के, चमार मछु- आहे, व्याधे और बहेलियों के, सोनार व्यापारी और कई तरह के रोगियों के, नकली बाल बनाने वालों, कवि और कई प्रकार के गवै- यों के नाम मिलते है। यह स्पष्ट है कि ये सब नाम जातियों के नहीं हैं। इसके सिवाय मागध, सूत, भीमल मृगयु, स्वनिन्, दुर्मे- द आदि जो नाम आए हैं वे स्पष्टतः आदिवासियों के नाम हैं जो आर्य समाज की छाया में रहते थे । यहां पर हमें केवल इतना हीं और कहना है कि करीब करीब यही नामावली तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी दी है।

ऊपर की नामावली से जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय के समाज और व्यवसाय का कुछ हाल जाना जाता है; पर इस नामावली से और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है । ऐति हासिक काव्य काल में और इसके पीछे भी मुसलमानों के यहां आने के समय तक बराबर आर्यों में से बहुत ही अधिक लोग वैश्य थे, यद्यपि वे कई प्रकार का व्यवसाय करते थे। वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्री यही तीन मिलकर आर्य जाति बनाते थे और वे इस जाति के सब स्वत्व के और पैत्रिक विद्या और धर्म सीखने के अधिकारी थे। केवल पराजित आदिवासी ही, जो शूद्र जाति के थे, आर्यों के स्वत्वों से अलग रक्खे गए थे।

पुराने समय की जाति-रीति और आज कल की जाति-रीति में यही मुख्य भेद है। पुराने समय में जाति ने ब्राह्मणों को कुछ विशेष अधिकार और क्षत्रियों को भी कुछ विशेष अधिकार दिया था, पर आर्यों को कदापि बांट कर अलग अलग नहीं कर दिया था। ब्राह्मण, क्षत्री और साधारण लोग यद्यपि अपना जुदा जुदा पैत्रिक व्यवसाय करते थे, पर वे सब अपने को एक ही जाति का समझते थे, एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे, एक ही पाठशाला में पढ़ने जाते थे, उन सब का एक ही साहित्य और कहावतें थीं, सब साथ ही मिलकर खाते पीते थे, सब प्रकार से आपस में मेल मिलाप रखते थे और एक दूसरे से विवाह भी करते थे और अपने को पराजित आदिवासियों से भिन्न "आर्य जाति" का कहने में अपना बड़ा गौरव समझते थे। पर आज कल जाति ने वैश्य आर्यों को सैकड़ों सम्प्रदायों में जुदा जुदा कर दिया है, इन सम्प्रदायों ने जाति भेद बहुत ही बढ़ा दिया है, उनमें परस्पर विवाह और दूसरे सामाजिक हेल मेल को रोक दिया है, सब लोगों में धर्मज्ञान और साहित्य का अभाव कर दिया है और उन्हें वास्तव में शूद्र बना दिया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से ऐसे वाक्य मिलते हैं जिनसे जान पड़ता है कि पहिले समय में जाति भेद ऐसा कड़ा नहीं था जैसा कि पीछे के समय में हो गया। उदाहरण के लिये ऐतरेय ब्राह्मण (६, २६) में एक अपूर्व वाक्य मिलता है। जब कोई क्षत्री किसी यज्ञ में किसी ब्राह्मण का भाग खा लेता है तो उसकी सन्तान ब्राह्मणों के गुणवाली होती है जो "दान लेने में तत्पर, सोम की प्यासी, और भोजन की भूखी होती है और अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह घूमा करती है।" और "दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वह पूरी तरह ब्राह्मण होने के योग्य हो जाती है।" जब वह वैश्य का भाग खा लेता है तो "उसे वैश्य के गुणवाली सन्तान होगी जो दूसरे राजा को कर देगी" "और दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे लोग वैश्य जाति के होने के योग्य हो जाते हैं।" जब वह शूद्र का भाग लेलेता है तो उसकी सन्तान में "शूद्र के गुण होंगे; उन्हें तीनों उच्च जाति-

यों की सेवा करनी होगी और वे अपने मालिकों के इच्छानुसार निकाल दिए जांयगे और पीटे जांयगे।" और "दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे शूद्रों की गति पाने के योग्य हो जाते हैं।"

किसी पहिले के अध्याय में हम दिखला चुके हैं कि विदेहों के राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को ऐसा ज्ञान दिया कि जो इसके पहिले ब्राह्मण लोग नहीं जानते थे और तब से वह ब्राह्मण समझा जाने लगा (सतपथ ब्राह्मण ११, ६, २, १) ऐतरेय ब्राह्मण (२, १६) में इलुषा के पुत्र कवष का वृत्तान्त दिया है, जिसमें उसे और ऋषियों यह कह कर सत्र से निकाल दिया था कि "एक धूर्त दासी का पुत्र, जो कि ब्राह्मण नहीं हैं, हम लोगों में कैसे रह कर दीक्षित होगा।" परन्तु कवष देवताओं को जानता था और देवता लोग कवष को जानते थे और इसलिये वह ऋषियों की श्रेणी में हो गया। इसी प्रकार से छान्दोग्य उपनिषद् (४, ४) में सत्यकाम जबाला की सुन्दर कथा में यह बात दिखलाई गई है कि उन दिनों में सच्चे और विद्वान लोगों ही का सब से अधिक आदर किया जाता था और वे ही सब से ऊंची जाति के समझे जाते थे। यह कथा अपनी सरलता और काव्य में ऐसी मनोहर है कि हम उसको यहां लिख देना ही उचित समझते हैं:—

"(१) जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता को बुलाकर पूछा कि 'हे माता, मैं ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूं। मैं किस वंश का हूं।,

" (२) उसने उससे कहा 'पुत्र, मैं नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरी युवावस्था में जब मुझे बहुत करके दासी का काम करना पड़ता था उस समय मैं ने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है; इसलिये यह कह कि मैं सत्यकाम जबाला हूं।'

" (३) वह गौतम हरिद्रुमत के पास गया और उनसे बोला 'महाशय मैं आप के पास ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूं। महाशय क्या मैं आपके पास आसकता हूं ?"

"(४) उसने उससे कहा 'मित्र तू किस वंश का है।' उसने उत्तर दिया, 'महाशय, मैं यह नहीं जानता कि मैं किस वंश का हूं। मैंने अपनी माता से पूछा था, उसने उत्तर दिया कि 'मेरी युवावस्था में जब मुझे बहुत करके दासी का काम करना पड़ता था उस समय मैं ने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है, इसलिये महाशय मैं सत्यकाम जबाला हूं।'

"(५) इसने कहा 'सच्चे ब्राह्मण के सिवाय और कोई इस प्रकार से नहीं बोलेगा। मित्र, जाओ ईंधन लेआवो मैं तुझे दीक्षा दूंगा। तुम सत्य से नहीं टले।"

इसलिये यह सत्य-प्रिय युवा दीक्षित किया गया और उस समय की रीति के अनुसार अपने गुरू के पशु चराने के लिये जाया करता था। कुछ समय में उसने प्रकृति और पशुओं से भी उन बड़ी बड़ी बातों को सीखा जो कि ये लोग सिखनहार हृदयवाले मनुष्यों को सिखलाते हैं। वह जिस झुंड को चराता था उसके बैल से, जिस अग्नि को जलाता उससे, और सन्ध्या समय जब वह अपनी गौओं को बाड़े में बन्द करने और सन्ध्या की अग्नि में लकड़ी डालने के पीछे उसके पास बैठता था तो उसके पास जो राजहंस और अन्य पक्षी उड़ते थे उनसे भी बातें सीखता था। तब वह युवा शिष्य अपने गुरू के पास गया और उसने उस से तुरन्त पूछा "मित्र तुम्हारे में ऐसा तेज है जैसे कि तुम ब्रह्म को जानते हो। तुम्हें किस ने शिक्षा दी है?" युवा शिष्य ने उत्तर दिया "मनुष्य ने नहीं"। जो बात युवा शिष्य ने सीखी थी वह यद्यपि उस समय के मनगढ़त शब्दों में छिपी हुई थी पर वह यह थी कि चारो दिशा पृथ्वी आकाश स्वर्ग और समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और जीवों की इन्द्रियां तथा मन, सारंश यह कि सारा विश्व ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर है।

उपनिषदों की ऐसी शिक्षा है और यह शिक्षा इसी प्रकार की कल्पित कथाओं में वर्णित है जैसा कि हम आगे चल कर दिख-

लावेंगे। अब कोई विद्वान ब्राह्मणों के नियमों विधानों के अरोचक और निरर्थक पृष्ठों को उलटता है तो उसे उस सत्यकाम जबाल के ऐसी कथाएं, जो कि मानुषी भावना और करुणा और उच्चतम सुचरित की शिक्षाओं से भरी हैं, धीरज देती और खुश करती हैं। पर इस कथा को यहां पर लिखने में हमारा तात्पर्य यह दिखलाने का है कि जिस समय ऐसी कथाएं बनी थीं उस समय तक जाति भेद के नियम इतने कड़े नहीं होगए थे। इस कथा से हमको यह मालूम होता है कि एक दासी का लड़का जो कि अपने बाप को भी नहीं जानता था, केवल सचाई के कारण ब्रह्मचारी होगया, प्रकृति तथा उस समय के पंडित लोग उसे जो कुछ सिखला सकते थे उन सब बातों को उसने सीखा और अन्त में उस समय के सब से बड़े धर्म शिक्षकों में होगया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय की जाति प्रथा में बड़ी ही स्वतंत्रता थी। पीछे के समय की प्रथा की नाईं उस समय रुकावटें नहीं थीं कि जब ब्राह्मणों को छोड़ा कर और सब जाति को धर्म का ज्ञान ही नहीं दिया जाता था, वह ज्ञान जो कि जाति का मानसिक भोजन और जाति के जीवन का जीव है।

यज्ञोपवीत का प्रचार ऐतिहासिक काव्य कालही से हुआ है सतपथ ब्राह्मण में (२, ४, २) लिखा है कि जब सब लोग प्रजापति के यहां आए तो देवता और पितृलोग भी यज्ञोपवीत पहिने हुए आए। और कौषीतकि उपनिषद् (२, ७) में लिखा है कि सब को जीतने वाला कौषीतकि यज्ञोपवीत पहिन कर उदय होते उए सूर्य की पूजा करता है।

इस प्राचीन काल में यज्ञोपवीत को ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य तीनों ही पहिरते थे, लेकिन केवल यज्ञ करते समय। पर अब उस प्राचीन काल की सब बातें बदल गई हैं। अब तो केवल एक ही जाति के लोग, अर्थात् ब्राह्मण लोग ही यज्ञोपवीत को हर समय रीति और आडम्बर के लिये धारण किए रहते हैं और ये लोग वैदिक यज्ञ करना भी भूल गए हैं।

---:o:---

अध्याय ६

—:0:—

सामाजिक जीवन।

वैदिक समय के समाज और ऐतिहासिक काव्य काल के समाज में बड़ा भेद यह था कि वैदिक समय में तो जाति भेद था ही नहीं परन्तु इस काल में यह था। पर केवल यही एक भेद नहीं है। सैकड़ों वर्ष की सभ्यता और उन्नति का भी समाज पर प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक काव्य काल के सभ्य हिन्दू लोगों की सामाजिक चाल व्यवहार वैदिक समय के योधा-खेतिहरों से उतनी ही भिन्न थी जितनी कि पेरिक्लीज़ के समय की ग्रीस देश निवासी अगामेमन और युलीसिस से भिन्न थी।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय के हिन्दू लोग सभ्य और शिष्ट होगए थे और उन्होंने अपने घर के तथा सामाजिक काम करने के लिये सूक्ष्म नियम तक बना लिए थे। राजाओं की सभा, विद्या का स्थान थी और उसमें सब जाति के विद्वान और बुद्धिमान लोग बुलाए जाते थे, उनका आदर सम्मान किया जाता था और उन्हें इनाम दिया जाता था। विद्वान अधिकारी लोग न्याय करते थे, और जीवन के सब काम नियम के अनुसार किए जाते थे। सब जातियों में मजबूत दीवारों और सुन्दर मकानों के नगर बहुतायत से हो गए थे, जिनमें न्यायाधीश, दण्ड देनेवाले और नगर रक्षक लोग होते थे। खेती की उन्नति की जाती थी और राज्याधिकारी लोगों का काम कर उगाहने और खेतिहारों के हित की ओर ध्यान देने का था।

हम कह चुके हैं कि विदेहों, काशियों और कुरु पंचालों की नाईं सभ्य और विद्वान राजाओं की सभाएं उस समय में विद्या की मुख्य जगह थीं। ऐसी सभाओं में यज्ञ करने और विद्या की

उन्नति करने के लिये विद्वान पंडित लोग रक्खे जाते थे और बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ जो कि हमलोगों को आज कल प्राप्त है उन्हीं सम्प्रदायों के बनाए हुए हैं जिनकी नींव इन पंडितों ने डाली थी। बड़े बड़े अवसरों पर विद्वान लोग बड़े बड़े दूर के नगरों और गांवों से आते थे, और शास्त्रार्थ केवल क्रिया संस्कार ही के विषय में नहीं होता था, वरन् ऐसे ऐसे विषयों पर भी जैसे कि मनुष्य का मन, मरने के पीछे आत्मा का उद्देश्य स्थान, आनेवाली दुनियां, देवता, पितृ और भिन्न भिन्न तरह के जीवों के विषय में, और उस सर्वव्यापी ईश्वर के विषय में जिसे कि हम सब चीजों में देखते हैं।

पर विद्या का स्थान केवल सभा ही नहीं थी। विद्या की उन्नति के लिये परिषद् अर्थात् ब्राह्मणों के विद्यालय होते थे, जो कि योरप के विद्यालयों का काम देते थे और इन परिषदों में युवा लोग विद्या सीखने जाते थे। बृहदारण्यक उपनिषद (६,२) में इसी प्रकार से लिखा है कि श्वकेतु विद्या सीखने के लिये पंचालों के परिषद् में गया। प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में ऐसे वाक्य उद्धृत किए हैं जिनसे जान पड़ता है कि इसके ग्रन्थकारों के अनुसार परिषद में २१ ब्राह्मण होने चाहिए जो दर्शन वेदान्त और स्मृति शास्त्रों को अच्छी तरह जानते हों। पर उन्होंने यह दिखलाया है कि ये नियम पीछे के समय की स्मृति की पुस्तकों में दिए हैं और ये ऐतिहासिक काव्य काल के परिषदों का वर्णन नहीं करते। पराशर कहता है कि किसी गांव के चार वा तीन योग्य ब्राह्मण भी जो वेद जानते हों और होमाग्नि रखते हों, परिषद् बना सकते हैं।

इन परिषदों के सिवाय अकेले एक एक शिक्षक भी पाठशालाएं स्थापित करते थे जिनकी तुलना योरप के प्राइवेट स्कूलों से की जा सकती है और इनमें बहुधा देश के भिन्न भिन्न भागों से विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे। ये विद्यार्थी रहने के समय तक दास की नाईं गुरू की सेवा करते थे और बारह वर्ष वा इससे

भी अधिक समय के पीछे गुरू को उचित दक्षिणा देकर अपने घर अपने लालायित सम्बन्धियों के पास लौट जाते थे। उन विद्वान ब्राह्मण लोग के पास भी जो वृद्धावस्था में संसार से जुदे होकर वनों में जा बसते थे, बहुधा विद्यार्थी लोग इकट्ठे होजाते थे और उस समय की अधिकतर कल्पनाएं इन्हीं बन मे रहनेवाले विरक्त साधू और विद्वान महात्माओं की हैं। इस तरह से हिन्दू लोगों में हजारों वर्ष तक विद्या की उन्नति और रक्षा हुई है और इन लोगों में विद्या और ज्ञान की जितनी कदर थी उतनी कदाचित किसी दूसरी जाति में प्राचीन अथवा नवीन समय में भी नहीं हुई। हिन्दुओं के धर्म के अनुसार अच्छे काम वा धर्म की क्रियाओं के करने से केवल उनको उचित फल और जीवन में सुख ही मिलता है, पर ईश्वर में मिलकर एक होजाना, यह केवल सच्चे ज्ञान ही से प्राप्त होसकता है।

जब विद्यार्थी लोग इस तरह से किसी परिषद् में अथवा गुरू से उस समय की परम्परागत विद्या सीख लेते थे तो वे अपने घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थ होकर रहने लगते थे। विवाह के साथ ही साथ उनके गृहस्थी के धर्म भी आरम्भ होते थे और गृहस्थ का पहिला धर्म यह था कि वह किसी शुभ नक्षत्र में होमाग्नि को जाल दें, सवेरे और सन्ध्या के समय अग्नि को दूध चढ़ाया करे, दूसरे धर्म के और गृहस्थी के कृत्य किया करे, और सब से बढ़ कर यह कि अतिथियों का सत्कार किया करे। हिन्दुओं के कर्तव्य का सार नीचे लिखे ऐसे वाक्यों में समझा गया है—

"सत्य बोलो! अपना कर्तव्य करो! वेदों का पढ़ना मत भूलो! अपने गुरू को उचित दक्षिणा देने के पीछे बच्चों के जीव का नाश न करो! सत्य से मत टलो! कर्तव्य से मत टलो! हितकारी बातों की उपेक्षा मत करो! बड़ाई में आलस्य मत करो! वेद के पढ़ने पढ़ाने में आलस्य मत करो!

"देवताओं और पितरों के कामों को मत भूलो! अपनी माता को देवता की नांई मानो! अपने पिता को देवता की नांई मानो!

अपने गुरु को देवता की नांई मानो ! जो काम निष्कलंक हैं उन्हीं के करने में चित्त लगाओ, दूसरों में नहीं ! जो जो अच्छे काम हम लोगों ने किए हैं उन्हें तुम भी करो !"

(तैत्तिरीय उपनिषद् १, २)

इस समय के ग्रन्थों में समाज की सुखी दशा के वर्णन भी अनेक स्थानों में मिलते हैं। एक अश्वमेध में पुरोहित कहता है कि "हमारे राज्य में ब्राह्मण लोग धर्म के साथ रहें, हम लोगों के योधा लोग बलवान और शस्त्र चलाने में चतुर हों, हम लोगों की गौवें बहुत सा दूध दें, हमारे बैल बोझा ढोंवे और हमारे घोड़े तेज हों; हम लोगों की स्त्रियां अपने घर की रक्षा करें, और हमारे योधा लोग जय लाभ करें; हमारे युवा लोग अपने रहन सहन में सभ्य हों......परजन्य प्रत्येक घर और प्रत्येक देश में वृष्टि करे, हम लोगों के अनाज के वृक्षों में अन्न उत्पन्न हो और पके, हम लोगों के मनोरथ सिद्ध हों और हम लोग सुख से रहें।" (शुक्ल यजुर्वेद २२, २२)

धनवानो का धन सोना, चांदी और जवाहिर, गाड़ी, घोड़ा गाय, खच्चर और दास, घर और उपजाऊ खेत, और हाथी भी होता था (छान्दोग्य उपनिषद ५. १३. १७, १९; ७, २४; सतपथ ब्राह्मण ३, २, ४८; तैत्तिरीय उपनिषद १, ५, १२ आदि)। यज्ञों में सोना उचित दान समझा जाता था और उनमें चांदी का दान देने का बहुत ही निषेध किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जैसे और सब बातों के कारण दिए हैं वैसे ही इसका कारण भी बड़ा ही विलक्षण दिया है—जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर मांगा तो अग्नि रोई और उसके जो आंसु बहे वे चांदी हो गए। इसी कारण से यदि चांदी दक्षिणा में दी जाय तो उस घर में रोना मचेगा। पर यह कारण ब्राह्मणों के लालच को नहीं छिपा लेता, जो कि सोना दान का मुख्य कारण है।

लोगों को उस समय केवल सोने और चांदी ही का प्रयोग नहीं मालूम था वरन् शुक्ल यजुर्वेद (१८, १३) में कई दूसरी धातु-

ओं का भी वर्णन है। छान्दोग्य उपनिषद् के निम्न लिखित वाक्य से उस समय की कुछ धातुओं का पता लगता है—

"जिस तरह कोई सोने को लवण (सोहागे) से जोड़ता है, चांदी को सोने से, टीन को चांदी से, जस्ते को टीन से, लोहे को जस्ते से, काठ को लोहे अथवा चमड़े से" (४, १७, ७)

ऐतरेय ब्राह्मण (८, २२) में लिखा है कि अत्रि के पुत्र ने दस हज़ार हाथियों और दस हज़ार दासियों को दान दिया था जो कि "गले में आभूषणों से अच्छी तरह से सज्जित थीं और सब दिशाओं से लाई गई थीं," पर यह बात स्पष्टतः बहुत बढ़ा कर लिखी गई है।

वैदिक काल की नांई इस समय में भी लोग कई प्रकार का अन्न और पशुओं का मांस भोजन करते थे।बृहदारण्यक उपनिषद् में (६, ३, १३) दस चीजों के दानों का नाम लिखा है, अर्थात् चावल और जव (वृहियवास्) का, तिल और माष (तिलमाषा-स्) का, अणु और प्रियंगु का, गेहूं (गोधूमस्) का, मसूर का, खल्वास और खलकुलास का।

स्वेत यजुर्वेद (१८, १२) में इन अनाजों के नाम के सिवाय मुद्ग, नीवार और स्यामाक का भी नाम दिया है। अन्न पीसा जाता था और फिर इसमें दही, शहद और घी मिला कर कई तरह की रोटियां बनाई जाती थीं। दूध और उसकी बनाई हुई सामाग्रियां भारतवर्ष में सदा से खाने की बड़ी प्रिय वस्तुएं होती आई हैं।

ऐतिहासिक काव्य काल में मांस खाना प्रचलित था और इसके लिये गाय और बैल की बहुधा आवश्यकता पड़ती थी। ऐ-तरेय ब्राह्मण (१,१५) मे लिखा है कि किसी राजा या प्रतिष्ठित मेहमान का सत्कार किया जाता था तो बैल वा गाय मारी जाती थी और बहुत हाल की संस्कृत में भी प्रतिष्ठित मेहमान को 'गाय मारनेवाला' कहते हैं।

श्याम यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्योरेवार लिखा है कि छोटे छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। उसे किस प्रकार से काटना चाहिए सो भी ब्राह्मण में लिखा है और गोपथ ब्राह्मण से यह मालूम होता है कि उसका भिन्न भिन्न भाग किसको मिलता था। पुरोहित लोग जीभ, गला, कंधा, नितम्ब, टांग इत्यादि पाते थे, घर का मालिक (चतुराई से) अपने लिये पीठ का भाग लेता था और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था ! मांस के धोने के लिये बहुत सी सोम मदिरा की प्रसादी चढ़ाई जाती थी।

सतपथ ब्राह्मण (३,१,२,२१) में इस विषय का एक मनोहर वादानुवाद दिया है कि बैल का मांस खाना चाहिए अथवा गाय का ! परन्तु अन्त में जो परिणाम निकाला है वह बहुत निश्चित रूप से नहीं निकाला- " उसे (पुरोहित को) गाय और बैल का मांस न खाना चाहिए।" फिर भी याज्ञवल्क्य कहता है कि "यदि वह मृदु हो तो हम तो उसे खाते हैं !"

कदाचित याज्ञवल्क्य ने फलाहार और मांसाहार के परिणाम का विचार न किया हो जैसा कि बृहदारण्यक उपनिषद् (६,४,१७,१८) के निम्न लिखित वाक्यों से प्रगट होता है—

" और यदि कोई मनुष्य चाहता है कि उसे विद्वान कन्या उत्पन्न हो और वह कन्या दीर्घायु हो तो तिल और मक्खन के साथ चावल को पकाकर उन दोनों (पति और स्त्री) को खाना चाहिए, जिसमें वे सन्तान उत्पन्न करने योग्य हो जांय।

"और यदि कोई मनुष्य चाहता है कि उसे विद्वान, प्रसिद्ध, उपकारी, बड़ा प्रसिद्ध वक्ता, सब वेदों का जाननेवाला, और दीर्घजीवी पुत्र हो तो उन दोनों (पति और स्त्री) को मांस और मक्खन के साथ चावल पका कर खाना चाहिए, जिसमें वे सन्तान उत्पन्न करने योग्य हो जांय। मांस किसी जवान या वृद्ध बैल का होना चाहिए।"

हम नहीं समझ सकते कि वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थों के पूज्य बनाने वाले कभी भी बैल के मांस खाने में और प्रसिद्ध वक्ता होने में कोई भी सम्बन्ध सोचते हों, जैसा कि पीछे के समय में सोचा गया है।

अब हमारे पाठकों को ऐतिहासिक काव्य काल के हिन्दुओं के अर्थात् हस्तिनापुर और काम्पिल्य और अयोध्या और मिथिला के निवासियों के, तीन हजार वर्ष पहिले के सामाजिक जीवन का, अपनी आंखों के सामने चित्र खींचना चाहिए। उस समय नगर दीवारों से घिरे रहते थे, उनमें सुन्दर सुन्दर भवन होते थे और गलियां होती थीं। वे आज कल के मकानों और सड़कों के समान नहीं होते थे वरन् उस प्राचीन समय में सम्भवतः बहुतही अच्छे होते थे। राजा का महल सदा नगर के बीच में होता था जहां कोलाहलयुक्त सर्दार, असभ्य सिपाही, पवित्र साधु संत और विद्वान पुरोहित प्रायः आया करते थे। बड़े बड़े अवसरों पर लोग राजमहल के निकट इकट्ठे होते थे, राजा को चाहते थे, मानते थे और उसकी पूजा करते थे और राजभक्ति से बढ़कर और किसी बात को नहीं मानते थे। सोना, चांदी और जवाहिर, गाढ़ी, घोड़ा खच्चर और दास लोग और नगर के आस पास के खेत ही गृहस्थों और नगरवासियों का धन और सम्पति थे। उन लोगों में सब प्रतिष्ठित घरानों में पवित्र अग्नि रहती थी। वे अतिथियों का सत्कार करते थे, देश के कानून के अनुसार रहते थे, ब्राह्मणों की सहायता से बलि इत्यादि देते थे और विद्या की कदर करते थे। प्रत्येक आर्य-बालक छोटेपन से ही पाठशाला में भेजा जाता था। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य सब एक ही साथ पढ़ते थे और एक ही पाठ और एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे और फिर घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थों की नाईं रहने लगते थे। पुरोहित तथा योधा लोग भी जन-साधारण के एक अंग ही थे, जनसाधारण के साथ परस्पर विवाह आदि करते थे और जनसाधारण के साथ खाते पीते थे। अनेक प्रकार के कारीगर सभ्य समाज की विविध अवश्यकताओं को पूरा करते थे और अपने पुश्तैनी व्यवसाय को पीढ़ी दर पीढ़ी क-

रते थे, परन्तु वे लोग जुदे जुदे होकर भिन्न भिन्न जातियों में नहीं बँट गए थे । खेतिहर लोग अपने पशु तथा हल इत्यादि लेकर अपने अपने गाँवों में रहते थे और हिन्दुस्तान की पुरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध और निपटारा उस गाँव की पंचायत द्वारा होता था । इस प्राचीन जीवन का वर्णन बहुत बढ़ाया जासकता है पर सम्भवतः पाठक लोग इसकी स्वयम ही कल्पना करलेंगे । हम अब प्राचीन समाज के इस साधारण वर्णन को छोड़ कर इस बात की जांच करेंगे कि उस समाज की स्त्रियों की कैसी स्थिति थी ।

यह तो हम देखचुकेही चुके हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों का बिलकुल परदा नहीं था। चार हजार वर्ष हुए कि हिन्दू सभ्यता के आदि से ही हिन्दू स्त्रियों का समाज में प्रतिष्ठित स्थान था, वे पैत्रिक सम्पत्ति पाती थीं और सम्पत्ति की मालिक होती थीं, वे यज्ञ और धर्मों के काम में सम्मिलित होती थीं, वे बड़े बड़े अव-सरों पर बड़ी बड़ी सभाओं में जाती थीं, वे खुल्लम खुल्ला आम जगहों में जाती थीं, वे बहुधा उस समय के शास्त्र और विद्या में विशेष योग्यता पाती थीं, और राजनीति तथा शासन में भी उन का उचित अधिकार था, यद्यपि वे मनुष्यों के समाज में इतनी स्वाधीनता से नहीं सम्मिलित होती थीं जितना कि आज कल योरप की स्त्रियां करती हैं, पर फिर भी उन्हें पूरे पूरे परदे और कैद में रखना हिन्दू लोगों की चाल नहीं थी। यह चाल भारतवर्ष में मुसल-मानों के समय तक नहीं थी और अब तक भारतवर्ष के कुछ भागों में जैसे महाराष्ट्र में यह चाल नहीं है, जहां कि मुसलमानों का राज्य बहुत थोड़े दिनों तक रहा है । किसी प्राचीन जाति में हिन्दुओं से बढ़ कर स्त्रियों को प्रतिष्ठा नहीं थी, पर हिन्दुओं के साथ कुछ ऐसे ग्रन्थकारों ने चूक और अन्याय किया है जो कि उनके ग्रन्थों से अनभिज्ञ हैं और जिन्होंने यहां की स्त्रियों के विषय में अपना विचार तुर्क और अरब लोगों की रीति से पाया है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत से ऐसे ऐसे वाक्य उद्धृत किए जा-

सकते हैं जिनसे जान पड़ेगा कि स्त्रियों की उस समय बड़ी प्रतिष्ठा थी, पर हम यहां केवल एक वा दो ऐसे ऐसे वाक्य उद्धृत करेंगे। इनमें से पहिला वाक्य, जिस दिन याज्ञवल्क्य घर बार छोड़ कर बन में गए उस सन्ध्या को याज्ञवल्क्य और उनकी स्त्री की प्रसिद्ध बात चीत है।

"(१) जब याज्ञवल्क्य दूसरी वृत्ति धारण करनेवाला था तो उसने कहा 'मैत्रेयी, मैं अपने इस घर से सच सच जारहा हूं। इसलिये मैं तुझ में और कात्यायनी में सब बात ठीक करदूं।"

"(२) मैत्रेयी ने कहा 'मेरे स्वामी, यदि यह धन से भरी हुई सब पृथ्वी ही मेरी होती तो कहिए कि क्या मैं उससे अमर होजाती'। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया 'नहीं, तेरा जीवन धनी लोगों के जीवन की नाईं होता। पर धन से अमर होजाने की कोई आशा नहीं है।'

"(३) तब मैत्रेयी ने कहा 'मैं उस वस्तु को लेकर क्या करूं कि जिससे मैं अमर ही नहीं हो सकती? मेरे स्वामी, आप अमर होने के विषय में जो कुछ जानते हों सो मुझ से कहिए।'

"(४) याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया 'तू मुझे सचमुच प्यारी है, तू प्यारे वाक्य कहती है। आ, यहां बैठ, मैं तुझे इस बात को बतऊंगा। जो कुछ मैं कहता हूं उसे सुन।'

और तब उसने उसे यह ज्ञान दिया जो कि बारम्बार उपनिषदों में बहुत जोर देकर वर्णन किया गया है, कि सर्वव्यापी ईश्वर पति में, स्त्री में, पुत्रों में, धन में, ब्राह्मणों और क्षत्रियों में, और सारे संसार में, देवों में, सब जीवों में, सारांश यह है कि सारे विश्व भर ही में है। मैत्रेयी ने, जोकि बुद्धिमान, गुणवती और विद्वान स्त्री थी, इस बड़े सिद्धान्त को स्वीकार किया और समझा और वह इसकी कदर संसार की सब सम्पत्ति से अधिक करती थी। (बृहदारण्यक उपनिषद)

हमारा दूसरा उद्धृत भाग भी उसी उपनिषद् से है और यह

विदेहों के राजा जनक के यहां पंडितों की एक बड़ी सभा से सम्बन्ध रखता है—

"जनक विदेह ने एक यज्ञ किया जिसमें (अश्वमेध के) याज्ञिकों को बहुत सी दक्षिणा दी गई। उसमें कुरुओं और पंचालों के ब्राह्मण आए थे और जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हजार गौओं को घिरवाया और प्रत्येक की सींघों में (सोने के) दस पद बांधे।

"तब जनक ने उन सभों से कहा 'पूज्य ब्राह्मणो, आप लोगों में जो सब से बुद्धिमान हो वह इन गौओं को हांके।" इस पर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ, पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा 'मेरे प्यारे, इन्हें हांक ले जाओ।' उसने कहा 'सामन् की जय!' और वह उन्हें हांक ले गया।"

इस पर ब्राह्मणों ने बड़ा क्रोध किया और वे घमंडी याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे। पर याज्ञवल्क्य अकेले उन सब का मुकाबला करने योग्य थे। होत्री अस्वल, जारत्कारव आरतभाग, भुज्यु लाह्यायनि, उषस्त चाक्रायन, केहाल कौशीनतकय उद्दालक आरुनि, तथा अन्य लोग याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे, पर याज्ञवल्क्य किसी बात में कम नहीं निकला और सब पंडित एक एक करके शान्त हो गए।

इस बड़ी सभा में एक व्यक्ति ऐसा था जो उस समय की विद्या और पांडित्य में कम नहीं था, क्योंकि वह व्यक्ति एक स्त्री थी (यह एक ऐसी अपूर्व बात है जिससे उस समय की रहन सहन का पता लगता है)। वह इस सभा में खड़ी हुई और बोली कि "हे याज्ञवल्क्य, जिस प्रकार से काशी अथवा विदेहों के किसी योधा का पुत्र अपनी ढीली धनुष में डोरी लगा कर और अपने हाथ में दो नोकीली शत्रु को बेधनेवाली तीर ले कर युद्ध करने खड़ा होता था, उसी प्रकार से मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुम से लड़ने के लिये

खड़ी हुई हूं। मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दो।" ये प्रश्न किए गये और इनका उत्तर भी दिया गया और गार्गी वाचक्नवी चुप हो गई।

क्या इन वाक्यों तथा ऐसे ही अन्य वाक्यों से यह प्रगट नहीं होता कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों की इतनी प्रतिष्ठा थी कि जितनी कदाचित दुनियां के किसी भाग में भी किसी प्राचीन जाति में नहीं थी?

हिन्दू स्त्रियां अपने पति की बुद्धि विषयक साथिनी, इस जीवन में उनकी प्यारी सहायक, और उनके धर्म विषयक कामों की अभिन्न भागिनी समझी जाती थीं और इसीके अनुसार उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान भी था। वे सम्पत्ति और बपौती की भी मालिक होती थीं, जिससे प्रगट होता है कि उनका कैसा आदर था। इन प्राचीन रीति व्यवहारों की तुलना, आज कल की सभ्यता के रीति व्यवहारों से करना कदाचित न्याय्य नहीं होगा। पर भारतवर्ष के इतिहास जाननेवाले को, जिसने कि प्राचीन हिन्दुओं के ग्रन्थ पढ़े हों यह कहने में कुछ भी सोच विचार न होगा कि तीन हजार वर्ष पहिले भारतवर्ष में स्त्रियों का जितना अधिक मान्य था उतना ग्रीस वा रोम में सबसे सभ्य समय मे भी कभी नहीं था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि ऐतिहासिक काव्य काल तक भी बाल विवाह नहीं होता था, और महाकाव्यों में तथा अन्य पुस्तकों में लड़कियों का विवाह उचित वय में होने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। विधवा विवाह केवल अवर्जित ही नहीं था वरन् उसके करने की स्पष्ट आज्ञा है और विधवाओं को दूसरा विवाह करने के पहिले जो विधान इत्यादि करने पड़ते थे वे भी साफ़ साफ़ दिए हैं। चूंकि जाति भेद अब तक पूरा पूरा नहीं माना जाता था इसलिये एक जाति के लोग बहुधा दूसरी जाति की विधवाओं से विवाह कर लेते थे और ब्राह्मण लोग बिना किसी सोच विचार के दूसरी जाति की विधवाओं को ब्याह लेते थे। "और यदि किसी स्त्री के दस पति, जो ब्राह्मण न हों, हो चुके हों, और यदि इसके उपरान्त

कोई ब्राह्मण उससे विवाह करे तो केवल वही उसका पति है।" (अथर्व वेद ५, १७, ८)

बहुत सी दूसरी प्राचीन जातियों की नाई हिन्दुओं में भी बहु-भार्यता प्रचलित थी, परन्तु यह बात केवल राजाओं और बड़े बड़े धनाढ्य लोगों ही में थीं। आज कल के पाठकगण को जो कि इस रीति के प्रचलित होने के कारण प्राचीन हिन्दू सभ्यता के विरुद्ध विचार करेंगे यह याद रखना चाहिए कि प्राचीन समय में प्रायः सब जातियों के धनाढ्य लोगों में यह रीति प्रचलित थी। उदाहरण के लिये, सिकन्दर आज़म और उसके उत्तराधिकारी लिसिमकस, सिल्यूकस, टालेमी, डेमिट्रियस, पिर्हस तथा अन्य लोग सब अनेक पत्नी रखनेवाले थे। यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आर्यावर्त में अनेक पति रखने की रीति नहीं थी—"क्योंकि एक मनुष्य के कई स्त्रियां होती हैं, पर एक स्त्री के एक साथ ही कई पति नहीं होते।" (ऐतरेय ब्राह्मण ३, २३)

ऐतरय ब्राह्मण (१, ८, ३, ६) में एक अद्भुत वाक्य है जिसमें तीन वा चार पीढ़ी तक आत्मीय सम्बन्धियों में विवाह करने की मनाही है, "इसीलिये भोगनेवाले (पति) और भोगनेवाली (स्त्री) दोनों एक ही मनुष्य से उत्पन्न होते हैं।" "क्योंकि सम्बन्धी यह कहते हुए हंसी खुशी से इकट्ठे रहते हैं कि तीसरी वा चौथी पीढ़ी में हम लोग फिर सम्मिलित होंगे।" यह मनाही का नियम पीछे के समयों में अधिक कड़ा होता गया।

भारतवर्ष की स्त्रियां अपने पति से स्नेह और भक्ति के लिये सदा से प्रसिद्ध हैं। उनके विश्वासघात करने के ऐसे कोई बिरले ही उदाहरण मिलते हैं। यह जान पड़ेगा कि रोमन केथोलिक पादरियों की नाई हिन्दू ब्राह्मणों ने भी दुर्बल स्त्रियों के गुप्त से गुप्त रहस्यों को जानने के लिये एक उपाय निकाला था। निम्न लिखित वाक्य केथोलिक लोगों के नियम की नाई हैं—

"इस पर प्रतिप्रस्थातृ वहां आता है जहां यज्ञ करनेवाले की

स्त्री बैठी रहती है। जब वह स्त्री को ले आया चाहता है तब उससे पूछता है 'तू किससे संसर्ग रखती है?' अब, यदि किसी की स्त्री किसी दूसरे मनुष्य से संसर्ग रखती है तो वह निस्सन्देह वरुण की अपराधिनी होती है। इसलिये वह उससे पूछता है कि जिसमें वह मन ही मन में वेधना के साथ यज्ञ न करे; क्योंकि पाप कह देने से कम हो जाता है क्योंकि तब वह सत्य हो जाता है; इसी लिये वह उससे इस प्रकार पूछता है। और जो वह संसर्ग नहीं कबूलती तो वह उसके सम्बन्धियों के लिये हानिकारक होगा।" (सतपथ ब्राह्मण २, ५, २, २०)

अध्याय ७

स्मृति, ज्योतिष और विद्या।

अपराधियों को दण्ड देना और कानून का उचित बर्ताव करना ये ही दोनों नींव हैं जिस पर कि सब सभ्य समाज बनाए जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के कुछ वाक्यों में कानून की सच्ची गुणग्राहकता पाई जाती है—"कानून क्षत्र का क्षत्र (बल) है, इसलिये कानून से बढ़ कर कोई चीज नहीं है। तदुपरान्त, राजा की सहायता की भांई कानून की सहायता से दुर्बल मनुष्य भी प्रबल मनुष्य पर शासन कर सकता है। इस प्रकार से कानून वही बात है जिसे कि सत्य कहते हैं। जब कोई मनुष्य सत्य बात को कहता है तो लोग कहते हैं कि वह कानून कहता है; और यदि वह कानून कहता है तो लोग कहते हैं कि वह वही कहता है जो कि सत्य है। इस प्रकार से दोनों एक ही हैं।" (बृहदारण्यक १, ४. १४)। संसार भर के कानून जाननेवाले कानून की इससे बढ़ कर व्याख्या नहीं कर सके हैं।

परन्तु न्याय करने की रीति उस समय भी अपक्क थी और दूसरी प्राचीन जातियों की नांई बहुधा अपराधी लोगों की परीक्षा अग्नि द्वारा ली जाती थी।

"लोग एक मनुष्य को पकड़ कर यहां ले आते हैं और कहते है कि उसने कोई वस्तु ले ली है, उसने चोरी की है।" (जब वह मनुष्य इसे स्वीकार नहीं करता तो वे लोग कहते है) 'इसके लिये कुल्हाड़ी तपाओ।' यदि उसने चोरी की हो तो वह......कुल्हाड़ी को पकड़ने से जल जाता है और मारा जाता है। परन्तु यदि उसने चोरी न की हो तो वह......जलती हुई कुल्हाड़ी को पकड़ लेता है, जलता नहीं, और छोड़ दिया जाता है (छान्दोग्य ६, १६)।

हत्या, चोरी, सुरापान और व्यभिचार, ये बड़े भारी दोष समझे जाते हैं।

अब हम ज्योतिष की ओर मुंह मोड़ेंगे। ज्योतिष शास्त्र का साधारण ज्ञान पहिले पहिल स्वयम् ऋग्वेद में मिलता है। वर्ष १२ चान्द्र मासों में बँटा था और चन्द्र वर्ष को सूर्य वर्ष से मिलाने के लिये एक तेरहवां अर्थात् अधिक मास जोड़ दिया जाता था (१, २५, ८)। वर्ष की छ ऋतुओं के नाम मधु, माधव, सुक, सुचि, नभ और नभस्य थे, और उनका सम्बन्ध भिन्न भिन्न देवताओं से कर दिया गया था (२, ३६)। चन्द्रमा के भिन्न भिन्न रुप उन लोगों को मालूम थे और ये देवताओं के अवतार माने जाते थे। पूर्ण चन्द्रमा राका है, नवचन्द्र का पहिला दिन सिनीवालि है, और नव चन्द्र गुङ्गु है (२, ३२)। नक्षत्रों के हिसाब से चन्द्रमा की स्थिति का भी उल्लेख (८, ३, २० में) आया है और (१०, ८५, १३ में) नक्षत्रों की कुछ राशियों के नाम भी दिए हैं इससे यह जान पड़ेगा कि वैदिक काल में नक्षत्र देखे गए थे और उनका नाम भी पड़ गया था और ऐतिहासिक काव्य काल में राशिचक्र अन्तिम रुप से निश्चित हो गया था।

जैसी कि आशा की जा सकती है ऐतिहासिक काव्य काल में बहुत ही उन्नति हुई। उस काल में ज्योतिष एक जुदा शास्त्र समझा जाने लगा और जो लोग ज्योतिषी का काम करते थे वे नक्षत्रदर्शी और गणक कहलाते थे (तैत्तिरीय ब्राह्मण ४, ५ और शुक्ल यजुर्वेद ३०, १०, २०)। श्याम यजुर्वेद में २८ नक्षत्रों के नाम दिए हैं और दूसरे तथा इसके पीछे के समय के नाम अथर्व संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिए हैं। सतपथ ब्राह्मण (२, १, २) में एक मनोहर वृत्तान्त है जिससे यह जान पड़ता है कि इन नक्षत्रों के सम्बन्ध से जो चन्द्रमा की स्थिति होती थी उससे यज्ञ के विधान किस प्रकार किए जाते थे। परन्तु वह पूरा वृत्तान्त बहुत ही बड़ा है इसलिये हम यहां पर केवल उसका कुछ भाग उद्धृत करेंगे।

"(१) वह कृत्तिका नक्षत्र में दो अग्नि जला सकता है, क्योंकि ये कृत्तिका निस्सन्देह अग्नि के नक्षत्र हैं.....

"(६) वह रोहिणी में भी आग जला सकता है, क्योंकि प्रजापति को जिस समय संतति की इच्छा हुई उस समय उन्होंने रोहिणी ही में अग्नि जलाई थी......

"(८) वह मृगसीर्ष नक्षत्र में भी अग्नि जला सकता है क्योंकि मृगसीर्ष निस्सन्देह प्रजापति का सिर है......वह फाल्गुणी में भी अग्नि जला सकता है। ये फाल्गुणी इन्द्र के नक्षत्र हैं और इनका नाम भी उसी के अनुसार है। क्योंकि यथार्थ में इन्द्र का गुप्त नाम अर्जुन भी है, और ये (फाल्गुणी) भी अर्जुनी कहलाते हैं......

"(१२) जो कोई यह चाहता है कि उसे दान मिले उसको हस्ता नक्षत्र में अग्नि जलानी चाहिए। तब निस्सन्देह उसकी सिद्धि तुरन्त होगी। क्योंकि जो कुछ हाथ (हस्त) से दिया जाता है वह यथार्थ में उसे ही दिया जाता है।

"(१३) वह चित्रा में भी अग्नि जला सकता है।" इत्यादि

इससे जान पड़ेगा कि होमाग्नि नक्षत्रों के अनुसार जलाई जाती थी। इसी प्रकार से जो यज्ञ एक वर्ष तक होते थे वे सूर्य की वार्षिक चाल से स्थिर किए जाते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुवादक और प्रकाशक, डाक्टर हाग ने इस विषय में अपनी बहुत अच्छी सम्मति लिखी है जो यहां उद्धृत करने योग्य है।

" बड़े बड़े यज्ञ प्रायः बसन्त ऋतु में चैत्र वैसाख के महीनों में होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को ध्यान पूर्वक अध्ययन करने वालों को विदित होगा कि सत्र, जोकि एक वर्ष तक होता था, केवल सूर्य के वार्षिक मार्ग का अनुकरण है। उसके दो स्पष्ट भाग होते थे, प्रत्येक भाग में तीस तीस दिन के छ महीने होते थे। इन दोनों के बीच में विषुवत् अर्थात् समदिन होता था जोकि सत्र को दो भागों में बांटता था। इन दोनों अर्द्ध भागों के विधान बिलकुल एकही थे, परन्तु दूसरे अर्द्ध भाग में वे उलटे क्रम से किए जाते थे। इसके उत्तरायन होने से दिनों का बड़ा होना और

दक्षिणायन होने से उनका छोटा होना प्रगट किया जाता है, क्योंकि बढ़ना और घटना दोनों ठीक एकही हिसाब से होता है।

हम कह चुके हैं कि भारतवर्ष में राशिचक्र अन्तिम बार ऐतिहासिक काव्य काल के प्रारम्भ में अर्थात् ईसा के लगभग १४०० वर्ष पहिले ठीक किया गया था। प्रसिद्ध कोल्ब्रूक साहब (Colebrooke) का पहिले पहिल यह मत था कि हिन्दुओं ने नक्षत्रों को अपने ही विचार से ठीक किया था और इसके पीछे वैदिक विधानों में और नक्षत्रों के हिसाब से चन्द्रमा की स्थिति में जो घना सम्बन्ध है उस पर ध्यान पूर्वक विचार करने से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि हिन्दू ज्योतिष की उत्पत्ति हिन्दुस्तानही से हुई थी। परन्तु फिर भी योरप के कुछ विद्वान लोग यह मिथ्या अनुमान करते हैं कि हिन्दू ज्योतिष की उत्पत्ति दूसरे देश से हुई है और इस विषय में यूरप और अमेरिका में बड़ा विवाद हुआ है, जिसे पुस्तकों का युद्ध कह सकते हैं।

प्रसिद्ध फरासीसी विद्वान बायोट (Biot) ने सन् १८६० में चीन की सिउ प्रणाली की उत्पत्ति चीन देश से ही होनी लिखी है और उससे परिमाण यह निकाला है कि हिन्दू-नक्षत्र और अरब मनज़िल चीनही से लिए गए थे। जर्मनी के विद्वान लसन (Lassen) ने भी यह राय मान ली थी। परन्तु प्रोफ़ेसर वेबर (Weber) ने इस विषय पर विचार किया और सन् १८६० और १८६१ में दो बड़े ही अच्छे लेख प्रकाशित किए जिनमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि चीनी सिउ और अरबों की मनाज़िल, नक्षत्रों के विषय में हिन्दुओं के आधुनिक सिद्धान्तों से क्रम, संख्या, सीमाबद्ध तारों, और दूरी की समानता, में मिलती है। प्रोफ़ेसर वेबर ने नक्षत्रों की उत्पत्ति चीन देश से होने का इस प्रकार खंडन किया है और यह भी सिद्ध किया है कि अरब मनज़िल भी अरब लोगों ने भारतवर्ष ही से ली थी। ठीक यही राय कोलब्रूक साहब ने भी सन् १८०७ में स्थिर की थी, जब कि उन्होंने लिखा था कि हिन्दुओं का क्रान्ति मंडल "जान पड़ता है कि उन्हीं का है। उसे अरब वालों ने निस्सन्देह लिया था।"

इस प्रकार से चीनी और अरबी सिद्धान्तों का खण्डन करके प्रोफ़ेसर वेबर को एक अपना ही सिद्धान्त अवश्य ही स्थापित करना पड़ा, जिसे कि हम लोग कालडियन सिद्धान्त कह सकते हैं। उनका अनुमान है कि कदाचित् हिन्दू प्रथा किसी दूसरे देश से, सम्भवतः बेबिलन से, उद्धृत की गई थी। परन्तु यह केवल अनुमान और सन्देह ही है, क्योंकि असीरियन विद्वानों ने बेबिलन की प्राचीन विद्या की पुस्तकों में अभी तक राशिचक्र का कहीं भी चिन्ह नहीं पाया। परन्तु अमेरिका के प्रोफ़ेसर व्हिटने (Whitney) इस 'सन्देह' का समर्थन करते हैं क्योंकि वे विचारते हैं कि हिन्दू लोग "ऐसी प्रकृति के लोग नहीं थे" कि आकाश की ये सब बातें देखते और राशिचक्र स्थिर करते। यह तर्क वितर्क इतना मनोहर है कि उसे हमारे विद्वान प्रोफ़ेसर स्वयम् यह कह कर लगभग फेर ही लेते हैं कि यह युक्ति "ऐसी नहीं है कि उस पर अवश्य विश्वास हो ही हो।"

जब विद्वान लोग ऐसे ऐसे बे सिर पैर के तर्कों पर उतारु हो जाते हैं तो उन पर वादविवाद करना केवल समय का नष्ट करना होगा। इसलिये हम इस विषय को प्रोफ़ेसर मेक्समूलर के कुछ वाक्यों को उद्धृत करके समाप्त करेंगे कि जिसमें उन्होंने इस विषय को साधारण रीति से वर्णन किया है। "२७ नक्षत्र जो कि भारतवर्ष में एक प्रकार के चान्द्र राशिचक्र की भांति चुने गए थे वे बेबिलन से आए हुए विचार किए जाते थे। परन्तु बेबिलन का राशिचक्र सौर्य है और वहां के शिलालेखों में जिनसे कि बहुत सी बातें प्रगट हुई हैं, बार बार खोज करने पर भी चान्द्र राशिचक्र का कोई चिन्ह तक नहीं मिला। इस पर भी यदि यही कल्पना की जाय कि बेबिलन में चान्द्र राशिचक्र पाया गया है तौ भी जिस मनुष्य ने वैदिक ग्रन्थों और प्राचीन वैदिक संस्कारों को पढ़ा है वह कदापि इस बात को सहज में न मान लेगा कि आकाश का यह सरल विभाग हिन्दुओं ने बेबिलन देश निवासियों से लिया था।"*

* Indian: What can it teach us (1883) p. 126.

चान्द्र राशिचक्र को स्थिर करने के सिवाय इस काल में हिन्दुओं ने बड़ी बड़ी घटनाओं की तिथि नियत करने के लिये अयनान्सों को जाना और वर्ष को महीनों में बाँटा। प्रत्येक महीने का नाम उस नक्षत्र के हिसाब से रक्खा जिस नक्षत्र में कि उस महीने का पूर्णचन्द्र होता था। बेंटले साहब (Bentley) के अनुसार चान्द्र राशिचक्र ईसा के १४२६ वर्ष पहिले स्थिर किया गया था और महीनों का नाम ईसा के ११८१ वर्ष पहिले रक्खा गया था। * ईस्वी सन् के उपरान्त सौर राशिचक्र का ज्ञान ग्रीस देशवासियों से उद्धृत किया गया, जैसा कि हम आगे चलकर दिखलावेंगे।

ऐतिहासिक काव्य काल में ज्योतिष के सिवाय दूसरी विद्याओं की भी उन्नति हुई। छान्दोग्य उपनिषद् (७, १, २) में नारद सनत-कुमार से कहते हैं "महाशय, मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथे अथर्वन वेद, पांचवें इतिहास पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण) जानता हूं। पित्र्य (पितरों के श्राद्धादि के नियम), राशि (गणित शास्त्र), दैव (अशुभ लक्षणों का शास्त्र), निधि (समय का शास्त्र), वाकोवाक्य (तर्क शास्त्र) एकायन (नीति विद्या), देव विद्या (शब्दों के उत्पत्ति की विद्या), ब्रह्मविद्या (उच्चारण तथा छन्द निर्माण आदि का शास्त्र), भूत विद्या, क्षत्र विद्या (शस्त्र चलाने की विद्या), नक्षत्र विद्या (ज्योतिष शास्त्र), सर्प देवजन विद्या, यह सब मैं जानता हूं।"

बृहदारण्यक (२, ४, १०) में लिखा है कि "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरा, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान (टीका), व्याख्यान, ये सब परमेश्वर के मुख से निकले हैं।"

फिर सतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें कांड में तीनों वेदों, अथर्वाङ्गिरों, अनुशासनों, विद्याओं, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण नरशंसियों और गाथाओं का उल्लेख आया है।

* Hindu Astronomy (Londen, 1825) pp 3 & 10.

प्रोफेसर वेबर कहते हैं कि यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि ऐतिहासिक काव्य काल में इन नामों के जुदे जुदे ही ग्रन्थ हों जो कि अब हम लोगों को प्राप्त नहीं हैं। वे कहते हैं कि इनमें से बहुत से शास्त्रों से केवल उन्हीं भिन्न भिन्न विषयों से तात्पर्य होगा जिन्हें कि हम लोग अब तक ब्राह्मण ग्रन्थों में पाते हैं। ये भिन्न भिन्न विषय जो ब्राह्मणों और उपनिषदों में मिलते हैं, इसके पीछे अर्थात् दर्शन काल में अध्ययन के जुदे जुदे विषय हुए और वे भिन्न भिन्न सूत्र के ग्रन्थों में पढ़ाए जाते थे, जो कि अब तक हमें प्राप्त हैं।

ऊपर के विचार में कुछ युक्ति है। परन्तु साथ ही इसके, ऊपर लिखे हुए शास्त्रों में से बहुत से ऐसे हैं कि जो उन शास्त्रों की विशेष पुस्तकों की सहायता बिना, केवल गुरु के मुख ही से शिष्यों को नहीं पढ़ाए जा सकते। इसलिये हमारा यह विश्वास है कि ऐतिहासिक काव्य काल में ऐसे ग्रन्थ थे। ये अब हम लोगों को प्राप्त नहीं हैं क्योंकि इसके पीछे के समय में उनके स्थान पर अधिक उत्तम और उच्च ग्रन्थ बन गए थे।

अध्याय ८

——*——
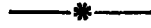
ब्राह्मणों के यज्ञ।

ऐतिहासिक काव्य काल के समय के धर्म में तथा उसके पहिले के समय के धर्म में मुख्य भेद यह था कि इस काल में यज्ञादि आवश्यक समझे जाने लगे। वैदिक काल के आरम्भ में लोग सृष्टि के सब से अद्भुत आविष्कारों की स्तुति में सूक्त बनाते थे। वे सृष्टि के इन भिन्न भिन्न आविष्कारों को न मान कर इन आविष्कारों के देवताओं को इन्द्र वा वरुण और अग्नि वा मरुत्स के नाम से पूजने लगे। इस पूजा ने धीरे धीरे यज्ञ (अर्थात् देवतओं को दूध, अन्न, जीव वा सोमरस चढ़ाने) का रुप धारण किया।

वैदिक काल के अन्त से इसमें धीरे धीरे परिवर्तन होने का पता लगता है। और ऐतिहासिक काव्य काल में तो यज्ञ के विधान इत्यादि इतने प्रधान हो गए कि उसकी और सब बातें भूल गईं। ब्राह्मण लोगों की एक जुदी जाति हो जाने के कारण यह परिणाम आवश्यक ही था। वे लोग विधानों को बढ़ाए जाते थे और प्रत्येक छोटी छोटी बातों पर भी बहुत ही जोर देते थे, यहां तक कि ऐसा करते करते स्वयम् वे तथा पूजा करने वाले दोनों ही इन भारी विधानों में उन देवताओं को लगभग भूल ही गए जिनकी पूजा की जाती थी।

यज्ञों में बहुधा पशुओं, सोने, गहिने और अन्न के दान दिए जाते थे और पशु का बलिदान भी किया जाता था। सतपथ ब्राह्मण (१, २, ३, ७ और ८) में पशुओं के बलिदान के विषय में एक अद्भुत वाक्य है जो यहां उद्धृत करने योग्य है—

"पहिले पहिल देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह

बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। जब बैल बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने भेंड़ी में प्रवेश किया। जब भेंड़ी बलि दी गई तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल गया और उसने बकरे में प्रवेश किया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्त्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने उसे खोजने के लिये पृथ्वी को खोदा और उसे चावल और जव के रूपों मे पाया। इसी लिये अब भी लोग इन दोनों को खोद कर तब पाते हैं। जो मनुष्य इस कथा को जानता है उसको (चावल आदि) का हव्य देने से उतना ही फल होता है जितना कि इन सब पशुओं के बलि करने से।"

प्रोफेसर मेक्समूलर ऊपर के उद्धृत भाग से यह सिद्धान्त निकालते हैं कि प्राचीन हिन्दुओं में मनुष्यबध प्रचलित था, परन्तु यह ऐतिहासिक काव्य काल अथवा वैदिक काल में नहीं, वरन् उससे भी बहुत पहिले था। हमें खेद है कि डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने भी प्रोफेसर मेक्समूलर का अनुकरण करके इसी काल के ग्रन्थों में से कुछ और वाक्य भी उद्धृत किए हैं और उनसे स्थिर किया है कि बहुत प्राचीन समय में यह अमानुषी प्रथा प्रचलित थी। हम इन दोनों विद्वानों के सिद्धान्तों में शंका करते हैं।

यदि भारतवर्ष में यह प्रथा ऋग्वेद के सूक्तों के बनने के पहिले प्रचलित होती तो उसका उल्लेख उत्तर काल के ब्राह्मण ग्रन्थों से कहीं अधिक मिलता। परन्तु उनमें इसका उल्लेख ही नहीं है। ऋग्वेद में जो सुनहसेफ की कथा है वह मनुष्य बध का कोई प्रमाण नहीं हो सकती। और ऋग्वेद में और कहीं भी कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिससे कि इस कथा के प्रचलित रहने का अनुमान किया जाय। यह विचार करना असम्भव है कि ऐसी भयानक कथा प्रचलित रह

कर धीरे धीरे उठ गई हो और उसका कुछ भी चिन्ह उन वैदिक सूक्तों में न पाया जाय जिनमें कुछ तो बहुत ही प्राचीन समय के हैं।

फिर ऐतिहासिक काव्य काल ही के किस ग्रन्थ में इस प्रथा का उल्लेख पाया जाता है? सामवेद का संग्रह वैदिक सूक्तों ही से किया गया है और इस वेद में भी मनुष्यों के बलिदान किए जाने का कहीं वर्णन नहीं है। सिवाय इसके श्यामयजुर्वेद और मूल शुक्ल यजुर्वेद में भी इसका कहीं उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक काव्य काल के केवल सब से अन्तिम ग्रन्थों में अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद के खिल वा उपोद्घात में, श्याम यजुर्वेद ब्राह्मण में, ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में और सतपथ ब्राह्मण के अन्तिम भाग के पहिले वाले भाग में, मनुष्य बलिदान किए जाने का हाल मिलता है। तो क्या यह सम्भव है कि यह प्रथा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन समय में रही हो और उसका उल्लेख ऋग्वेद, सामवेद, श्याम या शुक्ल यजुर्वेद में कहीं न आवे और फिर एक हजार वर्ष पीछे वेदों के ब्राह्मणों और खिलों में एकाएक उसका स्मरण हो आवे? इसके विपरीत, क्या यह अधिक सम्भव नहीं है कि ऐतिहासिक काव्य काल के अन्तिम ग्रन्थों में मनुष्य बलि दिए जाने के जो उल्लेख मिलते हैं वे उसी प्रकार की ब्राह्मणों की कल्पनाएं हैं जैसी कि स्वयम् ईश्वर के बलि दिए जाने की कल्पनाएं मिलती हैं? और यदि ब्राह्मणों को इस कल्पना में किसी सहारे की आवश्यकता हो तो वह सहारा उन्होंने उन अनार्य जातियों की रीति व्यवहार से पाया होगा, जिससे कि वे ऐतिहासिक काव्य काल में परिचित हुए थे।

अब, इस समय जो मुख्य मुख्य यज्ञादि होते थे उनको हम संक्षेप में वर्णन करेंगे। इन यज्ञादि का पता यजुर्वेद से लगता है।

जिस दिन नवचन्द्र अथवा पूर्णचन्द्र होता था उसके दूसरे दिन दर्श पूर्णमास किया जाता था और इन दोनों दिनों को हिन्दू लोग आज तक पवित्र मानते हैं। पिण्डपितृयज्ञ मृत पूर्वजों के लिये किया जाता था और यह आज तक भी किया जाता है।

अग्निहोत्र नित्य सन्ध्या और सवेरे किया जाता था जिसमें अग्नि को दूध चढ़ाया जाता था। चातुर्मास्य यज्ञ हर चौथे महीने किया जाता था।

अग्निष्टोम, सोम का यज्ञ होता था और अधिक सोमपान करने के प्रायश्चित्त में सौत्रामणि किया जाता था। बड़े बड़े राजा लोग जब विजय करके प्रताप और कीर्ति प्राप्त कर लेते थे तो वे राजसूय यज्ञ करते थे, और अश्वमेध भी बड़े बड़े युद्धों और विजयों के पीछे किया जाता था। इन सब से अधिक नम्र, परन्तु हमारे काम के लिये बहुत ही मुख्य, अग्न्याधान अर्थात् होमाग्नि का जलना होता था, जिसका कि प्रत्येक हिन्दू के जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और इस लिये इसका थोड़ा सा वर्णन यहां कर देना उचित है।

यह पहिले कहा जा चुका है कि अश्वपति इस बात की शेखी करता था कि उसके राज्य में कोई चोर, कृपण, शराबी, मूर्ख, व्यभिचारी वा व्यभिचारिन अथवा कोई "ऐसा मनुष्य जिसके घर में वेदी न हो" नहीं था। उन दिनों, वेदी में पवित्र होमाग्नि रखना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक धर्म समझा जाता था और उसको न करना पाप और अधर्म समझा जाता था। जो विद्यार्थी अपने शिक्षक वा परिषद् में शिक्षा समाप्त करके घर लौट जाता था तो वह यथा समय विवाह करता था और तब होमाग्नि प्रज्वलित करता था। यह प्रायः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को किया जाता था परन्तु कभी कभी, कदाचित नवदम्पति को धर्म कार्यों में शीघ्र सम्मिलित करने के लिये, पूर्णिमा को भी किया जाता था। अग्न्याधान को करने में प्रायः दो दिन लगते थे। होम करनेवाला अपने चारो विप्रों अर्थात् ब्राह्मण, होतृ, अध्वर्यु, और अग्नीध्र को चुनता था और गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों के लिये दो अग्नि कुण्ड बनाता था। गार्हपत्य अग्नि के लिये एक वृत्त बनाया जाता था और आहवनीय अग्नि के लिये समचतुर्भुज, और यदि दक्षिणाग्नि की आवश्यकता होती थी तो उसके लिये इन दोनों के बीच की जगह के दक्षिण में एक अर्धवृत्त बनाया जाता था।

तब अध्वर्यु गाँव में से कुछ विशेष रीति से अथवा रगड़ कर आग उत्पन्न करता था और गार्हपत्य के अग्नि कुण्ड को पांच प्रकार से शुद्ध करके उस पर अग्नि रखता था। सन्ध्या होने के समय होम करनेवाला देवताओं और पितरों का आवाहन करता था। तब वह और उसकी पत्नी गार्हपत्य गृह में प्रवेश करते थे और अध्वर्यु उसे दो काठ की अरणी दूसरे दिन प्रातःकाल आहवनीय अग्नि उत्पन्न करने के लिये देता था। होम करनेवाला और उसकी पत्नी इनको अपनी गोद में रख कर शान्ति की क्रियाओं को करते थे और रात भर जाग कर अग्नि को जलती रखते थे। सवेरे अध्वर्यु अग्नि को बुझा देता था वा यदि दक्षिणाग्नि होने को होती थी तो उसके लिये अग्नि जलाने तक इसको रहने देता था। यह अग्न्याधान की रीति का संक्षेप में वर्णन हुआ। इस प्राचीन समय में जब कि सब लोग अपने अपने अग्निकुंड में देवताओं की पूजा करते थे और जब मन्दिर वा मूर्तियां नहीं थीं तो अग्न्याधान प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ का बड़ा आवश्यक धर्म समझा जाता था।

प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर राथ ने ऋग्वेद के एक वाक्य (१०,१८, ११) से सन् १८५४ ईस्वी में पहिले पहिल यह बात दिखलाई है कि प्राचीन समय में हिन्दू लोग मुर्दों को गाड़ते थे। इसके पीछे मृतक लोग जलाए जाने लगे और उनकी राख गाड़ी जाने लगी। यह दूसरी प्रथा ऋग्वेद के समय में प्रचलित थी जिसका पता ऋग्वेद के अन्य वाक्यों (यथा १०, १५, १४ और १०, १६ १) से मिलता है। ऐतिहासिक काव्य काल में, जिसका कि हम अब वर्णन कर रहे हैं, मृतक को गाड़ने की चाल बिलकुल उठ गई थी और मृतक जलाए जाते थे और उनकी राख गाड़ी जाती थी। इसका वर्णन शुक्ल यजुर्वेद के ३५वें अध्याय में मिलता है। मृतक की हड्डियां एक बर्तन में इकट्ठी करके किसी नदी के निकट की भूमि में गाड़ी जाती थीं और उस पर घुटने तक ऊंचा एक चबूतरा उठा कर घास से ढांक दिया जाता था। तब मृतक के सम्बन्धी स्नान करके कपड़े बदलते थे और उस स्थान से चले आते थे।

इसी रीति का वर्णन अधिक विस्तार पूर्वक श्याम यजुर्वेद के आरण्यक में भी दिया है। यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दुओं में आज कल केवल जलाने की रीति प्रचलित है, राख और हड्डियां गाड़ी नहीं जातीं। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार यह आधुनिक प्रथा ईस्वी सन् के प्रारम्भ के होने से कुछ ही पीछे से चली है।

दूसरा यज्ञ जो वर्णन करने योग्य है पिण्डपितृ यज्ञ है जिसमें मृत पितरों को पिण्ड दिया जाता था। ये पिण्ड अग्नि और सोम को दिए जाते थे और पितर लोगों का, उनका भाग देने के लिये आवाहन किया जाता था। तब पितरों को वर्ष की छ ऋतुओं के अनुसार सम्बोधन किया जाता था। तब पूजा करनेवाला अपनी पत्नी की ओर देखकर कहता था "हे पितृगण! आपने हम लोगों को गृहस्थ बनाया है। हम लोग अपनी शक्ति के अनुसार आपके लिये ये वस्तुएं ले आए हैं।" तब वह कुछ डोरा वा ऊन वा बाल रख कर कहता था "हे पितृगण! यह आपका वस्त्र है, इसे पहिनो।" तब स्त्री पुत्र होने की इच्छा से एक पिण्ड खाती थी और कहती थी—"हे पितर! मुझे इस ऋतु में एक पुत्र दो। तुम इस गर्भ में उस पुत्र की सब रोगों से रक्षा करो।" हिन्दूधर्म के अनुसार मृत पितर लोग अपनी जीवित सन्तति से पिण्ड आदि पाते हैं और उनका वंश लुप्त होजाने पर यह उन्हें नहीं मिलता। इसी लिये हिन्दू लोग बिना पुत्र के निस्सन्तान मरने में इतना अधिक भय करते हैं और पुत्र का जन्माना अथवा गोद लेना उनके धर्म का एक भाग समझा जाता है।

हम यहां दूसरे यज्ञादि का वर्णन नहीं किया चाहते। जितना ऊपर लिखा जा चुका है उतनेही से पाठकगण समझ जांयगे कि यज्ञादि किस प्रकार से होते थे। अब हम ब्राह्मणों की कुछ कथाओं का वर्णन करेंगे जो कि बहुत ही अद्भुत और रोचक हैं। मनु के विषय में एक बहुतही अद्भुत कथा कही जाती है। वैदिक सूक्तों में मनु मनुष्यों का प्राचीन उत्पन्न करनेवाला कहा गया है जिसने कि खेती तथा अग्नि की पूजा प्रचलित की। सतपथ ब्राह्मण की कथा

(१,८,१) पुरानी बायबिल की नाईं है। जब मनु अपने हाथ धो रहा था तो उसके निकट एक मछली आई और बोली कि "मुझे पाल, तो मैं तेरी रक्षा करूंगी।" मनु ने उसे पाला और समय पाकर उसने उससे कहा कि "अमुक वर्ष में जल प्रलय होगी। इस लिये तू मेरा कहना मान कर एक जहाज तैयार कर।" जल प्रलय हुई और मनु ने उस जहाज में प्रवेश किया जिसे कि वह यथा समय बना चुका था। मछली उसके पास तैर कर आई और जहाज को उत्तरी पर्वत के उधर ले गई। वहां पर वह जहाज एक पेड़ में बांध दिया गया और जल प्रलय धीरे धीरे शान्त होने लगी तो मनु धीरे धीरे नीचे उतरा। तो जल प्रलय इन सब जीवों को बहा ले गई और केवल मनु यहां रह गया।"

इस संसार की सृष्टि के सम्बन्ध की कथा भी बड़ी रोचक है। वेद में एक बड़ा अच्छा रूपक है जिसमें प्रभात का पीछा करते हुए सूर्य की उपमा किसी कुमारी का पीछा करते हुए पुरुष से दी गई है। इसी से ब्राह्मणों की उस कथा (सतपथ १,७,४, ऐतरेय ३, ३३ आदि) की उत्पत्ति हुई जिसमें परमात्मा प्रजापति का अपनी पुत्री पर मोहित होना और इसीसे सृष्टि की उत्पत्ति होना लिखा है। ब्राह्मणों की यह कथा पुराणों में और भी अधिक बढ़ा दी गई है और उन में ब्रह्मा का अपनी पुत्री पर मोहित होना लिखा है। ये सब विचित्र कथाएं ऋग्वेद के उसी सरल रूपक से निकली हैं जो कि प्रभात का पीछा करते हुए सूर्य के विषय में है। इन सब पौराणिक कथाओं की उत्पत्ति हिन्दू ऋषियों और भाष्यकारों को मालूम भी थी जैसा कि बौद्ध धर्म के बड़े भारी विपक्षी और शङ्कराचार्य के पूर्वाधिकारी कुमारिल के निम्नलिखित प्रसिद्ध वाक्यों से जान पड़ेगा—

"यह एक कल्पित कथा है कि सृष्टि के कर्ता प्रजापति ने अपनी पुत्री के साथ प्रीति की परन्तु, इसका अर्थ क्या है? 'प्रजापति' अर्थात् 'सृष्टि का करने वाला' सूर्य का एक नाम है क्योंकि वह सब जीवों की रक्षा करता है। इसकी पुत्री उषस् प्रभात है। अतएव जहां यह कहा गया है कि वह उस पर मोहित हो गया तो उसका तात्पर्य

केवल यह है कि सूर्योदय के समय सूर्य प्रभात का पीछा करता है। प्रभात सूर्य की पुत्री इसलिये कही गई है क्योंकि जब सूर्य निकट आता है तब वह उत्पन्न होती है। इसी भांति यह कहा गया है कि इन्द्र अहल्या पर मोहित हो गया। इसका यह अर्थ नहीं है कि इन्द्रदेवता ने ऐसा सचमुच पाप किया। परन्तु इन्द्र से सूर्य का और अहल्या से रात्रि का तात्पर्य है। सवेरे के समय सूर्य रात्रि को मोहित करके नष्ट कर देता है, इसलिये इन्द्र का अहल्या पर मोहित होना लिखा गया है।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण (१, १, ३, १) में सृष्टि की उत्पत्ति होने की एक दूसरी ही कथा लिखी है। पहिले पहिल सब जलमय था और उसमें से केवल एक पद्म निकला हुआ था। प्रजापति ने उसमें बराह का रूप धर कर गोता मारा और कुछ मिट्टी बाहर निकालकर उसे फैलाया और उसे कंकड़ों के आधार पर रक्खा। यही पृथिवी हुई।

ऐसी ही एक कथा सतपथ ब्राह्मण (२, १, १, ८) में भी लिखी है कि सृष्टि होने के पीछे देवता और असुर दोनों प्रजापति से उत्पन्न हुए और इन दोनों में प्रभुत्व पाने के लिये ऐसा युद्ध हुआ कि पृथ्वी कमल के पत्ते की नाईं कांपने लगी। "ऋग्वेद में "असुर" शब्द का प्रयोग विशेषण की भांति हुआ है और उसका अर्थ है बलवान वा शक्तिमान। अन्तिम मण्डल के अन्त के कुछ सूक्तों को छोड़ कर और सब जगह यह शब्द देवताओं के लिये आया है। परन्तु ब्राह्मणों में इस शब्द का अर्थ बिलकुल ही बदल गया है अर्थात् वहां वह देवताओं के शत्रुओं के लिये आया है जिनके विषय में कि बहुत सी नई कथाएं गढ़ी गई हैं।

सतपथ ब्राह्मण में (२, ५, १) सृष्टि उत्पन्न होने की एक दूसरी कथा भी मिलती है। "पहिले पहिल निस्सन्देह यहां केवल प्रजापति ही था।" उसने प्राणियों, पक्षियों, कीड़ों मकोड़ों और सर्पों को उत्पन्न किया। परन्तु ये सब आहार के अभाव से मर गए।

तब उसने उनके शरीर के अग्रभाग में छाती में दूध दिया जिससे कि सब जन्तु जीवित रह सके और इस प्रकार सृष्टि में पहिले पहिल जीव जन्तु बनाए गए।

ऐतिहासिक काव्य काल में यद्यपि कथाएं और यज्ञादि इस प्रकार बढ़ रहे थे पर लोगों का धर्म वैसाही था जैसा कि वैदिक काल में। ऋग्वेद के देवताओं की पूजा अब भी की जाती थी और ऋक्, सामन, और यजुस् के सूक्तों का पाठ अब तक किया जाता था। भेद केवल इतना ही था कि वैदिक काल में देवता लोगों की जितनी प्रतिष्ठा थी वह अब लोप हो गई और उसके स्थान में यज्ञ के विधानों की प्रतिष्ठा होने लगी।

परन्तु इस काल में धीरे धीरे नए देवता भी हिन्दुओं के देवताओं की नामावली में स्थान पाते जाते थे और इन नए नामों ने आगे चलकर प्रधानता प्राप्त कर ली। हम देख चुके हैं कि सतपथ ब्राह्मण में भी 'अर्जुन' इन्द्र का दूसरा नाम है। शुक्ल यजुर्वेद ही के १६ वें अध्याय में हम रुद्र को अपना पौराणिक नाम धारण करते हुए तथा एक भिन्न रूप धारण करते हुए देखते हैं। हम देख चुके हैं कि ऋग्वेद में रुद्र आंधियों का पिता अर्थात् बिजली है। शुक्ल यजुर्वेद में भी वह बिजली उत्पन्न करनेवाला मेघ कहा गया है, परन्तु वहां उसका वर्णन एक भयानक देवता की नाईं किया गया है, जो कि चोरों और पापियों का देवता है और एक बिलकुल संहारक शक्ति है। वह 'गिरीश' कहा गया है क्योंकि मेघ पर्वतों के ऊपर होते हैं। वह (मेघ की रक्षा के कारण) ताम्र वा अरुण वा बभ्रु कहा गया है। वह (उसी कारण से) नीलकण्ठ वा नील गलेवाला भी कहा गया है। उसका नाम 'कपर्दिन' वा लम्बे केशवाला, 'पशुपति' वा पशुओं का रक्षक, 'शङ्कर' वा उपकारी, और 'शिव' वा हित करनेवाला भी, मिलता है। इस प्रकार से ऐतिहासिक काव्य काल में हम रुद्र को परिवर्तन होने की अवस्था में पाते हैं और उसी काल में उसके विषय की कुछ पौराणिक कथाओं की उत्पत्ति भी दृष्टि गोचर होती है। परन्तु ब्राह्मण

ग्रन्थों में ये कथाएं अपने पूरे विस्तृत रूप से कहीं भी नहीं मिलतीं। रुद्र का पौराणिक शिव अर्थात् काली वा दुर्गा के पति की भांति कहीं भी वर्णन नहीं मिलता। कौषीतकि ब्राह्मण में एक स्थान पर ईशान वा महादेव को बहुत ही प्रधानता दी गई है। सतपथ ब्राह्मण में निम्न लिखित वाक्य मिलता है—"हे रुद्र! यह तेरा भाग है। कृपा कर इसे अपनी बहिन अम्बिका के साथ स्वीकार कर!" (२, ६, २, ६) और अथर्व वेद का जो मण्डूक उपनिषद् है उसके एक प्रसिद्ध वाक्य में अग्नि की सात जिह्वाओं के ये नाम मिलते हैं अर्थात् काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, और विश्वरुपी। सतपथ ब्राह्मण (२, ४, ४, ६) में दक्ष पार्वती के एक यज्ञ करने का वर्णन है और केनोपनिषद् में एक उमा हैमवती नाम की स्त्री का वर्णन है जिसने कि इन्द्र के सामने आकर उसे ब्रह्म ज्ञान दिया। ये ब्राह्मण ग्रन्थों के उन वाक्यों के कुछ उदाहरण दे दिए गए जिनसे कि पुराण में शिव और उसकी पत्नी के विषय में इतनी भारी कथा गढ़ी गई है।

ऐतरेय ब्राह्मण (६, १५) और सतपथ ब्राह्मण (१, २, ५) में यह कथा है कि देवताओं ने असुरों से पृथ्वी का उतना भाग ले लिया जितना कि विष्णु ढँक सके और इस प्रकार से उन्होंने सारी पृथ्वी ले ली। सतपथ ब्राह्मण की अन्तिम पुस्तक में जाकर तब कहीं विष्णु ने और सब देवताओं से अधिक श्रेष्ठता पाई है और तब इन्द्र ने उसका सिर काट लिया है। देवकी के पुत्र कृष्ण की तब तक भी देवताओं में गणना नहीं थी, वह छान्दोग्य उपनिषद् में घोर आङ्गिरस का केवल एक शिष्य है (३, १७, ६)

जिस प्रकार से इन उधर उधर फैले हुए उल्लेखों में उन लम्बी चौड़ी पौराणिक कथाओं की रचना की सामिग्री पाई जाती है जो कि आगे चल कर हुई वैसे ही ऐतिहासिक काव्य काल में ब्राह्मणों के विधानों और धर्म में उस अविश्वास के भी चिन्ह दिखाई देते हैं जो कि आगे चल कर बौद्ध सिद्धान्तों के रुप में प्रगट हुए। सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण में व्रात्य-स्तोम दिए हुए हैं जिनसे

व्रात्य लोग (अर्थात् वे लोग जो ब्राह्मणों की रीति से नहीं रहते थे) उस सम्प्रदाय में सम्मिलित हो सकते थे। उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं—वे खुले हुए युद्ध के रथों पर सवारी करते हैं, धनुष और भाले साथ रखते हैं, पगड़ी, ढीले ढाले लाल किनारे वाले कपड़े, जूता और दोहरी भेड़ी की खाल पहिनते हैं, उनके नायक लोग भूरे कपड़े और गले में चाँदी के गहिने पहिनते हैं, वे न तो खेती करते हैं और न वाणिज्य, उनके कानून भी बहुत ही गड़बड़ हैं, वे ब्राह्मणों के संस्कार पाए हुए लोगों की ही भाषा बोलते हैं, परन्तु जिसका उच्चारण सहज में हो सकता है उसे उच्चारण में कठिन बतलाते हैं।" परन्तु व्रात्य तब तक घृणा की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे और प्रश्न उपनिषद में स्वयम् परमेश्वर व्रात्य कहा गया है।

अध्याय १

——:o:——

उपनिषदों का धर्मपथ ।

ब्राह्मणों के विधानों और कथाओं को छोड़ कर उपनिषदों के प्रबल विचारों का उल्लेख करना तनिक सुखद है । वृहद् ब्राह्मणों में जो बड़े बड़े, परन्तु निरर्थक विधान हैं, जो निर्देशरूप परन्तु बालोचित व्याख्यान हैं, जो गुप्त और हंसने योग्य उक्तियां हैं, उन से लोगों को कुछ असन्तोष सा जान पड़ता है । बुद्धिमान लोग विचारने लगे कि क्या धर्म में यही सब शिक्षा हो सकती है । एकाग्रचित पुरुष यद्यपि ब्राह्मणों के विधानों के अनुसार चलते थे पर वे आत्मा के उद्देश्य तथा परमात्मा के विषय में विचार करने लगे । अवश्यमेव विद्वान क्षत्रियों ही ने इन उत्तम विचारों को चलाया होगा वा कम से कम तब तक तो उन्हें पौरुष और सफलता के साथ अवश्य ही चलाया होगा जब तक कि ब्राह्मणों ने इस नए सम्प्रदाय का कुछ ज्ञान न प्राप्त कर लिया हो । इन उपनिषदों में दिए हुए धर्म पथ की प्रबलता, एकाग्रता, और दर्शनिकता ऐसी है कि यद्यपि उनको तीन हज़ार वर्ष हो गए परन्तु अब तक भी यह असम्भव है कि उनके देखने से आश्चर्य न हो । इनमें से सब से मुख्य ये हैं (१) सर्वगत आत्मा का सिद्धान्त (२) सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त (३) आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त और (४) अन्तिम मुक्ति पाने का सिद्धान्त ।

पहिले पहिल हम सर्वगत आत्मा का सिद्धान्त वर्णन करेंगे जो कि उपनिषदों के दर्शन शास्त्र की जड़ है । यह सिद्धान्त उत्तर काल के अद्वैतवाद से कुछ भिन्न है, क्योंकि इस अद्वैतवाद में सृष्टि कर्ता ईश्वर अपनी रची हुई सृष्टि से अलग समझा जाता है । परन्तु उपनिषदों के अद्वैतवाद में जो सदा से हिन्दू धर्म का एकेश्वर-

वाद सिद्धान्त रहा, ईश्वर सर्वात्मा समझा गया है अर्थात् सब वस्तुएं इसी से उत्पन्न हुई हैं, उसीकी अंश हैं और अन्त में उसी में मिल जांयगी; किसी वस्तु का उससे भिन्न जीवन नहीं है। यही शिक्षा सत्यकाम जबालि ने प्रकृति से पाई थी और इसी शिक्षा को याज्ञवल्क्य ने अपनी प्यारी और माननीय स्त्री मैत्रेयी को दिया था। यही शिक्षा उपनिषदों में सैकड़ों रूपकों, कहानियों और उत्तम कथाओं में वर्णित है जो कि उपनिषदों को सारे संसार के ग्रन्थों में सबसे श्रेष्ठ बनाती हैं।

"यह सब ब्रह्म है। मनुष्य को इस संसार की उत्पत्ति, नाश और स्थिति उसी ब्रह्म के रूप में विचारनी चाहिए...

"वह सर्वज्ञ, जिसका शरीर आत्मा है, जिसका रूप ज्योति है, जिसके विचार सत्य हैं, जो आकाश की नांई (अर्थात् सर्वव्यापी और अदृश्य) है, जिससे सब कर्म, इच्छाएं, सब सुगन्धि और स्वाद उत्पन्न होते हैं, जो इन सभों में व्याप्त है और जो कभी बोलता नहीं और न कभी आश्चर्य करता है।

"वही मेरे हृदय के भीतर मेरी आत्मा है, जो कि चावल के दाने से छोटी, यव के दाने से छोटी, सरसों के दाने से छोटी, कनेरी के दाने से छोटी और कनेरी के दाल के दाने से भी छोटी है। वही मेरे हृदय के भीतर की आत्मा है जो कि पृथ्वी से बड़ी, आकाश से बड़ी, स्वर्ग से बड़ी और इन सब लोकों से भी बड़ी है।

"वह जिससे सब कार्य, सब इच्छाएं, सब सुगन्धि और स्वाद उत्पन्न होते हैं, जो सबमें व्याप्त है, जो कभी बोलता नहीं और न आश्चर्य करता है, वही मेरे हृदय के भीतर की आत्मा ब्रह्म है। जब मैं इस संसार से कूच करूंगा तब उसे प्राप्त करूंगा।" (छान्दोग्य ३, १४)

प्राचीन समय के हिन्दू लोगों ने सूक्ष्म और सर्वव्यापी परमात्मा, के विषय के जिसे कि वे ब्रह्म कहते थे, अपने उच्च विचारों को ऐसी उच्च भाषा में प्रगट किया है।

हम यहां छान्दोग्य के कुछ और उदाहरण उद्धृत करेंगे। हम पहिले देख चुके हैं कि श्वेत केतु अपने गुरु के साथ बारह वर्ष की अवस्था से लेकर चौबीस वर्ष की अवस्था तक रहा और तब "सब वेदों का अध्ययन करके मानी तथा अपने को पंडित और दृढ़ समझता हुआ" घर लौट आया। परन्तु अब तक भी उसे कुछ बातें सीखनी बाकी थीं जो कि उस समय की पाठशालाओं में नहीं सिखाई जाती थीं। अतएव उसके पिता उद्दालक आरुणेय ने उसे सुन्दर रूपकों में परमात्मा के ज्ञान की शिक्षा दी—

"हे पुत्र, जिस प्रकार मधुमक्खियां दूर दूर के वृक्षों के रस इकट्ठा करके मधु बनाती हैं और इन रसों को एक रूप में कर देती हैं और जिस प्रकार से इन रसों में कोई विवेक नहीं रहता जिससे कि ये कहें कि मैं इस वृक्ष का रस हूं और मैं उस वृक्ष का, उसी प्रकार ये सब जीव जब परमात्मा में मिल जाते हैं तो उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि हम परमात्मा में मिल गए...........

"हे पुत्र, ये नदियां बहती हैं, पूर्वी नदी (जैसे गङ्गा) पूरब की ओर, और पश्चिमी (जैसे सिन्ध) पश्चिम की ओर। वे समुद्र में से ही समुद्र में जाती हैं (अर्थात् मेघ समुद्र के जल को आकाश में उड़ा कर फिर उसे वृष्टि के रूप में समुद्र ही में भेजता है) और वास्तव में समुद्र ही हो जाती हैं, और जिस प्रकार से ये नदियां समुद्र में जाने के पीछे यह नहीं समझतीं कि मैं यह नदी हूं और मैं वह नदी हूं, वैसे ही ये सब जीव परमात्मा ही से उत्पन्न होकर यह नहीं जानते कि हम परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं........

"व इस नमक को पानी में डाल दो और हमारे पास सवेरे आओ।'

"पुत्र ने जैसी आज्ञा पाई वैसा ही किया। पिता ने उससे पूछा 'कल रात को जो नमक तुमने पानी में डाला था उसे मुझको दो।' पुत्र ने उसे ढूंढा पर न पाया, क्योंकि निस्सन्देह वह गल गया था।

"पिता ने कहा 'इस जल को ऊपर से चखो। कहो, कैसा है?' पुत्र ने उत्तर दिया 'यह नमकीन है।' 'इसे बीच में से चखो। कहो, कैसा है?' पुत्र ने उत्तर दिया 'नमकीन है।' 'उसे पेंदे से चखो। कैसा है?' पुत्र ने उत्तर दिया 'नमकीन है।' पिता ने कहा 'इसे फेंक कर मेरे पास आओ।'

"पुत्र पिता के पास गया और पिता ने उसे उपदेश दिया कि 'जल में जिस प्रकार से नमक था उसी प्रकार से हम लोगों में परमात्मा रह कर अदृश्य है।" (छान्दोग्य ६)

छान्दोग्य के इन वाक्यों से हमको परमात्मा के विषय मे हिन्दुओं के विचार प्रगट होते हैं। अब हम केन और ईश में से दो तीन वाक्य उद्धृत करेंगे—

"शिष्य ने पूछा "यह मन किसकी इच्छा से भेजा जाकर अपने कार्य में लगता है? किसकी आज्ञा से पहिले पहिल सांस निकलता है? किसकी इच्छा से हम लोग बोलते हैं! कौन देवता आंख और कान का अधिष्ठाता है?"

गुरु उत्तर देता है—"वह कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, स्वांस का स्वांस, और आंख की आंख है...

"वह जिसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती परन्तु उसीसे वाणी वर्णन करती है......वह जिसे मन नहीं सोच सकता परन्तु जिससे मन सोचा जाता है......वह जो आंख से नहीं देखा जा सकता परन्तु जिससे आंख देखती है......वह जो कान से नहीं सुना जाता और जिससे कान सुना जाता है......वह जो स्वांस नहीं लेता और जिससे स्वांस लिया जाता है,—केवल वही ब्रह्म है,—न कि वह जिसे लोग यहां पूजते हैं।" (केन उपनिषद् १)

ऊपर के वाक्य में कौन नहीं देखेगा कि उन निरर्थक विधानों के बन्धनों को दूर करने का यत्न किया गया है जिसे कि ब्राह्मण लोग सिखाते थे और "लोग यहां" करते थे तथा समझ में न आवे

वाले अर्थात् स्वांस के स्वांस और आत्मा की आत्मा के उच्चतम विषय के समझने का उद्योग किया गया है ? तीन हजार वर्ष पहिले हिन्दू जाति ने अज्ञात सृष्टिकर्ता को जानने और ध्यान में न आनेवाले ईश्वर को ध्यान में लाने का साहस के साथ जो उद्योग किया था उससे कौन आश्चर्य न करेगा ?

और जिसने ध्यान में न आनेवाले ईश्वर के विषय में कुछ भी समझ लिया है उसे जो आनन्द प्राप्त होता है वह बहुत अच्छी तरह से वर्णन किया गया है।

"वह जो आत्मा में सब प्राणियों को और सब प्राणियों में आत्मा को देखता है वह उससे कभी विमुख नहीं होता।

"जब कोई ज्ञानी सब चीजों में आत्मा को समझने लगता हो तो फिर जिसने इस एकता को एक बार समझ लिया है उसे क्या कोई शोक अथवा कष्ट हो सकता है।

उस आत्मा ने जो प्रदीप्त, निराकार, अक्षत, स्नायुरहित, पवित्र, पाप से अस्पृष्ट, सर्वदर्शी, बुद्धिवान सर्वस्थायी और स्वयम् है, सब बातों को सदा के लिये ठीक ठीक निर्धारित किया है।

अन्त में बृहदारण्यक उपनिषद् मे लिखा है कि सब देवता आत्मा वा पुरुष के ही स्वरूप हैं "क्योंकि वही सब देवता है" (१, ४, ६) और साथ ही इसके वह सब मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य और शूद्र में भी है (१, ४, १५)

हमने इस विषय में जो भाग उद्धृत किए हैं वे कुछ लम्बे चौड़े हैं परन्तु इसके लिये हमारे पाठकों को पछताना नहीं पड़ेगा क्योंकि आत्मा का सिद्धान्त हिन्दूधर्म की जड़ है और इस लिये यह जानना आवश्यक है कि यह विचार भारतवर्ष में उपनिषदों में पहिले पहिल कैसे परिपक्व हुआ। अब हम दूसरे मुख्य सिद्धांत अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धान्त का वर्णन करेंगे।

इन प्राचीन विद्वानों के लिये सृष्टि की उत्पत्ति अभी तक एक गूढ़ विषय था इस लिये उसका वर्णन करने के जो यत्न किए गए वे अवश्य ही बड़े विचित्र और कल्पित थे। यहां पर हम कुछ वाक्य उद्धृत करेंगे—

"आदि में यह नहीं था। जब यह बढ़ा तब उसका अस्तित्व हुआ। वह एक अण्डे के रूप में हो गया। अण्डा एक वर्ष तक रहा। फिर अण्डा फूटा। इसके जो दो टुकड़े हुए उनमें एक चांदी का दूसरा सोने का था।

"चांदी वाले टुकड़े की पृथ्वी, और सोने वाले टुकड़े का आकाश, मोटी झिल्ली के पर्वत और पतली झिल्ली के कोहिरे और मेघ, छोटी छोटी नसों की नदियां और द्रव भाग का समुद्र बन गया।

"और जो कुछ उससे उत्पन्न हुआ वह आदित्य अर्थात् सूर्य था। जब वह उत्पन्न हुआ तो जय जय की ध्वनि होने लगी और उसी के साथ सब जीवों की तथा उन्हें जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उनकी भी उत्पत्ति हुई।" (छान्दोग्य ३, १९)

उसी उपनिषद् (६, २) में एक दूसरा भी वर्णन दिया है जिसमें लिखा है कि "आदि में केवल वही एक था जो कि अद्वैत है।" उससे अग्नि उत्पन्न हुई, अग्नि से पानी और पानी से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

एतरेय आरण्यक में लिखा है कि प्राण अर्थात् विश्वप्राण ने इस संसार को रचा और फिर उसमें इस बात पर विचार किया है कि संसार किन वस्तुओं से बना। ऋग्वेद (१०,१२६) के तथा यहूदी लोगों के सृष्टि उत्पन्न होने के वर्णन के अनुसार जल ही इसका प्रथम तत्व है।

"क्या वह सचमुच पानी था ? क्या वह पानी था ? हां वास्तव में यह सब पानी था। पानी ही जड़ थी और पृथ्वी उसका अंकुर

हुआ। वह जीव पिता है और वे (पृथ्वी अग्नि आदि) पुत्र हैं। ”
महिदास ऐतरेय इस सिद्धान्त को जानता था। (२, १, ८, १)

उसी उपनिषद् के दूसरे स्थान में सृष्टि की उत्पत्ति का नीचे लिखा वर्णन दिया है—

“आदि में निस्सन्देह केवल एक आत्मा थी। उसके सिवाय और कुछ नहीं देख पड़ता था।” और उस आत्मा ने पानी (स्वर्ग के ऊपर) उत्पन्न किया, प्रकाश उत्पन्न किया जो कि आकाश है, नाशवान जीव जो कि पृथ्वी है, और पृथ्वी के नीचे जल उत्पन्न किया। उसने तब पुरुष बनाया और उस पुरुष से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।

इनमें से कुछ उद्धृत भागों में से किसी में तो एक आदि कर्त्ता, अर्थात् ब्रह्म, आत्मा या स्वयं को, और किसी में एक तत्व अर्थात् पानी वा अग्नि को, सृष्टि का कारण माना है। हम आगे चल कर दिखलावेंगे कि आदि आत्मा वा आदि तत्व का यह सिद्धान्त उत्तर काल के हिन्दुओं के वेदान्त में किस प्रकार से बढ़ाया गया है। अब हम पुनर्जन्म के बड़े प्रधान सिद्धान्त का वर्णन करेंगे। यह सिद्धान्त हिन्दुओं के लिये वैसाही है जैसा कि ईसाइयों के लिये पुनरुज्जीवन का सिद्धान्त। ईसाई लोगों का यह विश्वास है कि हमारी आत्माएं मृत्यु के पीछे दूसरी अवस्था में रहेंगी, परन्तु हिन्दुओं का यह विश्वास है कि हमारी आत्माएं पहिले भी दूसरी अवस्था में रह चुकी हैं और फिर मृत्यु के पीछे दूसरी अवस्था में रहेंगी।

इसका मुख्य विचार वही है जो कि हिन्दू धर्म का मुख्य सिद्धान्त माना गया है अर्थात् यह कि अच्छे कर्म करने से आने वाले जन्म में उनका अच्छा फल मिलता हैं, परन्तु परमात्मा में लीन हो जाना, केवल सच्चे ज्ञान से प्राप्त होता है। “जिस प्रकार से इस संसार में जो कुछ परिश्रम कर के उपार्जन किया जाता है उसका क्षय हो जाता है उसी प्रकार से इस संसार में यज्ञ तथा अच्छे कर्मों द्वारा उस संसार के लिये जो कुछ प्राप्त किया जाता है उस-

का भी क्षय होजाता है। जो लोग परमात्मा और उन सच्ची इच्छा-ओं का ज्ञान बिना प्राप्त किए ही इस संसार से उठ जाते हैं वे किसी लोक में भी मुक्ति नहीं पाते।" (छान्दोग्य ८, १, ६)

पुनर्जन्म का सिद्धान्त बृहदारण्यक में बहुत अच्छी तरह से तथा पूरी तरह से वर्णन किया गया है। हम यहां पर उस उपनिषद् का कुछ भाग उद्धृत करेंगे—

"जिस प्रकार से कीड़ा किसी घास के पत्ते के अन्त तक पहुंच कर दूसरे पत्ते पर जाने के लिये अपने को बटोर के उस पर जाता है उसी प्रकार से आत्मा इस शरीर को छोड़ कर तथा सब अज्ञान को दूर कर के दूसरे शरीर में जाने के लिये अपने को बटोर कर उसमें जाती है।

"और जिस प्रकार से सोनार सोने के किसी टुकड़े को लेकर उसका एक नया और अधिक सुन्दर रूप बना देता है उसी प्रकार से आत्मा इस शरीर को छोड़ कर और सब अज्ञान को दूर कर के अपने लिये एक नया और अधिक सुन्दर रूप बनाती है। चाहे वह रूप पितरों का हो, चाहे गन्धर्वों का, चाहे देवों का, चाहे प्रजापति का, चाहे ब्रह्म के सदृश या चाहे अन्य किसी की नाईं हो.........

"यह सब तो उस मनुष्य के लिये हुआ जो इच्छा रखता है। परन्तु जो मनुष्य कोई इच्छा नहीं रखता, इच्छाओं से मुक्त तथा अपनी इच्छाओं में सन्तुष्ट है वा केवल परमात्मा ही की इच्छा रखता है, उसकी आत्मा और कहीं नहीं जाती, ब्रह्म हो कर वह ब्रह्म ही में जाती है.........

"और जिस प्रकार से सांप की केचुली किसी टीले पर छोड़ी हुई मृत पड़ी रहती है उसी प्रकार से शरीर रह जाता है, परन्तु उस शरीर से पृथक हुई अमर आत्मा केवल ब्रह्म और केवल प्रकाश ही है।"

अब अन्तिम मुक्ति के सिद्धान्त को लीजिए। प्राचीन हिन्दुओं के ग्रन्थों में उन अंशों से उच्चतम और कोई बात नहीं है जिनमें उन लोगों ने बड़े उत्सुक होकर यह आशा और विश्वास प्रगट किया है कि सब कलङ्कों और पापों से रहित तथा शरीर से अलग हुई आत्मा अन्त को परमात्मा में इस प्रकार से मिल जायगी जैसे कि प्रकाश में प्रकाश मिल जाता है। हम यहां वृहदारण्यक से एक अंश उद्धृत करते हैं—

"वह जो शान्त, दबा हुआ, सन्तुष्ट, सहनशील और एकाग्रचित्त होकर आत्मा में अपने को देखता है वह आत्मा में सब वस्तुओं को देखता है। पाप उसे नहीं जीतता, वही सब पापों को जीत लेता है। पाप उसे नहीं जला सकता, वही सब पापों को जला देता है। सब पापों, कलंकों और सन्देहों से रहित होकर वह सच्चा ब्रह्म हो जाता है और ब्रह्म लोक में प्रवेश करता है।"

इसी अन्तिम मुक्ति के सिद्धान्त को मृत्यु ने नचिकेतस् से एक उपनिषद् के उस सुन्दर कविता में वर्णन किया है जो 'कथा' के नाम से प्रसिद्ध है। हम अब इसी उपनिषद् का एक अंश, जो कि पवित्रता और कल्पना शक्ति की एक बहुत ही सुन्दर रचना है, उद्धृत करके इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

नचिकेतस् के पिता ने उसे मृत्यु को सौंप दिया और उसने यम वैवस्वत के निवास स्थान में प्रवेश किया और उससे तीन वर मांगे जिनमें से अन्तिम यह था—

"जब मनुष्य मर जाता है तो यह शङ्का रहती है—कोई कहता है कि वह है और कोई कहता है वह नहीं है। यह मैं तेरे ही मुख से जानना चाहता हूं यही मेरा तीसरा वर है।"

परन्तु मृत्यु अपने भेद प्रगट करना नहीं चाहता था, इसलिये उसने नचिकेतस् से दूसरे दूसरे वर मांगने के लिये कहा।

"ऐसे पुत्रों और पौत्रों को मांग जिनकी आयु सौ सौ वर्ष की

हो। गाय, हाथी, घोड़े, और सोना मांग। पृथ्वी पर बहुत काल तक का निवास मांग और जितने वर्ष तक तेरी इच्छा हो, जीवित रह।

"यदि तू इसके समान और किसी वर को सोच सकता हो तो धनी और दीर्घ जीवी होने का वर मांग। हे नचिकेतस्, सारी पृथ्वी का राजा हो। मैं तेरी सब इच्छाएं पूरी कर सकता हूं।

"मृत्युलोक में जिन जिन कामनाओं का पूरा होना कठिन है उनमें से जो तेरी इच्छा हो मांग। ये सुन्दर कुमारियां जो कि अपने रथ और बाजे लिए हैं, निस्सन्देह मनुष्यों को ये प्राप्त नहीं होतीं। मैं इनको तुझे देता हूं, इनकी सेवा का सुख मांग परन्तु मुझ से मरने के विषय में मत पूछ।"

नचिकेतस् ने कहा—"हे मृत्यु, ये सब वस्तुएं केवल कल तक टिकेंगी, क्योंकि ये सब इन्द्रियों के बल को नाश कर देती हैं। समस्त जीवन भी थोड़ा है। तू अपने घोड़े और अपना नाच गाना अपने ही पास रख।"

धर्मात्मा जिज्ञासु के इतने आग्रह करने पर मृत्यु ने अन्त को अपना बड़ा भेद प्रगट कर दिया। यह वही भेद है जो कि उपनिषदों का सिद्धान्त तथा हिन्दू धर्म का सिद्धान्त है—

"वह बुद्धिमान जो अपनी आत्मा का ध्यान करके उस आदि ब्रह्म को जान लेता है जिसका दर्शन कठिन है, जिसने अन्धकार में प्रवेश किया है, जो गुफा में छिपा है, जो गम्भीर गर्त में रहता है,—वह निस्सन्देह सुख और दुःख को बहुत दूर छोड़ देता है।

"एक नाशवान जीव जिसने यह सुना और माना है, जिसने उससे सब गुणों को पृथक कर दिया है, और जो इस प्रकार उस सूक्ष्म आत्मा तक पहुंचा है, प्रसन्न होता है कि उसने उसे पा लिया जो आनन्द का कारण है। हे नचिकेतस्, मैं विश्वास करता हूं। ब्रह्म का स्थान खुला है।"

ऐसा कौन है जो आज कल भी पुरातन काल के इन शुद्ध प्रश्नों और पवित्र विचारों को पढ़कर अपने हृदय में नए भावों का उदय न अनुभव करता हो, अपनी आंखों के साम्हने नया प्रकाश न पाता हो। अज्ञात भविष्य का रहस्य मनुष्य की बुद्धि या विद्या से कभी प्रगट न होगा किन्तु प्रत्येक देशहितैषी हिन्दू और विचारवान पुरुष के लिये इस रहस्य को जानने के लिये जो प्रारम्भ में पवित्र उत्सुक और शुद्ध दार्शनिक भाव से उद्योग किए गए थे उनमें सदा अनुराग वर्तमान रहेगा।

प्रसिद्ध जर्मन लेखक और दार्शनिक स्कोपनहार ने ठीक लिखा है। "प्रत्येक पद से गहरे, नवीन और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। और सब में उत्कृष्ट पवित्र और सच्चे भाव वर्तमान हैं। भारतीय वायु मंडल हमें घेरे हुए है, और अनरूप आत्माओं के नवीन विचार भी हमारे चारों ओर हैं। समस्त संसार में मूल पदार्थों को छोड़ कर किसी अन्य विद्या का अध्ययन ऐसा लाभकारी और हृदय को उच्च बनाने वाला नहीं है जैसा कि उपनिषदों का। इसने मेरे जीवन को शान्ति दी है और यह मृत्यु के समय भी मुझे शान्ति देगा।"

पहिला भाग समाप्त।

——:o:——

इतिहास-प्रकाशक-समिति, काशी की
नियमावली।

(१) इस मंडली का नाम "इतिहास-प्रकाशक समिति" होगा।

(२) इस समिति का मुख्य कार्य यह होगा कि हिन्दी में सब प्रकार के ऐतिहासिक* ग्रन्थ सम्पादित कर वा करा के छपवावे।

(३) कोई महाशय एक बेर २५) रु० वा उससे अधिक देने पर इसके सभ्य हो सकेंगे और वे इसके सहायक कहलावेंगे।

(४) सहायकों को प्रत्येक पुस्तक की जिसे यह समिति अपने व्यय से छपवावेगी एक प्रति बिना मूल्य दी जायगी। उन्हें अपने दान के बदले में और किसी प्रकार का हिस्सा या लाभांश न मिलेगा।

(५) इस समिति का काम चलाने के लिये नौ सहायकों की एक कमेटी प्रति तीसरे वर्ष नवम्बर मास में चुन दी जाया करेगी।

(६) इस कमेटी के काम ये होंगे—

(१) समिति के धन और आय व्यय के हिसाब को ठीक ठीक रखना।

(२) ग्रन्थों के लिखवाने, सम्पादित करवाने, छपवाने और बेचने का उचित प्रबन्ध करना।

(३) उचित पुरस्कार पर ग्रन्थों का स्वत्व प्राप्त करना।

(४) प्रति वर्ष अपने कार्य की एक रिपोर्ट समिति को देना और अन्य लोगों में वितरण करना।

(७) यह कमेटी अपने कार्य की प्रणाली स्वयं निश्चय करेगी और अपने सभासदों में से एक को अपना मंत्री नियत करेगी।

(८) समिति के वर्ष का प्रारम्भ पहिली नवम्बर से माना जायगा।

(९) कमेटी या समिति के अधिवेशनों में सब प्रश्नों का निर्णय अधिक सम्मति से होगा।

(१०) समिति या कमेटी के अधिवेशनों में पत्र द्वारा भी सम्मति ग्रहण की जायगी।

(११) समिति के अधिवेशनों में पांच सभ्यों का और कमेटी के अधिवेशनों में तीन सभ्यों का कोरम माना जायगा।

(१२) समिति के सब सहायकों को सूचना देकर इन नियमों के परिवर्तन करने या कमेटी के चुनने या बदलने का समिति का पूर्ण अधिकार होगा।

---

* इसमें जीवनचरित और यात्रा के ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं।

इतिहास-प्रकाशक-समिति काशी के

सहायकों की नामावली।

(१) बाबू राधाकृष्णदास-काशी।
(२) पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०-काशी।
(३) बाबू गोविन्ददास-काशी।
(४) बाबू जुगुलकिशोर-काशी।
(५) पण्डित हरि नारायण शर्म्मा बी० ए०-सवाई रामगढ़।
(६) पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी-काशी।
(७) पण्डित चन्द्रधरशर्मा बी० ए०-अजमेर।
(८) बाबू अयोध्यादास बी० ए०- गोरखपुर।
(९) पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०-बस्ती।
(१०) आनरेबुल पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी० ए०, एल एल० बी०-इलाहाबाद।
(११) पण्डित विन्ध्यनाथ झा, एम० ए०-दरभंगा।
(१२) बाबू उपेन्द्रनाथ बसु, बी० ए० एल एल० बी- काशी।
(१३) बाबू राधाचरण, बी० ए०-ग़ाज़ीपुर।
(१४) बाबू ज्ञानेन्द्रनाथ बसु, बी० ए०-भिनगा।
(१५) बाबू काशीप्रसाद-मिर्जापुर।
(१६) लाल रघुनाथप्रसाद सिंह-गोरखपुर।
(१७) राय शिवप्रशाद-काशी
(१८) लाला मुंशीराम, बी० ए०-हरिद्वार।
(१९) लाला लाजपतराय-लाहोर।
(२०) बाबू गोविन्दराम सिंघानिया-मिर्जापुर।
(२१) बाबू शिवप्रसाद गुप्त-काशी।
(२२) बाबू माधोप्रसाद-काशी।
(२३) बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०-काशी।
(२४) राजा कमलानन्दसिंह-श्रीनगर-पुर्निया।
(२५) बाबू बेनीप्रसाद-काशी।
(२६) बाबू सीताराम बी०ए०-काशी।
(२७) डाक्टर गनेशप्रसाद भार्गव-काशी।